UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186219
UNIVERSAL
LIBRARY

HYDERABAD -
FOR STUDENTS ONLY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H398 U65L Acc. No. H 4739

Author उपाध्याय कृष्णदेव

Title लोक-साहित्य की भूमिका

लोक-साहित्य की भूमिका

लोक-साहित्य की भूमिका

(संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
एम० ए०, पी०-एच० डी०

भूमिका-लेखक
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड
इलाहाबाद-३

प्रथम संस्करण : १९५७ ई०
द्वितीय संस्करण : १९७० ई०
(परिवर्धित एवं संशोधित)

पन्द्रह रुपया

मुद्रक : यू० पी० प्रिंटिंग प्रेस, ४२, ताशकन्द मार्ग, इलाहाबाद

जिन्होंने मेरे हृदय में साहित्य के प्रति रुचि
उत्पन्न की, जिनकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन ही
मेरे साहित्यिक जीवन का बल और सम्बल है

—उन्हीं—

पितृकल्प, ज्येष्ठ भ्राता

आचार्य बलदेव उपाध्याय

के चरण-कमलों में

सादर, सप्रेम, समर्पित

—कृष्णदेव

भूमिका

लोक साहित्य की परंपरा कदाचित् उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी मनुष्य जाति। अब तो यह माना जाता है कि भाषा का उद्गम ही संगीतात्मक था। बाद को धीरे-धीरे गद्य-भाषा और संगीत ये तत्त्व दो पृथक् महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं के रूप में विकसित हुए।

किन्तु लोक गीतों, लोक कथाओं, तथा लोकोक्तियों आदि की परम्परा सनातन से मौखिक रही। फलस्वरूप इन क्षेत्रों की प्राचीन सामग्री सुरक्षित नहीं रह सकी। लिपिबद्ध किये जाने के कारण नागरिक साहित्य की परम्परा तो प्रत्येक देश में क्रमबद्ध रूप में मिलती है, किन्तु लोक साहित्य की नहीं।

यूरोप और अमरीका में उन्नीसवीं शताब्दी में लोक भाषा और लोक साहित्य के महत्त्व और अध्ययन की ओर विद्वानों का ध्यान गया था और इस क्षेत्र में पश्चिमी देशों में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। अपने देश में इस क्षेत्र की ओर वर्त्तमान शताब्दी में विद्वान आकर्षित हुए।

हिन्दी में इस कार्य का क्रमबद्ध प्रारम्भ पं० रामनरेश त्रिपाठी के ग्राम-गीतों के संकलन और प्रकाशन से हुआ। हिन्दी प्रदेश की किसी एक भाषा, ब्रज-भाषा, के लोक साहित्य का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन डा० सत्येन्द्र ने उपस्थित किया था। इसके बाद तो इस क्षेत्र के कार्य में काफी प्रगति हुई।

कई वर्ष हुए श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोक साहित्य का एक विस्तृत अध्ययन थीसिस के रूप में प्रकाशित किया था। उनकी प्रस्तुत पुस्तक लोक-साहित्य के अध्ययन के सिद्धान्तों की भूमिका के रूप में है और हिन्दी में अपने ढंग का पहला प्रयास है। इसमें लोक नाट्य को छोड़ कर लोक-साहित्य के शेष समस्त मुख्य रूपों, जैसे लोक गीत, लोक गाथा, लोककथा तथा लोकोक्तियों का विवेचन है। लेखक का विशेष अध्ययन भोजपुरी लोक साहित्य का है, अतः यह स्वाभाविक है कि उदाहरणों आदि में भोजपुरी का प्राधान्य हो गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में योग्य लेखक ने कुछ उपयोगी परिशिष्ट भी दिए हैं जिन्हें इस विषय से अभिरुचि रखने वाले पाठक विशेष उपयोगी पावेंगे। हिन्दी, अँग्रेजी तथा भारत की अन्य भाषाओं में पायी जाने वाली लोक साहित्य सम्बन्धी सामग्री

की पूर्ण सूचियाँ लेखक ने दी हैं। इस विषय के व्यापक अध्ययन में ये विशेष सहायक सिद्ध होंगी।

लोक साहित्य के अध्ययन को प्रयाग विश्वविद्यालय ने हिन्दी के एम० ए० के पाठ्यक्रम में एक वैकल्पिक प्रश्नपत्र के रूप में स्थान दिया। कुछ अन्य विश्वविद्यालय भी इस परम्परा को अपना रहे हैं। इस विषय के विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत पुस्तक पाठ्य-ग्रंथ का काम दे सकेगी। यों लोक साहित्य में अभिरुचि रखने वाला हिन्दी का साधारण पाठक भी पुस्तक को रोचक और उपयोगी पाएगा।

आशा है कि इस ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर इस विषय पर भविष्य में अधिकाधिक कार्य होगा और लोक साहित्य के सिद्धान्तों पर विस्तृत अध्ययन प्रकाश में आएँगे। इस क्षेत्र में लेखक का यह प्रथम प्रयास अत्यन्त सराहनीय है।

धीरेन्द्र वर्मा

द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण १९५७ ई० में प्रकाशित हुआ था। अतः इसमें संशोधन एवं परिवर्द्धन भी आवश्यक हो गया था। अतः इस संस्करण का पूर्ण रूप से संशोधन कर दिया गया है। कई नये अध्याय बढ़ा दिये गये है। साथ ही प्रत्येक अध्याय में लिखित सामग्री को अद्यतन सूचना से युक्त कर दिया गया है। प्रत्येक भारतीय भाषा में १९५७ ई० के बाद प्रकाशित ग्रंथों को तथा नये अनुसधानों और कार्यों का इस संस्करण में यथास्थान समावेश कर दिया गया है। फलतः इस पुस्तक का कलेवर भी बढ़ गया है और मुद्रण व कागज के मूल्यों में वृद्धि के कारण प्रकाशक को इसके मूल्य में भी वृद्धि करनी पड़ी है। फिर भी मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक अब सर्वाङ्गपूर्ण और इस विषय के अध्येताओं, शोधकर्त्ताओं एवं छात्रों के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपादेय सिद्ध होगी।

लेखक

———

प्राक्कथन

लोक-साहित्य अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जन-संस्कृति का जैसा सच्चा तथा सजीव चित्रण इसमें उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र नहीं। सरलता, स्वाभाविकता और सरसता में यह अपना सानी नहीं रखता। लोक-कथा संसार के समस्त कथा-साहित्य का जनक है और लोकगीत सकल काव्य की जननी है। इस कारण लोक-साहित्य की महत्ता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इस देश में लोक-साहित्य का अध्ययन चिर उपेक्षित विषय रहा है। परन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि अब अधिकारी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है। हिन्दी की विभिन्न बोलियों में उपलब्ध लोक-गीतों, कथाओं गाथाओं और लोकोक्तियों के संग्रह का प्रयास द्रुत गति से हो रहा है। फलस्वरूप अनेक ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए हैं। प्रयाग, लखनऊ, आगरा तथा कलकत्ता विश्व-विद्यालयों की एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा में लोक-साहित्य वैकल्पिक प्रश्नपत्र के रूप में स्वीकृत किया गया है। अनेक शोधी छात्र लोक साहित्य के विभिन्न विषयों को लेकर विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान का कार्य कर रहे हैं। लोक-साहित्य के संकलन तथा सम्यक् सम्पादन के लिये कई लोक-साहित्य-परिषदों की स्थापना हुई है जिनके द्वारा शोध-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। इस दिशा में डॉ० डी० एन० मजुमदार एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, मानव-विज्ञान-शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ का प्रयास अत्यन्त स्तुत्य है जिन्होंने "एथ्नोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी" की स्थापना की है। इस संस्था से लोक-गीतों के अनेक अँग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। डा० मजुमदार के सम्पादकत्व में 'इस्टर्न एन्थ्रोपॉलाजिस्ट' नामक एक शोध पत्रिका भी प्रकाशित होती है। 'अवध-भारती', 'ब्रज-भारती', मरुभारती', 'राजस्थान भारती', 'भोजपुरी' आदि पत्रिकाओं में लोक-साहित्य सम्बन्धी बहुत सी पठनीय सामग्री आजकल प्रकाशित हो रही है। वर्तमान पुस्तक के लेखक ने अमेरिका, फ्रांस तथा जर्मनी आदि देशों में अपने लेखों को प्रकाशित कर भारतीय लोक-साहित्य के सन्देश को विदेशों में फैलाने का उल्लेखनीय प्रयास किया है। इस प्रकार लोक-साहित्य के अध्ययन के प्रति विद्वत्समुदाय जागरूक दिखायी पड़ता है। अतएव लोक-साहित्य के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की जा सकती है।

इस पुस्तक की रचना लोक-साहित्य के सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में की गयी है। अतएव इसमें लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथाओं तथा लोक-नाट्य के मूल तत्त्वों का सन्निवेश करने का प्रयास हुआ है।

लोक-साहित्य के वर्गीकरण की पद्धति, उसका विस्तार, लोक काव्य और अलंकृत काव्य में भेद, लोक-गाथाओं की विशेषताएँ तथा लोक-कथाओं के मूल तत्त्व, लोकोक्तियों और मुहावरों का महत्त्व, बच्चों के खेल, पालने के गीत और मृत्यु सम्बन्धी गीत—इत्यादि जितने भी विषय लोक-साहित्य में अन्तर्भुक्त होते हैं उन सभी विषयों और समस्याओं का समाधान इस ग्रन्थ में किया गया है। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य देशों में जो अनुसन्धान हुआ है उसका अध्ययन कर उन पश्चिमी मनीषियों के मतों का भी प्रतिपादन यथास्थान वर्णित है। इस पुस्तक के प्रणयन में लेखक ने तुलनात्मक दृष्टि से काम लिया है। भारतवर्ष में जो गीत प्रचलित हैं उसी कोटि का यदि कोई गीत अँग्रेजी साहित्य में उपलब्ध होता है तो उसे भी उद्धृत किया गया है। पालने के गीत, मृत्यु-गीत तथा आवृत्तिमूलक टेक पदों के अध्याय में इस पद्धति का विशेष रूप से अवलम्बन हुआ है। पाद-टिप्पणियों में अंग्रेजी में मूल ग्रन्थों से प्रचुर रूप में उद्धरण दिये गये हैं। इस पुस्तक की प्रामाणिकता के लिए ऐसा करना आवश्यक समझा गया। दूसरा कारण यह भी है कि लोक-साहित्य सम्बन्धी ये अंग्रेजी ग्रन्थ साधारणतया उपलब्ध नहीं होते। अतः पाठकों को पुस्तक में आये हुए संकेतों के उद्धरण ग्रन्थ के कलेवर में ही प्राप्त हो जायँ, इस सुविधा की दृष्टि से भी यह समुचित था।

प्रस्तुत ग्रन्थ को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है :—(१) साहित्य (२) सिद्धान्त, और (३) संस्कृति। 'साहित्य' वाले खण्ड में लोक-साहित्य के संकलन की कठिनाइयों तथा पद्धति का उल्लेख करते हुए लोकसाहित्य-संग्रही की योग्यता का वर्णन किया गया है। जन-साहित्य—जो गाँवों में बिखरा हुआ है—के संकलन की यही वैज्ञानिक पद्धति है। इस कला को जान कर ही इस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं को इसमें हाथ लगाना चाहिये। संग्रह का काम करते समय किन-किन बाहरी साधनों की आवश्यकता पड़ती है, इसका उल्लेख भी संक्षेप में प्रस्तुत है जिससे नवीन अनुसन्धानकर्ताओं को पथ-प्रदर्शन प्राप्त हो सके। 'सिद्धान्त' खण्ड के अन्तर्गत लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा, लोक नाट्य तथा लोक सुभाषित के मूलतत्त्वों एवं उनकी प्रधान विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत है। इस विवेचन को सुधी-समुदाय के समक्ष उपस्थित करते हुए उदाहरण स्वरूप जो गीत दिये गये हैं वे हिन्दी की विभिन्न बोलियों से ही लिये गये हैं। प्रस्तुत लेखक का विचार समस्त भारतीय भाषाओं

से उदाहरण उपस्थित करने का था, परन्तु समय और स्थान के अभाव का ध्यान रखते हुए ऐसा करना सम्भव नहीं था। सच तो यह है कि जिन विषयों का प्रतिपादन किया गया है। उनके वर्णन में भी स्थान की संकुचित परिधि के भीतर ही रखने के प्रयास के कारण, समासशैली का अवलम्बन करना पड़ा है। अतएव उदाहरण के अभाव में कहीं-कहीं किसी विषय को समझने में कठिनाई भी हो सकती है। फिर भी इस विषय की ओर लेखक सतर्क है कि कहीं भी दुर्बोधता न आने पावे। 'सिद्धान्त' भाग ही इस ग्रन्थ का सार या तत्त्व समझना चाहिए।

'संस्कृति' वाले खण्ड में लोक-साहित्य में लोक-संस्कृति का जैसा चित्रण उपलब्ध होता है उसका सजीव चित्रण उपस्थित करने का प्रयास हुआ है। जनता की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा का जो वर्णन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है उसे केवल नमूना ही समझना चाहिए। वह जन-जीवन की एक झाँकी मात्र है। उसका सम्यक्-चित्रण नहीं। सामान्य जनता की संस्कृति के विभिन्न अवयवों के सम्पूर्ण दिग्दर्शन के लिए एक पृथक् विशाल ग्रन्थ की आवश्यकता है जो सम्भवतः भविष्य में प्रस्तुत किया जा सके। इस समय तो केवल झाँकी ही सम्भव है।

इस प्रकार साधन, सिद्धान्त और संस्कृति को लेकर इस ग्रंथ की रचना की गई है जिसमें सिद्धान्त वाला अंश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। 'साहित्य-सङ्गीत-कला' की त्रिवेणी में अवगाहन करके ही मानव का मानस पवित्र होता है और परमानन्द को प्राप्त करता है। लोक-साहित्य का वर्णन तो यहाँ किया गया है, परन्तु लोक-सङ्गीत तथा लोक-कला का विवेचन इच्छा रहते हुए भी अनेक कारणों से नहीं किया जा सका। आशा है, भविष्य में इसकी पूर्ति हो सकेगी।

पुस्तक के अन्त में लोक-साहित्य सम्बन्धी पठनीय सामग्री की विस्तृत सूची दी गई है। इस सूची का वर्गीकरण करते हुये विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का नाम अलग-अलग दिया गया है। अंग्रेजी में उपलब्ध पुस्तकों का भी वर्गीकरण इसी प्रकार से है। लोक-संस्कृति की रक्षा के लिये विदेशों में स्थापित अनेक संस्थाओं के नाम भी दे दिये गये हैं जिससे पाठकों को लाभ हो सके।

सर्वप्रथम डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिनकी सतत प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है। उन्होंने भूमिका लिखने की कृपा करके प्रस्तुत पुस्तक को महत्त्व प्रदान किया है। डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट् के अनेक सुझावों के लिये मैं अत्यन्त आभारी हूँ। ज्येष्ठ भ्राता पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य; रीडर संस्कृत, विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

तथा डॉ० वासुदेव उपाध्याय एम-ए० पी०-एच० डी० रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी मंगल-कामना तथा आशीर्वाद ही मेरा बल और सम्बल है। प्रिय चिरंजीव हरिशंकर जी एम० ए०, ने इस ग्रन्थ के लेखन में अनेक प्रकार की सहायता पहुँचाई है। अतः वे मेरे आशीष के भाजन हैं।

लोकसाहित्य के सामान्य सिद्धान्तों का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत करने वाला यह सर्वप्रथम मौलिक ग्रन्थ है। वर्तमान लेखक ने अपने जीवन के अनेक बहुमूल्य वर्षों को लोक-साहित्य के अध्ययन और मनन में बिताया है। अतः यहाँ जो कुछ लिखा गया है वह प्रामाणिकता से युक्त है। ग्रन्थकर्ता ने 'नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते' इस मल्लीनाथी प्रतिज्ञा को निभाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। इस कार्य में उसे कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है इसका निर्णय तो विशेषज्ञ वृन्द ही कर सकते हैं। लेखक का तो केवल इतना ही निवेदन है कि :—

"आपरितोषात् विदुषां, न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्"

११ जुलाई सन् १९५७ ई०
१०९ लूकरगंज, इलाहाबाद

कृष्णदेव उपाध्याय

विषय-सूची

अध्याय १—लोक-साहित्य का संकलन

(क) संग्रह की कठिनाइयाँ—गवैयों का क्रमिक अभाव, पर्दे की प्रथा, पुनरावृत्ति में असमर्थता, गवैये सर्वदा गाने को तैयार नहीं, संकुचित मनोवृत्ति। (ख) लोकसाहित्य-संग्रहकर्ता के उपादान—आन्तरिक साधन—जनता के साथ तादात्म्य भावना, सहानुभूति, अनुसन्धान-चातुरी, जाँचकर किसी तथ्य को स्वीकार करना, स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग, यथा श्रुतं तथा लिखितम्, संग्रह की प्रामाणिकता, विभिन्न पाठों का संग्रह, वाह्य साधन—नोटबुक, पेन तथा पेन्सिल, केमरा, रेकार्डिङ्ग मशीन। १—९

अध्याय २—लोक साहित्य का सामान्य परिचय

(१) 'लोक' शब्द की प्राचीनता (२) 'लोक' शब्द की परिभाषा (३) लोक संस्कृति तथा लोक-साहित्य की पृथक् सत्ता (४) 'फोकलोर' शब्द की उत्पत्ति (५) 'फोकलोर' का पर्यायवाची शब्द 'लोक संस्कृति' है। (६) लोक संस्कृति और लोक साहित्य में अन्तर (७) लोक साहित्य का क्षेत्र विस्तार (८) लोक साहित्य का सामान्य परिचय। १०—२५

अध्याय ३—भारत में लोक साहित्य की प्राचीन परम्परा २६—३१

अध्याय ४—लोक साहित्य सम्बन्धी संकलन तथा अनुसंधान कार्य

(क) प्रारम्भिक इतिहास तथा क्रमिक विकास (ख) हिन्दी की विभिन्न बोलियों में संग्रह तथा शोधकार्य—(१) राजस्थानी (२) ब्रज (३) अवधी (४) बुंदेलखंडी (५) मालवी (६) छत्तीसगढ़ी (७) निमाड़ी (८) कौरवी (९) भोजपुरी (क) भोजपुरी लोक गीत, भाग १ (ख) भोजपुरी लोक गीत, भाग २ (ग) भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस (घ) भोजपुरी के कवि और काव्य (ङ) भोजपुरी ग्राम्य गीत (च) भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन (छ) भोजपुरी और उसका साहित्य (ज) लोक

साहित्य की भूमिका (झ) भोजपुरी लोक संस्कृति का अध्ययन (ञ) भोजपुरी लोक संगीत (ट) भोजपुरी लोक गाथा (ठ) भोजपुरी भाषा और साहित्य (ड) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-भाग १६ (हिन्दी का लोक साहित्य) (ढ) भोजपुरी गीत और गीतकार। भोजपुरी की शोध संबंधी संस्थाएँ—(१) भोजपुरी संसद, वाराणसी (२) भोजपुरी परिवार, पटना (बिहार) (३) भोजपुरी परिषद् आरा (बिहार) (४) भोजपुरी साहित्य सम्मेलन, बक्सर, (आरा) बिहार (५) माटी की बोली, छपरा (बिहार) ३२—५९

अध्याय ५—लोक साहित्य का वर्गीकरण

लोक-गीतों के वर्गीकरण की पद्धति—(१) संस्कारों की दृष्टि से (२) रसानुभूति की प्रणाली से (३) ऋतुओं और व्रतों के क्रम से (४) विभिन्न जातियों के प्रकार से (५) श्रम के आधार पर; त्रिपाठी जी का विभाजन, पारीक का वर्गीकरण; (२) लोक गाथा—बैलेड के लिए 'गाथा' शब्द की सार्थकता, लोक-गाथा की परिभाषा, लोक-गीत और लोक गाथा में अन्तर, (३) लोक-कथा, (४) लोक-नाट्य (५) लोक-सुभाषित। ६०—७५

अध्याय ६—लोक गीतों का विवेचन

(क) संस्कार सम्बन्धी गीत—(१) सोहर—नामकरण, परम्परा, वर्ण्य विषय (२) मुण्डन के गीत, वर्ण्यविषय, (३) यज्ञोपवीत के गीत—वर्ण्यविषय, बुन्देलखण्डी और मैथिली में जनेऊ के गीत (४) विवाह के गीत—गीतों के भेद, व्रज के विवाह-गीत—वर्ण्य विषय, मैथिली तथा राजस्थानी में विवाह-गीत, (५) गवना के गीत—वर्ण्यविषय, मैथिली तथा राजस्थानी गवना के गीत (६) मृत्यु गीत—भेद, परम्परा, व्रज में मृत्यु गीत, भोजपुरी के मृत्यु-गीत, यूरोपीय देशों में मृत्यु गीत—कार्सिका, इटली तथा फ्रांस आदि; दक्षिणी भारत में मृत्यु-गीत की प्रथा। (ख) ऋतु सम्बन्धी गीत—(१) कजली—नामकरण, वर्ण्य विषय, (२) होली—वर्ण्य विषय, (३) चैता—वर्ण्य विषय, (४) बारहमासा—परम्परा, वर्ण्य विषय, बंगला में बारहमासा।

(ग) व्रत सम्बन्धी गीत—(१) नाग पंचमी के गीत (२) बहुरा (३) गोधन (४) पिड़िया (५) छठी माता के गीत। (घ) जाति सम्बन्धी

गीत—(१) अहीरों के गीत (२) दु:साधों के गीत (६) गोंड़ों के गीत (४) तेलियों के गीत (५) गड़ेरियों के गीत

(ङ) श्रम गीत—(१) जाँत के गीत (२) रोपनी के गीत (३) सोहनी के गीत

(च) देवी-देवताओं के गीत—हनुमान, भैरूँजी, तुलसी, गंगा माता।

(छ) विविध गीत—झूमर, अलचारी, पूर्वी और निर्गुन आदि।

अध्याय ७—लोक-गाथाओं की मीमाँसा ७६—११२

लोक-गाथा का नामकरण, बैलेड, लोक गाथाओं की विशेषताएँ—(१) रचयिता का अज्ञात होना (२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव (३) संगीत तथा नृत्य का अभिन्न साहचर्य (४) स्थानीयता का प्रचुर पुट (५) मौखिक प्रवृत्ति (६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव (७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता तथा स्वाभाविक प्रवाह (८) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव (९) लम्बा कथानक (१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति—महत्त्व, वर्डेन, रिफ्रेन और कोरस मे अन्तर, इन तीनों के उदाहरण, अंग्रेजी साहित्य से उदाहरण, गुजराती उदाहरण, कोरस, टेक पदों का वर्गीकरण। ११३—१३६

अध्याय ८—लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

विभिन्न मत, (१) ग्रिम का सिद्धान्त—समुदायवाद, ग्रिम के मत का खण्डन, (२) श्लेगल का सिद्धान्त—व्यक्तिवाद, (३) स्टेन्थल का सिद्धान्त—जातिवाद, (४) विशप पर्सी का सिद्धान्त—चारणवाद, (५) चाइल्ड का सिद्धान्त—व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद, (६) डा० उपाध्याय का सिद्धान्त-समन्वयवाद। १३७—१४६

अध्याय ९—लोक-गाथाओं के प्रकार

(१) डा० उपाध्याय का वर्गीकरण—प्रेम-कथात्मक गाथाएँ, वीर-कथात्मक गाथाएँ, रोमांच-कथात्मक गाथाएँ (२) प्रोफेसर कीट्रीज का वर्गीकरण—चारण गाथाएँ, परम्परागत गाथाएँ (३) प्रोफेसर गूमर का वर्गीकरण—प्राचीनतम गाथाएँ, कौटुम्बिक गाथाएँ, अलौकिक गाथाएँ, पौराणिक गाथाएँ, सीमान्त गाथाएँ, आरण्यक गाथाएँ। १४७—१५५

अध्याय १०—लोक-गाथाओं का विश्लेषण

(क) लोक-कथाओं की प्राचीन परम्परा—वृहत्कथा, (वृहत्कथा-श्लोक

संग्रह, बृहत्कथा मंजरी कथासरित्सागर), पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका, शुकशप्तति, जातक।

(ख) लोक-कथाओं का वर्गीकरण–प्राचीन वर्गीकरण, (१) कथा (२) आख्यायिका; आनन्दवर्धनाचार्य कृत भेद—(१) परिकथा (२) सकल (३) खंड कथा; हरि भद्राचार्यकृत भेद—(१) अर्थ कथा (२) काम कथा (३) धर्म कथा (४) मोक्ष कथा। लोक-कथाओं के प्रकार, डा० उपाध्याय का वर्गीकरण –(१) उपदेश-कथा (२) व्रत-कथा (३) प्रेम-कथा (४) मनोरंजन-कथा (५) सामाजिक-कथा (६) पौराणिक-कथा। डा० सत्येन्द्र का वर्गीकरण—व्रज की लोक-कथाओं के भेद, (१) गाथाएँ, (२) पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएँ (३) परी की कथाएँ (४) विक्रम की कहानियाँ (५) बुझौवल सम्बन्धी कहानियाँ (६) निरीक्षण गर्भित कहानियाँ (७) साधु-पीरों की कहानियाँ (८) कारण निर्देशक कहानियाँ, डा० सेन का वर्गीकरण (१) रूप-कथा (२) हास्य-कथा (३) व्रत कथा (४) गीत कथा।

(ग) लोक-कथाओं को विशेषताएँ—(१) प्रेम का अभिन्न पुट (२) अश्लील शृङ्गार का अभाव (३) मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य (४) मंगल कामना की भावना (५) संयोग में कथाओं का अन्त (६) रहस्य-रोमांच एवं अलौकिकता की प्रधानता (७) उत्सुकता की भावना (८) वर्णन की स्वाभाविकता; शैली; लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों में अन्तर।

(घ) लोक कथा सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली—(१) फेबुल (२) फेबलियो (३) फेयरी (४) फेयरी टेल (५) लीजेण्ड (६) मिथ (७) मोटिफ (८) टाइप। १५६—१७६

अध्याय ११—लोक नाट्य का विवेचन

लोकनाट्य की चर्चा –(१) प्राचीनता (२) लोक नाट्यों का विकास (३) लोक-नाट्यों की विशेषतायें (४) भेद—(क) भाषा (ख) संवाद (ग) कथानक (घ) पात्र (ङ) चरित्र-चित्रण (च) रूपयोजना (छ) रंग-मंच (५) कुछ प्रसिद्ध लोकनाट्य। १७७—१८४

अध्याय १२—लोक सुभाषित

(१) लोकोक्तियाँ—परम्परा, लोकोक्तियों के संग्रह, लोकोक्तियों की

विशेषताएँ, लोकोक्तियों का वर्गीकरण—स्थान-सम्बन्धी, जाति सम्बन्धी, प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी, पशु-पक्षी सम्बन्धी, प्रकीर्ण; ब्रज की लोकोक्तियों के भेद (१) अनमिल्ला (२) भेरि (३) अचका (४) औठाव (५) गहगड़द (६) ओलना (७) खुसो।

लोकोक्तियों के रचयिता (१) घाघ (२) भड्डरी (३) लाल बुझक्कड़।

(२) मुहावरे—मुहावरे का अर्थ, मुहावरों की उत्पत्ति, परिभाषा, लोकोक्ति तथा मुहावरे में अन्तर, मुहावरों का महत्त्व, परम्परा तथा व्यापकत्व, मुहावरों की विशेषताएँ; जन-जीवन का चित्रण।

(३) पहेलियाँ—उत्पत्ति, परम्परा, संस्कृत साहित्य में पहेलियाँ। पहेलियों के प्रकार—(१) खेती सम्बन्धी पहेलियाँ (२) भोज्य पदार्थ सम्बन्धी (३) घरेलू वस्तु सम्बन्धी (४) प्राणि सम्बन्धी (५) प्रकृति सम्बन्धी (६) शरीर सम्बन्धी (७) प्रकीर्ण पहेलियाँ, ढकोसले।

४—पालने के गीत—उत्पत्ति, संस्कृत में लोरियाँ।

(५) बाल गीत—गुजराती बाल-गीतों के प्रकार, पालने के गीतों का जन्म, अंग्रेजी साहित्य में लोरियाँ, रस की दृष्टि से गीतों के प्रकार; इन गीतों के अंग्रेजी गुजराती तथा महाराष्ट्री उदाहरण।

(६) खेल के गीत—महत्व, भेद—(१) कबड्डी, (२) मौन साधन (३) झाका झूमरि (४) ओका-बोझा का खेल। विदेशों में बालकों के खेल। १८५—२३५

अध्याय १३—लोक-संगीत

लोक-गीतों के गाने की विधि, लघु और गुरु का शिथिल बन्धन, उपान्त्य स्वर को लुप्त स्वर में उच्चारण करना, स्तोभ की प्रणाली, लोक-गीतों के गाने में स्तोभ की प्रणाली, (१) मात्रा स्तोभ (२) वर्ण स्तोभ (३) पद स्तोभ (४) वाक्य स्तोभ। संगीत शास्त्र की दृष्टि से लोक-गीतों की विशेषताएं, लोक-गीतों के गाने में प्रयुक्त होने वाले वाद्य यन्त्र, लोक-गीतों की स्वर लिपि (नोटेशन)

(१) गीत झूमर—ताल कहरवा, स्थायी, अन्तरा, (१) अन्तरा, (२) अन्तरा, (३)

(२) गीत चता—ताल-जत, स्थायी, अन्तरा (१),

(३) गीत-विदेसिया—ताल दीपचन्दी, स्थायी, अन्तरा (१), २३६—२५४

अध्याय १४ लोक-साहित्य में काव्यत्व

(क) लोक-गीतों में अलंकार-योजना—अलंकार-योजना की विशेषता —उपमा, श्लेष, रूपक ।

(ख) लोक-गीतों में रसपरिपाक—शृङ्गार रस, करुण रस, (१) बेटी की विदाई, विदाई के मैथिली गीत, विदाई के राजस्थानी गीत, (२) वियोग (३) वैधव्य । शान्त रस, हास्य रस, वीर रस ।

(ग) लोक-गीतों में छन्द विधान ।

सोहर, विरहा, आल्हा

(घ) लोक-गीतों में भाव-व्यञ्जना और छन्द-विधान का सामञ्जस्य

संस्कृत मे छन्दविधान का नियम, भाव-व्यञ्जना और छन्द का समन्वय ।

(ङ) लोक-गीतों में तुक और लय

भोजपुरी गीतों मे तुक, मैथिली गीतों मे तुक, लय । २५५—२९२

अध्याय १५—लोक-साहित्य में लोक-संस्कृति का चित्रण ।

(क) सामाजिक जीवन का चित्रण—आदर्श सतीत्व, माता और पुत्री, भाई और बहन, सास और पतोहू, ननद और भावज, सौतिया डाह, (ख) आर्थिक पक्ष का चित्रण—निर्धनता का वर्णन, किसान जीवन की साध, (ग) धार्मिक जीवन की झलक—विभिन्न देवताओं की पूजा, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना । २९३—३०७

अध्याय १६—लोक-साहित्य की धार्मिक पृष्ठ-भूमि ।

देवताओं की पूजा, व्रतों का विधान, धार्मिक विश्वास, भाग्यवाद ।

३०८—३१५

अध्याय १७—राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य की महत्ता

(१) ऐतिहासिक महत्त्व (२) भौगोलिक तथा आर्थिक महत्त्व (३) सामजिक महत्त्व (४) धार्मिक महत्त्व(५)नैतिक महत्त्व (६) भाषाशास्त्र सम्बन्धी महत्त्व । लोक-साहित्य के सम्बन्ध मे विद्वानों का मत ।

३१६—३३१

अध्याय १८—उपसंहार

लोक-साहित्य का महत्त्व—यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का समन्वय, ग्रिम तथा गूमर के विचार । ३३२—३३५

परिशिष्ट (क)

भारत मे लोक-संस्कृति (फोकलोर) सम्बन्धी अनुसन्धान का विवेचन ३३६—३४४

परिशिष्ट (ख)

लोक-साहित्य सम्बन्धी पठनीय सामग्री ३४५—३६६

परिशिष्ट (ग)

कुछ प्रसिद्ध विदेशी लोक-संस्कृति-परिषदों के नाम और पते । ३७०—३७१

संकेत-शब्द-सूची

इ० स्का० पा० बै०—इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स
ऋ० वे०—ऋग्वेद
ओ० इ० बै०—ओल्ड इंगलिश बैलेड्स
ऐ० ब्रा०—ऐतरेय ब्राह्मण
क० कौ०—कविता-कौमुदी (भाग ५) ग्राम-गीत
ग्रा० गी०—ग्राम-गीत (कविता कौमुदी भाग ५)
ज० ए० सो० बं०—जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल
ता० ब्रा०—ताण्ड्य ब्राह्मण
भो० ग्रा० गी०—भोजपुरी ग्राम-गीत भाग २
भो० लो० गी०—भोजपुरी लोक गीत भाग १
भो० लो० गी० र०— भोजपुरी लोक-गीतों में करुण रस
न्यू० इ० डि०—न्यू इंगलिश डिक्शनरी
मै० लो० गी०—मैथिली लोक-गीत
रा० ए० सो० बं०—रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल
रा० लो० गी०—राजस्थान के लोकगीत भाग १,२
रा० लो० गी०—राजस्थानी लोक गीत
रा० च० मा०—रामचरित मानस
ब्र० लो० सा० अ०—ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन
श० ब्रा०, श० प० ब्रा०} शतपथ ब्राह्मण
शा० ब्रा०—शाकटायन ब्राह्मण
ह० ग्रा० सा०—हमारा ग्राम साहित्य
हि० सा० स०— हिन्दी साहित्य सम्मेलन
है० आ० फो०—हैण्ड बुक ऑव् फोकलोर

अध्याय १

लोक साहित्य का संकलन

(क) संग्रह की कठिनाइयाँ

लोक साहित्य के संकलन का मार्ग बड़ा कंकटाकीर्ण है। इसमें पद पद पर विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं। धैर्य का धनी ही इस कार्य को सम्यक् रूप से सम्पादित कर सकता है। जिन लोगों में अध्यवसाय की कमी है, जो थोड़ी ही देर में किसी काम से ऊब जाते हैं, लोक साहित्य का संग्रह उनके वश के बाहर की बात है। इस कार्य में समय का भी कुछ कम अपव्यय नहीं होता। कई दिनों की प्रतीक्षा के बाद एक या दो गीत हाथ लगते हैं। गवैयों को गवा कर गीत लिखना कुछ कम कठिन काम नहीं है। इस कार्य में जो बाधाएँ उपस्थित होती हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

१. गवैयों का क्रमिक अभाव

गाँवों में गीतों के गाने वालों का क्रमशः अभाव होता जा रहा है। कुछ गीत ऐसे हैं जिन्हें विशेष जातियाँ—धोबी, चमार, दुसाध, तेली, अहीर, गोंड आदि—ही गाती हैं। नयी सभ्यता के प्रसार से तथा गाँवों में भी अंग्रेजी शिक्षाके प्रचार से इन जातियों के पढ़े लिखे नवयुवक लोक-गीतों से घृणा करने लगे हैं। वे इन गीतों को गाने में अपना अपमान समझते हैं। वे अपनी पुस्तैनी सम्पत्ति को जान बूझ कर खोते जा रहे हैं। ऐसी दशा में लोकगीतों के संरक्षण की इनसे आशा करना दुराशा मात्र है। जिन लोगों ने इन गीतों की अब तक रक्षा कर रखी है, वे गाँव के वे बूढ़े और बुढ़िया हैं जो कराल काल के गाल में कवलित होने के लिए समय की प्रतीक्षा कर रही हैं। इस कारण लोकगीतों के संग्रहकर्ता का कार्य कठिन होता जा रहा है।

२. पर्दे की प्रथा

पर्दे की प्रथा के कारण भी इस कार्य में बड़ी बाधा उपस्थित होती है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार के पश्चिमी जिलों में पर्दे की बड़ी कठोर प्रथा है जिसके कारण कोई कुल-बधू पर-पुरुष के सामने नहीं आ सकती। बूढ़ी स्त्रियाँ भी पर्दे का व्यवहार करती हैं। ऐसी दशा में गीत-संग्रह के प्रेमियों के लिए बड़ी कठिनाई एवं बाधाएँ उपस्थित होती हैं। कहा जाता है कि हिन्दी के कवि श्री मधन द्विवेदी लोक-

गीतों के बड़े प्रेमी थे। वे जाँत के गीतों—जिन्हें जँतसार कहते हैं—का संग्रह करना चाहते थे, परन्तु पर्दे की प्रथा के कारण कोई भी स्त्री इन गीतों को उनके सामने गाकर उन्हें लिखवाने के लिए तैयार नहीं हुई। अतः वे रात्रि में जिस घर में जँतसार गाया जाता था, उसके पिछवाड़े (पृष्ठभाग) में खड़े होकर गीतों को लिखा करते थे। इस पुस्तक के लेखक को भी ऐसी अनेक यातनाएं भुगतनी पड़ी है।

आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ लोकगीतों को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगी है। वे इन गीतों को गाना फशन के विरुद्ध समझती हैं। संस्कार सम्बधी गीत स्त्रियों के ही कलकण्ठ में निवास करते है। अतः शिक्षित युवतियों से उन गीतों को गवाकर लिखना कठिन कार्य है।

३. पुनरावृत्ति में असमर्थता

गवैये जब अपनी मस्ती में आते है तभी गाते हैं और जब गाने लगते हैं तब बड़े सुर में गाते है। जब वे तरंग में आकर ऊंचे स्वर से गाना प्रारम्भ करते हैं तब अपनी सुधि के साथ ही कथा के प्रसंग को भी भूल जाते हैं। यह बात विशेषकर लोकगाथाओं के गाने में होती है। 'लोरकी' एक प्रबन्धात्मक गीत है जो ताल-स्वर से गाया जाता है। जब गवैये भावावेश में आकर इसे गाने लगते है तब इसे लिपिबद्ध करना बड़ा कठिन होता है। यदि गीत के संग्राहक ने गीत की कोई कड़ी लिखते समय छोड़ दी तो पुनः उस लिपि-बद्ध करना कठिन है। गवैया प्रारम्भ से ही किसी गीत को गा सकता है। गीत गाते समय किसी छूटी हुई पंक्ति को फिर से गाने में वह असमर्थ सा होता है। गीत की पुनरावृत्ति की उसकी असमर्थता से संग्रहकर्ता का कार्य दुरूह हो जाता है। उसका गीत अधूरा ही रह जाता है। ये गवैये इस तेजी के साथ इन गाथाओं (लोरकी, विजयमल आदि) को गाते है कि पहिले तो गीत के अर्थ को समझना कठिन है, फिर उसे उसी तेजी के साथ लिखना और भी कठिन हो जाता है।

स्त्रियाँ जब विवाह आदि माङ्गलिक अवसरों पर समवेत स्वर से गीत गाने लगती हैं तो गीत के अभिप्राय को समझ कर स्पष्ट रूप से उन गीतों को सुन कर लिखना कुछ साधारण व्यापार नहीं है। ये भी किसी गीत को बीच से ही दुहराकर नहीं गा पातीं।

४. गवैये सर्वदा गाने को तैयार नहीं

लोकगीतों के संग्रहकर्ता के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होती है कि गवैये सदा गाने के लिए तैयार नहीं होते। जब उनके मन में उमंग आती है तभी वे गाते हैं। वे ऋतु के अनुकूल ही गीतों को गाना पसन्द करते हैं, जैसे फागुन के दिनों में वे 'फगुआ' या होली गायेंगे और चैत के दिनों में 'चैता' या 'घाटों'। वे आज्ञा देकर गवाये नहीं जा सकते हैं। यदि आग्रह या भय के कारण वे गायेंगे भी तो उनका

हृदय उस गीत में नहीं होगा। उनका मन नहीं रमेगा। अतः संग्रहकर्ता को ऋतु के अनुकूल गीत सुनने और लिखने के लिए उस ऋतु के समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

एक दूसरी कठिनाई और है। किसी कार्य-विशेष को करते समय गाये जाने वाले गीतों—एक्शन सांग्स—की यह एक विशेषता है कि वे उस कार्य को करते समय ही अच्छी तरह से गाये जा सकते हैं, जैसे रोपनी के गीत धानको रोपते समय ही सम्यक् रीति से गाए जाते हैं। सोहनी के गीतों के विषय में भी यही बात समझनी चाहिए। एक बार इन पंक्तियों के लेखक को सोहनी के गीतों को खेत की मेड़ पर बैठकर लिखना पड़ा था, क्योंकि उस गीत को गाने वाली (अहीरिन) स्त्री घर पर उसे गाने के लिए तयार नहीं थी। इसमें सन्देह नहीं कि उपयुक्त वातावरण में ही गीतों को गाने में आनन्द आता है, परन्तु इस कारण संग्रहकर्ता का बहुत सा समय नष्ट होता है।

५. संकुचित मनोवृत्ति

गवैयों की संकुचित मनोवृत्ति भी इस संग्रह कार्य में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित करती है। प्रायः यह देखा जाता है कि गवैये गीतों को लिपिबद्ध कराने में बड़ा संकोच करते हैं। वे संग्रहकर्ता का स्वागत न करके किसी व्याज से उन्हें टालने की कोशिश करते हैं। संभवतः वे यह समझते हैं कि इन गीतों के लिपि-बद्ध हो जाने से उनके पेशे को धक्का लगेगा अथवा उनका आदर-सम्मान कम हो जायेगा। प्रस्तुत लेखक ने गोरख-पन्थी साधुओं से—जो कथरी लिए और सारङ्गी बजाते हुए अपनी पेट-पूजा की योजना करते फिरते हैं—गोपीचन्द तथा भरथरी की गाथाओं को लिखना चाहा था, परन्तु उसे इस कार्य में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। इन भिक्षुक गायकों की यह धारणा बद्धमूल है कि इससे उनकी जीविका जाती रहेगी। इन गायकों को यह क्या मालूम कि इन गीतों के लिपिबद्ध हो जाने से लोक साहित्य की कितनी अनमोल निधियाँ नष्ट होने से बच जायेंगी।

लोक गीतों के संकलनकर्ताओं के सामने उपर्युक्त कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। जिसे इन गीतों के प्रति अटूट अनुराग और अदम्य उत्साह न हो, वह इस कार्य में सफलीभूत नहीं हो सकता।

[ख] लोक-साहित्य-संग्रहकर्त्ता के उपादान

(क) आन्तरिक साधन

१. जनता के साथ तादात्म्य-भावना

लोक साहित्य के प्रेमी के लिए यह आवश्यक है कि जिस देश या प्रदेश को वह अपने कार्य का क्षेत्र बनाए वहाँ की जनता से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करे।

अपने को महान् समझना अथवा जिन लोगों के बीच कार्य करना है, उनको सभ्य या शिक्षित बनाने की भावना घातक सिद्ध होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि संग्रही अपने वैभव तथा सुन्दर एवं बहुमूल्य वेश-भूषा का प्रदर्शन उनके सामने न करे। सुष्ठु तथा सुन्दर व्यवहार, सज्जनतापूर्ण बर्ताव और स्थानीय शिष्टाचार के नियमों का पालन करना अनिवार्य है।[1] यदि स्थानीय शिष्टाचार का पालन न किया गया तो उस प्रदेश की जनता से सम्मान नहीं प्राप्त किया जा सकता। स्थानीय लोगों के कार्य-कलापों में दिलचस्पी लेना भी वांछनीय हैं, तभी वे लोग गीत और कहानियाँ सुनायेंगे अन्यथा नहीं। आशय यह है कि सभी प्रकार से वहाँ के लोगों के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिए।

२. सहानुभूति

संग्रह की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जनता के साथ वास्तविक सहानुभूति प्रदर्शित की जाय। स्थानीय विश्वासों, प्रथाओं तथा अंधपरम्पराओं के लिए सर्वाधिक सम्मान दिखलाना चाहिए, चाहे जनताकी धारणाएं कितनी भी तुच्छ तथा तर्कहीन क्यों न हों। यदि हम उनकी प्रथाओं का आदर न करेंगे तो वे लोग आत्मीयता की भावना नहीं रखेंगे। उदाहरण के लिए देहरादून जिले के जौन-सार-भावर क्षेत्र में बहुपति-प्रथा आज भी प्रचलित है। यदि किसी कुटुम्ब में पाँच भाई हैं तो उन सब की एक ही स्त्री होगी, जो पाँचों को अपना पति समझेगी। शास्त्रों ने बहुपतित्व-प्रथा को गर्हित बतलाया है। यदि कोई संग्रहकर्त्ता अपने कार्य के उद्देश्य से इस प्रदेश में जाय और वहाँ के लोगों से शास्त्र-विरुद्ध इस प्रथा की निन्दा करे तो उसका 'मिशन' कदापि सफल नहीं हो सकता। इस बात को गाँठ में बाँध लेना चाहिए कि जंगली तथा असभ्य जातियों के विश्वास और प्रथाएं हमें कितनी ही अद्भुत तथा निन्दित क्यों न मालूम हों, परन्तु स्थानीय निवासियों की दृष्टि में वे तथ्यपूर्ण और तर्कपूर्ण है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उनके दृष्टिकोण से ही उनकी प्रथाओं को समझने का प्रयास किया जाय।

बाहरी व्यक्ति जो किसी स्थान में संग्रह कार्य के लिए जाते हैं, उन्हें अनेक बातों की असुविधा होती है। वे स्थानीय जनता की प्रथाओं, रीतियों और विधि-विधानों को समझने में असमर्थ होते हैं। स्थानीय अभिवादन की प्रणाली, सम्बोधन

---

1 "A kindly, simple genial manner; much patience in listening and quick perception of and compliance with the local rules of etiquette and courtesy are needful"

सोफिया बर्न०—है० आ० फो०

करने का प्रकार तथा साधारण शिष्टाचार के नियमों को जानना कार्य में सहायक सिद्ध होता है। इनके प्रयोग से स्थानीय जनता का विश्वासपात्र बना जा सकता है। अपनी सहानुभूति प्रदान कर संग्रहकर्त्ता जब स्थानीय लोगों का विश्वसनीय बन जाता है, तभी वे अपने रहस्यों का उद्घाटन करते हैं।

३. अनुसन्धान-चातुरी

लोक-साहित्य की बिखरी हुई सामग्री को एकत्र करने के लिए संग्रही को साधारण बुद्धि से काम लेना चाहिए। उसे यह जानना चाहिए कि कौन सी सामग्री कहाँ से प्राप्त हो सकती है। कुछ प्रथाओं का पालन केवल पुरुष करते हैं, अनेक विधि-विधान केवल स्त्रियों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। कुछ रीतियाँ विशिष्ट पेशा या व्यवसाय करने वाली जातियों में ही सीमित हैं। प्राचीन कुलीन घरों या कुलों में अपनी विशिष्ट कुल-परम्पराएं हुआ करती हैं। उच्च जातियों में सामाजिक प्रथाएँ, व्रत, उत्सव और अन्धविश्वास सुरक्षित पाये जाते हैं। अतः संग्रही के लिए यह सम्पर्क वांछनीय है कि वह उपयुक्त व्यक्ति से स्थापित कर अपने कार्य की सिद्धि करे। उसे चतुरता से काम लेना चाहिए। जो व्यक्ति जिस विषय का अधिकारी, ज्ञाता या प्रमाणभूत (एथारिटी) हो, उसी से उस विषय की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

सोफिया बर्न ने लिखा है कि "युवती स्त्रियाँ प्रेम-गीत, टोटका, शकुनशास्त्र तथा भूत-दूत के विषय में प्रमाणभूत हैं। बूढ़ी स्त्रियाँ शिशु-गीत, लोक-कथा तथा जन्म, मृत्यु और बीमारी से सम्बंधित विधि-विधानों की अधिक जानकारी रखती हैं। संग्रही को पशु-पक्षियों के विषय में किसी शिकारी से बातचीत करनी चाहिए, लकड़हारे से वृक्षों के विषय में और गृहिणी से रसोई बनाने और कपड़ोंको साफ करने के सम्बंध में पूँछ-ताछ करनी चाहिए।"[1]

नीच कही जानेवाली अस्पृश्य जाति के अनेक व्यक्ति सुन्दर गीतों के भाण्डार हैं। दुसाध नामक एक अछूत जाति पचरा के गीत गाने में निपुण है।

---

1. Young women are the best authorities on love songs, charms, omens, and simple methods of divination. Old women on nursery songs and tales and all the lore connected with birth, death and sickness. One must talk to the hunter about birds and beasts, to the woodcutter about trees and to the house-wife about baking and washing.

घुमन्तू नट जाति के लोग अनेक गीतों को जानते हैं। अतः संग्रही के मन में स्पृश्यास्पृश्य की भावना नहीं आनी चाहिए। उसका यह परम कर्तव्य है कि वह इन लोगों के घर जाय और उनके रीति-रिवाजों, प्रथाओं और गीतों का संग्रह करे।

४. जाँच कर किसी तथ्य को स्वीकार करना

संग्रही को यह बात स्वयंसिद्ध रूप से स्वीकार नहीं कर लेनी चाहिए कि किसी जाति-विशेष में अमुक प्रथा का अभाव है अथवा उनमें अमुकगीत प्रचलित नहीं है या वे लोग अमुक प्रथा में विश्वास नहीं करते। यदि कोई बात संग्रही की दृष्टि या अनुसन्धान के अंतर्गत नहीं आती तो इसका यह अर्थ कभी नहीं समझना चाहिए कि उस प्रथा या गीत का अस्तित्व हैं ही नहीं। इसके विपरीत उसे चाहिए कि उक्त वस्तु के अभाव के साक्षीभूत प्रमाणों को लिपिबद्ध कर लें। किसी स्थान विशेष में किसी प्रथा, परम्परा या विश्वास के अभावों को लिख लेना उतना ही आवश्यक है, जितना कि उनकी सत्ता का लिपिबद्ध करना। किसी तथ्य को तब तक स्वीकार या अस्वीकार नहीं करना चाहिए जब तक कि उसके पक्ष और विपक्ष में पक्के प्रमाण न मिल जायँ।

५. स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग

जहाँ तक संभव हो संग्रही को स्थानीय भाषा में ही अपने संकलन का कार्य करना चाहिए। लोक-गीतों और कथाओं के संग्रह मे यह बात अत्यन्त आवश्यक है। प्रथाओं और रीति-रिवाजों को लिपिबद्ध करते समय उन स्थानीय पारिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए जिनके पर्यायवाची या समानार्थक शब्दों का हिन्दी भाषा में अभाव है। विवाह के अवसर पर उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में बहुत सी प्रथाएँ प्रचलित हैं—जैसे 'माटी कोड़ाई', 'हरदी लगाई', 'लावा भुजाई', 'नहछू-नहावन' आदि। ये प्रथाएँ लौकिक तथा स्थानीय हैं। अत-वैवाहिक प्रथाओं को लिपिबद्ध करने के साथ ही इस अवसर पर प्रयुक्त होने वाले विशेष शब्दों—'द्वारपूजा', 'अइगा' गुरहत्थी', 'नेवता', 'कोहबर', 'रोका' आदि—को इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि खड़ी बोली हिन्दी में इनके अभिप्राय को द्योतित करने वाले शब्दों का अभाव सा है।

६. यथा श्रुतम् तथा लिखितम्

लोक-साहित्य के संग्रहकर्ता को चाहिए कि वह जिस गीत या कथा को जिस प्रकार से सुनें, उसे उसी प्रकार से लिपिबद्ध करे। इस सम्बंध में उसका यही सिद्धान्त होना चाहिए कि 'यथा श्रुतम् तथा लिखितम्'। यदि लिखित गीत या कथा में कहीं अशुद्धि जान पड़े तो संग्रही को अपनी बुद्धि के अनुसार उसका संशोधन कदापि नहीं करना चाहिए। यह संशोधन कभी-कभी घातक सिद्ध होता है और गीत के मूल अर्थ को बिल्कुल नष्ट कर देता है। उदाहरण के लिए 'सलवलीं' शब्द को लीजिए। इसका भोज-

पुरी में अर्थ होता है—अनगढ़ी लकड़ी को छील-छाल कर चिकना बनाना। जैसे 'हम पार सलवली' अर्थात् मैंने चारपाईके पैर को चिकना तथा सुन्दर बनवाया। एक भोजपुरी गीत में इसी अर्थ में इस 'सलवलों' शब्द का प्रयोग हुआ है।[1] परन्तु डॉ० सर ग्रियर्सन जैसा सुप्रसिद्ध भाषा-मर्मज्ञ भी इस शब्द के अर्थ के चक्कर में पड़ गया है और उन्होंने 'सलवलों' पाठ को अशुद्ध समझ कर, इसका संशोधन 'सुलवलों' कर दिया है और अर्थ बतलाया है 'सुलाया' जो मूल अर्थ से बिल्कुल भिन्न तथा अशुद्ध है।

कहने का आशय केवल इतना ही है कि गीतों और कथाओं में संग्रही की ओर से संशोधन उपस्थित करना खतरे से खाली नहीं है। बहुत संभव है कि जिस पाठ को अपनी समझ में न आने के कारण हम अशुद्ध समझ रहे हैं, कुछ दिनों के बाद वह समस्या सुलझ जाय और उसका ठीक अर्थ लग जाय।

७. संग्रह की प्रामाणिकता

अपने संग्रह पर प्रामाणिकता का सिक्का लगाने के लिए संग्रही के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस व्यक्ति से लोक-साहित्य का संग्रह करे उसका नाम, अवस्था, लिंग, निवास स्थान (पूरे पते के साथ), व्यवसाय और उसकी स्थिति (Status) को भी लिपिबद्ध कर ले। यदि किसी व्यक्ति—विशेषकर स्त्रियों—को अपना नाम बतलाने में आपत्ति हो तो इसके लिए विशेष आग्रह नहीं करना चाहिए। गवैये का नाम, पता आदि लिख लेने से पहिला लाभ तो यह होगा कि यदि कोई विद्वान् व्यक्ति किसी गीत या कथा की यथार्थता की जांच करना चाहेगा तो वह इसे आसानी से कर सकेगा। दूसरा लाभ यह है कि किस जिले या प्रदेश में किस बोली का कौन सा रूप प्रचलित है यह जाना जा सकता है। किस जाति में कौन सा गीत या कथा किस रूप में प्रचलित है, इसका ज्ञान भी आसानी से हो सकता है। भाषा-शास्त्री के लिए उपर्युक्त सूचनाएं बड़ी लाभदायक हैं।

८. विभिन्न पाठों का संग्रह

एक गीत के जितने भी विभिन्न पाठ (versions) मिल सकें इन सभी का संग्रह करना वाञ्छनीय है। एक ही लोक-गाथा अनेक प्रान्तों या राज्यों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रचलित है। उदाहरण के लिए आल्हा को लिया जा सकता है। मूल आल्हा-जो बुन्देलखण्डी में लिखा गया था—आजकल उपलब्ध नहीं होता। परन्तु इसके कन्नौजी और भोजपुरी पाठ (versions) आज भी मिलते हैं। राजा गोपीचन्द तथा भरथरी की कथा लोक-गाथा के रूप में समस्त उत्तरी भारत में गायी जाती है।

---

१. 'चनन के पेड़ काटि पटिया रे सलवलों'।

ढोला-मारू की प्रेम-कथा राज-स्थान से लेकर भोजपुरी प्रदेश तक गवैयों के मुख से सुनी जाती है। यदि इन गीतों के विभिन्न पाठों का संकलन कर अध्ययन किया जाय तो यह पता चलेगा कि इनके कथानकों में स्थान-विशेष के कारण कितना परिवर्तन हो गया है। अतः भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इन पाठों का संग्रह आवश्यक है।

डा० चाइल्ड ने अंग्रेजी तथा स्काटिश लोकगीतों के जितने भी विभिन्न पाठ उपलब्ध हो सके हैं उन सब का संकलन अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ[1] में किया है। उन्होंने Lady Isabel and the Elf-knight नामक गीत के नव विभिन्न पाठों का; 'Sir Patrick Spens' शीर्षक गीत के अठारह विभिन्न पाठों का और "Mary Hamilton" शीर्षक गीत के अठाइस विभिन्नपाठों का संग्रह अपने प्रामाणिक ग्रन्थ में किया है।[2] पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'ग्रामगीत' में 'भगवती देवी' गीत के तीन-चार पाठों को लिपिबद्ध किया है, जिनमें प्रत्येक मे कथा-सम्बन्धी विशेषताएँ पायी जाती हैं।

(ख) वाह्य साधन

लोक-साहित्य के संग्रहकर्ता को वाह्य साधनों से भी सुसज्जित रहना चाहिए। जिस प्रकार लड़ाई में लड़ने वाले सैनिक के लिए बम और बन्दूक आवश्यक साधन हैं, उसी प्रकार लोक-साहित्य के संग्रही के लिए 'पेन' और पेपर' आदि अनिवार्य सामग्री है।

१. नोटबुक, पेन तथा पेन्सिल

संग्रही को चाहिए कि अपने साथ सदा एक नोटबुक रखा करें। यह नोट-बुक ऐसी होनी चाहिए जिसके पृष्ठ आवश्यकता पड़ने पर उससे अलग किये जा सकें या उसमें जोड़े जा सकें। प्रत्येक गीत, कथा, प्रथा, रीति-रिवाज, विधि-विधान, विश्वास तथा परम्परा को पृथक्-पृथक् पृष्ठों में लिखना चाहिए जिससे अधिक सामग्री उपलब्ध होने पर उन्हें एक साथ ही रखा जा सके।

नोटबुक के अतिरिक्त लाल और नीली-काली स्याही से युक्त फाउन्टेन पेन भी संग्रही के पास होने चाहिए। इसके साथ ही लाल पेंसिल और कार्पिंग पेंसिल का होना भी वांछनीय है। जिन वस्तुओं या तथ्यों का संकलन संग्रही स्वयं करे उन्हें नीली-काली स्याही से लिखता जाय। दूसरों द्वारा उसे जो सूचना मिले उसे लाल स्याही से लिखना चाहिए। इससे यह लाभ होगा कि उसे बाद में यह ज्ञात हो सकेगा किन वस्तुओं का संकलन उसने स्वयं किया है और कौन सी सूचना दूसरों के द्वारा प्रस्तुत की गई है। लाल और कार्पिंग पेन्सिल का भी यही उपयोग है। सभ्यता

---

१ इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स।

२ इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स (केट्रिज द्वारा सम्पादित) प्रिफेस, पृ० ५

केन्द्रों से बहुत दूर, जंगलों तथा पहाड़ों के बीच में निवास करने वाली जातियों के गाँवों में—जहाँ लेखन-सामग्री का नितान्त अभाव है—फाउन्टेन पेन और पेन्सिल का महत्त्व ज्ञात होता है। जहाँ ये साधन विद्यमान न हों तो वहाँ संग्रही की सब शक्ति व्यर्थ है।

२. केमरा

आदिम जातियाँ प्रायः ऐसे स्थानों में निवास करती हैं जहाँ यातायात के साधन बहुत थोड़े हैं। मानव-विज्ञान शास्त्र के विद्यार्थी के लिए इन जातियों के शरीर की बनावट, उनके मस्तक की आकृति, उनके रूप रंग का अध्ययन बड़ा आवश्यक है। इनके घरों की बनावट, देवी-देवताओं के मन्दिर, सामान्य शयन-गृह, टोना-टोटका की वस्तुएँ, भूत-दूत से आविष्ट स्थान तथा इन जातियों की वेशभूषा तथा अलंकार आदि का अनुसंधान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन वस्तुओं के सम्यक् अध्ययन के निमित्त संग्रही के लिए यह अनिवार्य है कि वह अपने पास केमरा अवश्य रखे जिससे वह इन समस्त वस्तुओं का चित्र (फोटो) ले सके। ग्रामीण लोग अपना फोटो देख कर बहुत प्रसन्न होते हैं। यदि उन्हें उनके फोटो की एक प्रति दे दी जाय तो बड़ी खुशी से वे अपने घर, मन्दिर तथा देवी-देवताओं की मूर्तियों के फोटो खींचने की आज्ञा दे देते हैं। इस प्रकार उनकी सहानुभूति और सहायता दोनों प्राप्त की जा सकती है। वर्तमान लेखक को इस तरीके से, अभीष्ट वस्तुओं के फोटो लेने में बड़ी सहायता मिली है।

३. रेकार्डिंग मशीन

लोक साहित्य के संग्रही का कार्य रेकार्डिङ्ग मशीन के बिना अधूरा ही समझना चाहिए। जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है गाँवों में भी लोक-गीतों के गवैयों का क्रमिक अभाव होता चला जा रहा है। कुछ वर्षों के पश्चात् ये गवैये खोजने पर भी नहीं मिलेंगे। लोक-गीतों को लिपिबद्ध करने पर उनके शरीर की तो रक्षा हो जाती है, परन्तु उनकी आत्मा उसमें नहीं होती। यह कहना पुनरुक्ति मात्र है, कि लोक-गीतों का प्राण संगीत है। संगीत के बिना उनके सुनने में आनन्द नहीं आता। विभिन्न गीतों के गाने के लिए विभिन्न लय हैं। उनकी 'ट्यून्स' (Tunes) अलग-अलग हैं। स्त्रियों के गीतों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। सोहर और झूमर के 'ट्यून' में बड़ा अन्तर है। जँतसार और रोपनी के गीतों के लय में भेद है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन पुरुष गवैयों को बुलाकर उनके गीतों की रेकार्डिङ्ग कर ली जाय, जिससे गीतों के शरीर के साथ उनके प्राणों को भी सुरक्षित रखा जा सके। यद्यपि बूढ़ी दादियाँ अपने गीतों और कथाओं को रेकार्ड कराने में संकोच करती हैं, फिर भी उनकी मौखिक सम्पत्ति को इस यंत्र के द्वारा सदा के लिए सुरक्षित कर लेना संग्रही का परम कर्तव्य है। यद्यपि इस मार्ग में आर्थिक तथा सामाजिक अनेक कठिनाइयाँ हैं, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि जहाँ चाह है वहाँ राह भी निकल ही आती है।

अध्याय २

१. लोक साहित्य का सामान्य परिचय

१. 'लोक' शब्द की प्राचीनता

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है।[1] इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है जिसका लट् लकार में अन्य पुरुष एक वचन का रूप 'लोकते' है अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ 'देखने वाला'। इस प्रकार वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा। 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में लोक शब्द के लिये 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध होता है।[2] वैदिक ऋषि कहता है कि विश्वामित्र के द्वारा उच्चरित यह ब्रह्म या मंत्र भारत की रक्षा करता है :

'य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवं।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं॥

ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है।[3] यथा—

नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥

उपनिषदों में अनेक स्थानों में 'लोक' शब्द व्यवहृत हुआ है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में यथार्थ ही कहा गया है कि यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह प्रभूत या व्याप्त है। कौन प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह से जान सकता है ?[4]

बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः।
क एतद् अस्य पुनरीहितो अयात्॥

---

१. सिद्धान्त कौमुदी, पृ० ४१७ (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९८९)
२. ऋ० वे० ३/५३/१२
३. वही १०/९०/२४
४. जै० उ० ब्रा० ३/२८

महावैयाकरण पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है तथा इनसे ठञ् प्रत्यय करने पर 'लौकिकः' तथा 'सार्वलौकिकः' शब्दों की निष्पत्ति की है।[1] 'सर्वत्र विभाषा गोः ६/१/१२२ सूत्र की वृत्ति को देखने से पता चलता है कि लोक और वेद में एङन्त गो शब्द के पद के अन्त में विकल्प भाव होता है।[2] इससे ज्ञात होता है पाणिनि ने वेद से पृथक् लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होने अनेक शब्दों की निष्पत्ति बतलाते हुए लिखा है कि वेद में इसका रूप अमुक प्रकार का है परन्तु लोक में इसका स्वरूप भिन्न प्रकार का समझना चाहिए।[3] वररुचि ने अपने वार्तिकों में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है।[4] इन्होने भी अनेक स्थानों पर इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि अमुक शब्द का लोक में अनेक रूपमें व्यवहार होता है। महाभाष्यकार पंतजलि ने लोक प्रचलित गौः शब्दके अनेक रूपों का उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में किया है।[5]

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के चौदहवें अध्याय में अनेक नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महर्षि व्यास ने अपनी शतसाहस्त्री सहिता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है यह ग्रन्थ (महाभारत) अज्ञान रूपी अधकार से अंधे होकर व्यथितलोक (साधारण जनता) की आंखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है।[6]

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानांजनशलाकाभिनत्रोन्मीलनकारकम् ॥

इसी प्रकार महाभारत में वर्णित विषयों की चर्चा करते हुए लोकयात्रा का

---

१. लोकसर्वलोकाट्ठञ् ५/१/४४
तत्र विदित इत्यर्थे। लौकिकः। अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः। सार्वलौकिकः।

२. लोके वेदे चैङन्तस्यगोरिति वा प्रकृतिभावः स्यात्पदांते। गो अग्रम्। गोऽग्रम्। ६/१/१२२ सूत्र की वृत्ति देखिए।

३. बहुलं छंदसि २/४/३९ तथा २/४/७३; २/४/७३ सूत्रों की व्याख्या देखिए।

४. लोकस्य पृणे। सि० कौ०; पृ० २६७/६ वार्तिक सूची

५. केषां शब्दानाम्? लौकिकानां वैदिकानां च। एकस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशाः तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः। महाभाष्य-प्रथम आह्निक।

६. महाभारत, आ० प०, १/८४

उल्लेख किया गया है।[1] इसी पर्व में एक अन्य स्थान पर पुण्य कर्म करने वाले का वर्णन उपलब्ध होता हैं।[2] महर्षि व्यास ने लिखा है :—

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।

अर्थात् जो व्यक्ति लोक को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है वही उसे सम्यक् रूप से जान सकता है।

भगवद्गीता में 'लोक' तथा 'लोकसंग्रह' आदि अनेक शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है।[3] भगवान् श्रीकृष्ण ने 'लोक संग्रह' पर बड़ा बल दिया है। वे अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं [4]।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ लोकसंग्रह का अर्थ साधारण जनता का आचरण, व्यवहार तथा आदर्श है।

(२) 'लोक' शब्द की परिभाषा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ 'जानपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।[5] विश्वभारती (शांतिनिकेतन) के उड़िया विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० कुंज बिहारी दास ने लोक गीतों की परिभाषा बतलाते हुए 'लोक' शब्द की भी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा हैं—'लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति हैं जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में

१. पुराणानां चैव दिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलम्।
वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः। (आ० पा० १/६९)

२. आ० प० १/१०१—२

३. गीता ३/३; ३/२२; ३/२४

४. गीता ३/२०

५. डा० द्विवेदी 'जनपद' वर्ष १, अंक १, पृ० ६५।

निवास करते हैं'।[1] इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं उन्हें 'लोक' की संज्ञा प्राप्त है। इन्हीं लोगों के साहित्य को लोकसाहित्य कहा जाता है। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है तथा परंपरागत रूप से चला आता है। यह साहित्य जब तक मौखिक रहता है तभी तक इसमें ताजगी तथा जीवन पाया जाता है। लिपि की कारा में रखते ही इसकी संजीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है।

(३) लोक-संस्कृति तथा लोक-साहित्य की पृथक् सत्ता

प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल से ही इस देश में संस्कृति की दो पृथक् पृथक् धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं।

(१) शिष्ट संस्कृति, (२) लोक संस्कृति। शिष्ट संस्कृति से हमारा तात्पर्य उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो कि बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ था; जो अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी और पथप्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद या शास्त्र था। लोक-संस्कृति से हमारा अभिप्राय जन-साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्सभूमि जनता थी और बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी। यदि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो यह पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है। प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय ने इस विषय का गंभीर विवेचन प्रस्तुत करते हुए लिखा है :—

'लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया-कलापों के पूर्ण परिचय के लिये दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक है। यह दोनों संहिताएँ दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचायिकाएँ हैं। अथर्ववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जनजीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जन जीवन हैं।[2]

ऋग्वेद में यज्ञ-यागादिक का विधान पाया जाता है तो अथर्ववेद में अंध-विश्वास, टोना टोटका, जादू, मंत्र आदि का। इस प्रकार ऋग्वेद शिष्ट तथा संस्कृत जन के विचारों की झाँकी प्रस्तुत करता है तो अथर्ववेद में लोक संस्कृति का चित्रण उपलब्ध होता है। अतः ये दोनों वेद दो भिन्न संस्कृतियों के प्रतीक हैं।

---

१. दि पीपुल वैट लिव इन मोर आर लेस प्रिमिटिव कंडीशन आउटसाइड दि स्फियर आव सोफिस्टिकेटेड इन्फ्लुएन्सेज।
डा० दास—ए स्टडी आप ओरिसन फोकलोर।

२. 'समाज' (काशी विद्यापीठ), वर्ष ४, अंक ३ (१९५८), पृष्ठ ४४६।

उपनिषद् काल में भी ये दोनों संस्कृतियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। जिन उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत् ब्रह्म आदि का वर्णन है वे अभिजात संस्कृति के ग्रन्थ हैं। परन्तु जिनमें लोक जीवन का विवरण है, लोकविश्वास तथा लोक परपराओं का उल्लेख है, उनका सम्बन्ध निश्चय ही लोक-संस्कृति से है। गृह्यसूत्रों को यदि लोक संस्कृति का विश्वकोष कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। यों तो सभी गृह्यसूत्रों में जन जीवन का चित्रण पाया जाता है परन्तु पारस्कर तथा आश्वलायन गृह्यसूत्रों में लोकसंस्कृति का विशेष वर्णन उपलब्ध होता है। भिन्न-भिन्न संस्कारों के अवसर पर आश्वलायन गृह्यसूत्र में जहाँ शास्त्रीय विधानों का वर्णन किया गया है वहाँ जनता में प्रचलित लोक विश्वासों तथा प्रथाओं का भी उल्लेख हुआ है।[1] पाली जातकों में लोक संस्कृति का सजीव चित्रण किया गया है। वावेरु जातक के अध्ययन से तत्कालीन व्यापारिक दशा का पता चलता है। नच जातक में वैवाहिक प्रथा का उल्लेख करते हुए वर के आवश्यक गुणों की ओर संकेत किया गया है।[2] इसी प्रकार अन्य जातकों से भी उस समय की साधारण जनता के रहन सहन, खान-पान, रीतिरिवाजों का पता चलता है। रामायण के आदिकाव्य में वर्णित सुग्रीव और जाम्बवान् ,जो बन्दरों और भालुओं के राजा थे—उन आदिम जातियों के नेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जो आज भी इस विशाल देश में लाखों की संख्या में विराजमान हैं। उस समय शिष्ट जन तथा साधारण जन की भाषा में भी अंतर था।—हनुमान् जब लंका में अशोक वाटिका में बैठी सीता से मिलने के लिये गए तब वे सोचने लगे कि यदि मैं 'संस्कृतां वाचम्'—शिष्ट लोगों की भाषा का प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझ कर डर जायगी।[3]

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि सांस्कृता वाक् को विद्वान लोग बोलते थे और साधारण लोग लोक भाषा का व्यवहार करते थे।

महाभारत में यद्यपि कौरवों तथा पांडवों की युद्ध गाथा ही प्रधानतया वर्णित है तथापि उसमें लोक संस्कृति की भी झाँकी देखने को मिलती है। महाभारत के सभा पर्व के अंतर्गत द्यूतपर्व में युधिष्ठिर तथा शकुनि के जुआ खेलने का वर्णन उपलब्ध होता है।[4] मांस बेचने वाले धर्मव्याध के साथ युधिष्ठिर के संवाद का उल्लेख पाया जाता

---

१. प्रो० बलदेव उपाध्याय : गृह्यसूत्रों में लोक संस्कृति।
२. प्रो० बटुकनाथ शर्मा : पालि जातकावली।
३. वाल्मीकि रामायण, सुन्दर कांड।
४. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व) पृ० ८४५-९१४ (गीता प्रेस का संस्करण)

है। व्यास जी के जन्म की कथा, राजा शान्तनु का धीवर कन्या से विवाह, द्रौपदी का बहुपतित्व आदि सैकड़ों प्रथाओं का उल्लेख महाभारत में हुआ है जिनसे तत्कालीन लोक संस्कृति पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने वेद से पृथक् लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि मैं लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ :[1]

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।

संस्कृत के कवियों तथा नाटककारों की कृतियों में लोक संस्कृति का जो विराट् और भव्य रूप देखने को मिलता है उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने अपने ग्रंथों में शिष्ट संस्कृति तथा लोक संस्कृति का समान रूप से वर्णन किया है। मेघदूत में यक्ष के घर की वापी का वर्णन करते हुए जहाँ कालिदास ने 'वापी चास्मिन् मरकतशिला बद्धसोपानमार्गा' लिख कर उच्च वर्ग के लोगों के वैभव का वर्णन किया है वहाँ उनकी सूक्ष्मदृष्टि में लोक संस्कृति का चित्र भी प्रस्तुत किया है। धान के खेत की रखवाली करने वाली स्त्रियों द्वारा ईख की छाया में बैठकर लोक गीतों के गाने का उल्लेख इस महाकवि ने किया है :[2]

इक्षुच्छायानिषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः॥

शूद्रक रचित मृच्छकटिक नाटक में उस समय की सामाजिक दशा का जो चित्रण किया गया है उससे साधारण जनता की संस्कृति का पता चलता है।

लोक साहित्य भी अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद में अनेक गाथाएँ उपलब्ध होती हैं जो उस समय गाई जाती थीं। शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसी गाथाएँ प्राप्त होती हैं जिनमें अश्वमेधयज्ञ करने वाले राजाओं के उदात्त चरित्र का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इस विषय का विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत किया जायगा।

भारतीय शास्त्रों ने लोक में प्रचलित साहित्य के विभिन्न रूपों की कभी उपेक्षा नहीं की है। नवीन छंद, नवीन गीत पद्धति, नवीन नाट्यरूपक बराबर ही लोकचित्त से छनकर उच्च शास्त्रीय धरातल तक पहुँच रहे हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र ने लोक प्रचलित नाटकों को भी अपनी विवेचना का विषय बनाया है। प्राचीन नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट प्रतीत हो जाती है।

---

१. गीता, १५।१८
२. रघुवंश, सर्ग ४

उन दिनों खेले जाने वाले नाटकों में सभी प्रकार के मनोरंजक तथा रसोद्दीपक रूपक होते थे। शृङ्गार, वीर या करुण-रस प्रधान ऐतिहासिक 'नाटक'; नागरिक रईसी' की कविकल्पित प्रेम कथाओं के 'प्रकरण'; धूर्तों और दुष्टों का हास्योत्तेजक उपाख्यानमूलक, 'भाण'; स्त्रियों से रहित,वीर-रस-प्रधान एकांकी 'व्यायोग'; तीन अंकों वाला 'समवकार'; भयानकदृश्यों को दिखाने वाला, भूत-प्रेत-पिशाचों का उपस्थापक 'डिम'; स्वर्गीय प्रेमिका के लिये जूझ पड़नेवाले प्रेमिकों की सनसनी खेज प्रतिद्वंदिता वाला 'ईहामृग' स्त्री शोक की करुण कथा से संबंधित एकांकी 'अंक'; एक ही पात्र द्वारा अभिनीयमान विनोद और शृङ्गार प्रधान 'वीथी'; जनता में हास्यरस की समान उत्पत्ति करने वाला 'प्रहसन' आदि रूपक अत्यंत लोक प्रिय थे।[1] रूपकों के अतिरिक्त अनेक उपरूपकों की भी रचना की गई थी जिनमें नाटिका का प्रचलन सबसे अधिक था। 'गोष्ठी' मे नव दस पुरुष और पाँच छः स्त्रियाँ साथ ही अभिनय करती थीं। 'हल्लीश' में एक पुरुष कई स्त्रियों के साथ नृत्य करता था। इसी प्रकार से अन्य छोटे मोटे रूपकों का भी अभिनय होता था।

यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि इतने विशाल संस्कृत साहित्य में इन उपरूपकों के उदाहरणस्वरूप एक भी ग्रंथ आज विद्यमान नहीं है। संभवतः ये लोक नाट्य के रूप मे उस समय जीवित थे। अतः इनके उदाहरण को समझाने के लिये पुस्तक लिखने की आवश्यकता नही समझी गई होगी। इसमें 'समवकार' नामक रूपक सात आठ घंटों में खेला जाता था। सात सात घंटों तक खेले जाने वाले इन पौराणिक नाटकों को लोक नाट्य समझना ही उचित जान पड़ता है। आज भी अनेक लोक नाटकों का रात रात भर अभिनय होता रहता है और जनता की अटूट भीड़ वहाँ लगी रहती है। परवर्ती काल मे रंगमंच बहुत उन्नत हो गया होगा और कालिदास तथा भवभूति जैसे महाकवियों के नाटक उपलब्ध होने लगे होंगे। तब ये लंबे नाटक उच्च स्तर के समाज मे उपेक्षित हो गये होंगे। साधारण जनता में फिर भी यह प्रचलित रहे। इनके लक्षणों को पढ़कर आज कल की रामलीला के पुराने लौकिक रूप का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

संस्कृत के विशाल कथा साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि गुणाढ्य की बृहत्कथा तथा सोमदेव के कथासरित्सागर में जिन कथाओं का संकलन हुआ है वे वास्तव में लोक कथाएँ ही थी जो इस देश में विभिन्न प्रदेशों में फैली हुई थीं। कथा-सरित्सागर की प्रस्तावना मे बताया गया है कि इन कथाओं का मूल वक्ता कोई अभिशप्त गंधर्व था जो शापवश विंध्याटवी में आ गया था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि गुणाढ्य पंडित ने मूक रूप में इन कथाओं को नगर से दूर रहने वाले

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : समाज, वर्ष १, अंक १, पृ० ६७

ग्रामीण या वन्य लोगों से सुना होगा। मध्ययुग के अनेक श्रेष्ठ प्रकरणों, चंपूकाव्यों और निजंधरी कथाओ का मूलरूप लोककथानक ही है। इस प्रकार भारतीय साहित्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग लोक साहित्य पर आश्रित है।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य का मूल अत्यन्त प्राचीन है तथा शिष्ट संस्कृति के साथ ही साथ लोक संस्कृति तथा साहित्य की धारा भी इस देश मे पुरातन काल से प्रवाहित रही है।

(४) 'फोकलोर' शब्द की उत्पत्ति

सर्व साधारण जनता के-रीति-रिवाज, रहन-सहन, अंधविश्वास, प्रथा-परंपरा, धर्म आदि विषयों के अध्ययन की ओर यूरोपीय विद्वानों का ध्यान सब से पहले आकृष्ट हुआ था। इस प्रसंग मे सब से पहले जान आब्रे का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने आज से प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व सन् १६८७ ई० में 'रिमेन्स आफ जेंटिलिज्म ऐंड जुडाइज्म' नामक पुस्तक लिखी थी। इसके लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् जे० ब्रैंड ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'आब्जर्वेशन आन पापुलर ऐंटीक्विटीज' सन् १८७७ ई० मे प्रकाशित की। १९वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक जन जीवन का अनुशीलन करने वाले शास्त्र को 'पापुलर ऐंटीक्विटीज' के नाम से पुकारा जाता था। सन् १८४६ ई० में इंगलैंड के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता विलियम जान टामस ने 'फोकलोर' इस नए शब्द का निर्माण किया।[1] यह शब्द इतना लोकप्रिय हुआ कि यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं मे इसका प्रयोग किया जाने लगा और आज संसार की सभी भाषाओं में इस विषय का अध्ययन प्रारंभ हो गया है। डा० फ्रेजर ने अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ 'गोल्डेन बाउ' की १८ भागों में लिख कर इस विषय को दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित कर दिया। ई. बी. टायलर ने 'प्रिमिटिव कल्चर' नामक पुस्तक का निर्माण दो बृहत् भागों में किया है जिसमें इन्होंने आदिम सभ्यता के उद्भव तथा विकास पर प्रचुर प्रकाश डाला है। जर्मन विद्वानों ने भी इस क्षेत्र मे बड़ा काम किया है जिसमे ग्रिम बन्धुओं—विलियम ग्रिम तथा जेकब ग्रिम—का कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है। इन्होंने जर्मनी की लोक-कथाओं को एकत्र कर, उनका वैज्ञानिक अध्ययन किया है जो 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' के नाम से प्रसिद्ध है। इंगलैंड की 'फोकलोर सोसाइटी' ने इस विषय के अध्ययन तथा अनुसंधान में बड़ा योगदान किया है। अब तो यूरोप का शायद ही कोई ऐसा देश हो जिसमें 'फोकलोर सोसाइटी' की स्थापना न हुई हो। अमेरिका के प्रत्येक राज्य में ऐसी संस्थाएं स्थापित हैं जिनमें 'अमेरिकन फोकलोर सोसाइटी' सब से प्राचीन तथा प्रधान है।

---

१. मेरिया लीच : डिक्शनरी, आफ फोकलोर भाग १, पृ०, ४०३

(५) 'फोकलोर' का पर्यायवाची शब्द 'लोक संस्कृति है'।

'फोकलोर' शब्द की उत्पत्ति का उल्लेख पहले किया जा चुका है। हिन्दी में इसके पर्यायवाची शब्द के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इन विभिन्न मतों का उल्लेख करने के पूर्व 'फोकलोर' शब्द के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ पर थोड़ा विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। 'फोकलोर' दो शब्दों से मिला कर बना है—(१) फोक, तथा (२) लोर। 'फोक' शब्द की उत्पत्ति ऐंग्लो सैक्सन शब्द (Folc) से मानी जाती है। जर्मन भाषा में इसे (Volk) कहते हैं। डा० बार्कर ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है परन्तु इसका यदि विस्तृत अर्थ लिया जाय तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। लेकिन 'फोकलोर' के संदर्भ में 'फोक' का अर्थ 'असंस्कृत लोग' है। दूसरा शब्द 'लोर' ऐंग्लो सैक्सन लर (lar) शब्द से निकला है जिसका अर्थ है 'सीखा गया' अर्थात् ज्ञान। इस प्रकार 'फोकलोर' का अर्थ हुआ 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान।'

'फोकलोर' शब्द के हिन्दी पर्याय के लिये पहले 'फोक' शब्द को लीजिये। इसके लिये हमारे सामने तीन शब्द आते हैं ग्राम, जन, तथा लोक। पं० रामनरेश त्रिपाठी का 'फोक' शब्द के लिये 'ग्राम' शब्द पर अत्यधिक आग्रह है।[1] इसी आधार पर उन्होंने 'फोकसांग' का हिन्दी पर्याय 'ग्राम गीत' स्वीकार किया है। परंतु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो 'ग्राम' शब्द 'लोक' के भाव को व्यक्त करने में नितान्त असमर्थ है। 'ग्राम' शब्द लोक की विशाल भावना को अत्यंत संकुचित कर देता है। यदि गंभीर दृष्टि से विचार करें तो लोक की सत्ता नगर तथा ग्राम दोनों में समान रूप से विद्यमान है। परन्तु ग्राम शब्द गाँव तक ही सीमित है। आज बंबई और कलकत्ता जैसे बड़े नगरों में भी निवास करने वाले निम्न वर्ग के लोग गीत गा गाकर अपना मनोरंजन करते है। अतः उनके गीतों को 'लोकगीत' न कहकर जो लोग 'ग्राम गीत' कहने का आग्रह करते है उनका यह आग्रह दुराग्रह मात्र है।

'जन' शब्द मे सभी प्राणियों का समावेश किया जा सकता है। वेदों में सामान्य जनता के लिये इस शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है। इससे संबंधित 'जनपद', 'जनप्रवाद' आदि शब्द प्रचलित हैं। परन्तु 'लोक' शब्द की एक अपनी परंपरा है; इसका विशेष अर्थ है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अन्य दोनों शब्दों की अपेक्षा यह 'फोक' के अधिक समीप भी है। अतः 'लोक' शब्द का ग्रहण ही समीचीन है।

---

१. त्रिपाठी : जनपद, खंड १, पृ० ५—१६

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'फोकलोर' शब्द का हिंदी पर्यायवाची शब्द 'लोकवार्ता' बतलाया है। उन्होंने इस शब्द का चुनाव वैष्णव संप्रदाय में प्रचलित 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' आदि ग्रंथों के 'वार्ता' शब्द के आधार पर किया है।[1] परन्तु इस शब्द को ग्रहण करने में अनेक आपत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। प्रथम तो यह शब्द पर्याप्त व्यापक नहीं प्रतीत होता। 'लोकवार्ता' शब्द में अधिक से अधिक लोककथा या लोकचर्चा का भाव वहन करने की क्षमता है। इसके अतिरिक्त 'लोकवार्ता' शब्द संस्कृत साहित्य में एक अन्य अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ मिलता है। संस्कृत के कोशों में इसका अर्थ प्रवाद, अफवाह, या किंवदंती दिया गया है।[2] संस्कृत के सुप्रसिद्ध कोशकार वामन शिवराम आप्टे ने अपने कोश में 'लोकवार्ता' का अर्थ लोक प्रिय सूचना (पापुलर रिपोर्ट) या सार्वजनिक अफवाह (पब्लिक रूमर) दिया है। सर मोनियर विलियम्स की संस्कृत डिक्शनरी में भी 'वार्ता' शब्द का अर्थ आप्टे के समान ही प्राप्त होता है। इस प्रकार संस्कृत के कोशों में 'वार्ता' शब्द का प्रयोग कहीं भी 'ज्ञान' या 'लोर' के अर्थ में नहीं किया गया है। अतः डा० अग्रवाल के 'लोकवार्ता' शब्द में अव्याप्ति दोष होने के कारण इसे ग्रहण नहीं किया जा सकता।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'वार्ता' शब्द का प्रयोग अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र के लिये किया गया है। मनु महाराज ने चार विद्याओं का वर्णन करते हुए 'वार्ता' शब्द का भी उल्लेख किया है जिससे उनका तात्पर्य अर्थशास्त्र से है।

आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ताः दण्डनीतिश्च शाश्वती।
विद्या ह्येताः चतस्त्रः स्यु लोकसंस्थितिहेतवे॥

इन उल्लेखों से विदित होता है कि 'वार्ता' वह शास्त्र है जिसे आजकल अंग्रेजी में 'एकोनामिक्स' कहते हैं।

महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में भी 'वार्ता' शब्द का व्यवहार किया गया है। यक्ष प्रश्न करता है :

का वार्ता ? किमाश्चर्यं ? कः पन्था ? कश्चमोदते ?

इस पर युधिष्ठिर उत्तर देते हुए कहते हैं :

अस्मिन महामोहमये कटाहे, सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन, भूतानि कालः पचतीति वार्ता॥

इन श्लोकों में आये हुए 'वार्ता' शब्द के अर्थ को संदर्भपूर्वक विचार करने से पता

---

१. सत्येन्द्रः ब्र. लो०. सा. अ, प्र० १

२. द्वारकाप्रसाद शर्माः संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ।

चलता है कि इसका प्रयोग 'नूतन समाचार' या 'नई बात' के अर्थ में किया गया है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में कहीं भी वार्ता शब्द का प्रयोग ज्ञान (लोर) के अर्थ में नहीं किया गया है। अतः फोकलोर के अर्थ में डा० अग्रवाल द्वारा प्रचारित 'लोकवार्ता' शब्द अपने दोषों—अवाचक तथा अव्याप्ति—के कारण स्वतः अराशार्या हो जाता है।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने 'फोकलोर' के लिये 'लोकयान' शब्द प्रयुक्त करने का सुझाव दिया है।[1] इन्होंने इस शब्द का निर्माण हीनयान, महायान आदि शब्दों के अनुकरण पर किया है। इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि ये उपर्युक्त शब्द बौद्ध धर्म के एक विशिष्ट संप्रदाय के द्योतक हैं तथा धार्मिक जगत् से संबंध रखते हैं। हीनयान, महायान तथा वज्रयान शब्द धर्म से संबंधित होने के कारण इसी अर्थ में रूढ़ बन गए हैं। अतः इनके अनुकरण पर जो 'लोकयान' शब्द बनाया जायगा उससे जन साधारण के धर्म का तो बोध हो सकता है परंतु उसके रहन-सहन, रीति-रिवाज, अंधविश्वास, परंपरा तथा प्रथाओं का बोध नहीं हो सकता। अतः, अव्याप्ति दोष से युक्त होने के कारण इस शब्द को भी स्वीकार करने में हम नितान्त असमर्थ हैं। इधर कुछ विद्वानों ने 'लोकायन' शब्द की ओर भी संकेत किया है।[2] इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ 'लोक की गति' है। परंतु 'फोकलोर' के विस्तृत तथा व्यापक अर्थ को द्योतित करने में यह अत्यन्त अशक्त है। यह शब्द हिंदी से कुछ अपरिचित सा भी है। अतः इस शब्द को भी ग्रहण करने में अनेक आपत्तियाँ उपस्थित हैं।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार 'फोकलोर' के लिए 'लोकसंस्कृति' शब्द का प्रयोग नितांत उपयुक्त एवं समीचीन है। लोक संस्कृति के अंतर्गत जन-जीवन से संबंधित जितने आचार-विचार, विधि-निषेध, विश्वास, प्रथा, परंपरा, धर्म, मूढ़ाग्रह, अनुष्ठान, आदि हैं वे सभी आते हैं। जैसा आगे विस्तार से बतलाया जायगा, फोकलोर के अंतर्गत भी ये ही विषय समाविष्ट हैं। अतः 'लोक संस्कृति' शब्द 'फोकलोर' के व्यापक तथा विस्तृत अर्थ को प्रकाशित करने में सर्वथा समर्थ है। कोई भी परिभाषा या नवनिर्मित शब्द अव्याप्ति दोष से रहित होना चाहिये। 'फोकलोर' के अर्थ में 'लोक-संस्कृति' का प्रयोग इन दोषों से मुक्त है। 'लोकायन' तथा 'लोकयान' की भाँति इसमें अवाचक दोष भी नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि हिन्दी में 'लोकसंस्कृति' चिरपरिचित शब्द है। इसके उच्चारण मात्र से ही

---

१. राजस्थानी कहावतें, भाग १, कलकत्ता, भूमिका, पृ. ११

२. जनपद, खंड १ अंक १, पृ० ६६।

जनजीवन का चित्र, उनकी संस्कृति की झाँकी हमारे आँखों के सामने उपस्थित हो जाती है। जब हिंदी में यह शब्द पहले से विद्यमान है तब लोकवार्त्ता, लोकयान, तथा लोकायन जैसे अप्रचलित शब्दों का निर्माण कर उन्हें प्रचारित करने का प्रयास करना कहाँ तक संगत है? कुछ लोग कह सकते हैं 'लोक संस्कृति' शब्द 'फोक-कल्चर' का पर्याय हो सकता है फोकलोर का नहीं। परन्तु डा० उपाध्याय के सिद्धान्तानुसार 'फोक कल्चर' तथा 'फोकलोर' में कोई विशेष अंतर नहीं है। दोनों की सीमाएँ एक दूसरे के छोर को छूती हुई दिखाई पड़ती हैं।

इधर कुछ विद्वानों ने प्रयाग में 'भारतीय लोकसंस्कृति शोध संस्थान' की स्थापना की है जिसके तत्त्वावधान में गत दो वर्षों से 'अखिल भारतीय लोकसंस्कृति सम्मेलन' आयोजित किया जा रहा है। इन विद्वानों ने भी 'फोकलोर' के लिए 'लोकसंस्कृति' शब्द का ही प्रयोग करना उचित समझा है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी 'फोकलोर' के अर्थ में 'लोक संस्कृति' शब्द को ग्रहण करने का सुझाव उपस्थित किया है।[1] इस प्रकार डा० उपाध्याय की 'लोक संस्कृति' को डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का समर्थन प्राप्त है।

सभी दृष्टियों से विचार करने पर 'फोकलोर' के व्यापक अर्थ को प्रकाशित करने वाला एक मात्र शब्द 'लोक संस्कृति' ही ठहरता है। अतः लोक साहित्य के विद्वान इस शब्द को ग्रहण कर इसका व्यवहार तथा प्रचार जितनी शीघ्रता से करें उतना ही अच्छा है। हिन्दी में 'लोकवार्ता' शब्द ने जो अव्यवस्था और गड़बड़ी पैदा कर दी है वह 'लोकसंस्कृति' शब्द के प्रयोग से सदा के लिये नष्ट हो जायगी तथा लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के पार्थक्य को सरलता से समझा जा सकेगा।

(६) लोक संस्कृति और लोक साहित्य में अंतर

गत पृष्ठों में यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि 'फोकलोर' का समानार्थवाचक शब्द हिन्दी में 'लोक संस्कृति' है। आजकल अनेक विद्वान इन दोनों शब्दों के पार्थक्य को बिना समझे बूझे एक शब्द का दूसरे के लिये प्रयोग भ्रम वश कर दिया करते हैं जिससे उनके भावों को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। अतः इन दोनों शब्दों—लोक संस्कृति तथा लोकसाहित्य—के अंतर को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ लोकसंस्कृति शब्द का व्यवहार 'फोकलोर' के लिये किया गया है और 'लोक साहित्य' फोक लिटरेचर' के लिये प्रयुक्त हुआ है। अतः जो

---

१. डा० भोलानाथ तिवारी: सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, सं० २०१० (चैत्र-आषाढ)।

अंतर अंग्रेजी के फोकलोर तथा फोकलिटरेचर शब्दों में है वही भेद लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य में समझना चाहिये। सोफिया बर्न ने 'फोकलोर' के क्षेत्र विस्तार के संबंध में लिखा है कि यह एक जाति वाचक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसकेअन्तर्गत पिछड़ी हुई जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों के अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती है। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के संबंध में; भूत-प्रेतो की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में; जादू-टोना, संमोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते है। इनके अतिरिक्त इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन मे रीति-रिवाज़ तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज़ और अनुष्ठान इसमे आते है तथा धर्मगाथाएँ, अवदान (लीजेंड), लोक कहानियाँ, बैलेड, गीति, किंवदंतियाँ, पहेलिया और लोरियां भी इसके विषय है। संक्षेप में लोक की मानसिक संपन्नता के अंतर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वे सभी इसके क्षेत्र मे है। यह किसान के हल की आकृति नही है जो लोक संस्कृति के विद्वान को अपनी ओर आकर्षित करती है। प्रत्युत वे उपचार तथा अनुष्ठान हैं जिन्हें किसान हल को भूमि जोतने के काम मे लाने के समय करता है; जाल तथा वंशी की बनावट नही, बल्कि ये टोने-टोटके हैं, जिन्हें मछुआ समुद्र के किनारे करता है; पुल अथवा किसी भवन का निर्माण नहीं है, प्रत्युत वह बलि है जो उनके निर्माण के समय दी जाती है। लोक संस्कृति वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है; वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान, तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो, अथवा सामाजिक संगठन, तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रवेश में संपन्न हुई हो।[1] सोफिया बर्न ने फोकलोर के विषय को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है।[2]

(१) लोकविश्वास और अंध परंपराएँ।
(२) रीति-रिवाज तथा प्रथाएँ।
(३) लोक साहित्य।

---

१. सोफिया बर्नः ए हैंडबुक आफ् फोकलोर; डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ० पृ० ४-५
२. ए हैंडबुक आफ् फोकलोर

प्रथम श्रेणी के अंतर्गत पृथ्वी तथा आकाश, वनस्पति जगत्, पशु जगत्, मानव, मनुष्यनिर्मित वस्तु, आत्मा तथा परलोक, परामानवी व्यक्ति, शकुन, अपशकुन, भविष्यवाणी, आकाश वाणी, जादू टोना, आदि से संबंधित लोक विश्वास और परंपराएँ आती हैं। दूसरी श्रेणी में सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ, व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय, उद्योग-धन्धे, व्रत,-त्योहार, आदि के संबंध में प्रचलित रीति-रिवाजों का समावेश है। तीसरी श्रेणी में लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, बच्चों के गीत, खेल के गीत आदि अंतर्भुक्त हैं। इस प्रकार समस्त लोकसंस्कृति उपर्युक्त तीन विभागों में विभक्त की गई है।

सोफिया बर्न ने लोक संस्कृति का जो श्रेणी विभाग किया है उस पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि लोक साहित्य लोकसंस्कृति का एक भाग है, उसका एक अंश है। यदि लोक संस्कृति की उपमा किसी विशाल वट वृक्ष से दी जाय तो लोक साहित्य को उसकी एक शाखा मात्र समझना चाहिये। यदि लोकसंस्कृति शरीर है तो लोकसाहित्य उसका एक अवयव है। लोक संस्कृति का क्षेत्र-विस्तार अत्यन्त व्यापक है परन्तु लोकसाहित्य का विस्तार संकुचित है। लोक संस्कृति की व्यापकता जन जीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है परंतु लोकसाहित्य जनता के गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों और कहावतों तक ही सीमित है। एक का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है तो दूसरे का सीमित तथा संकुचित। लोक साहित्य अंग है तो लोक संस्कृति अंगी है। लोक संस्कृति में लोकसाहित्य का अंतर्भाव होता है परंतु लोकसाहित्य में लोकसंस्कृति का समावेश होना संभव नहीं है।

अतः उपर्युक्त विवेचन के द्वारा लोक संस्कृति से लोकसाहित्य का पार्थक्य स्पष्टतया प्रतीत होता है। अंग्रेजी में 'फोकलोर' तथा 'फोकलिटरेचर' का पार्थक्य स्पष्ट है। अतः हिंदी में इन दोनों शब्दों के समानार्थक लोक संस्कृति तथा लोकसाहित्य के भेद को समझने में प्रमाद नहीं करना चाहिए। आशा है, इन दोनों शब्दों के अंतर को समझाने के लिये इतना विवेचन पर्याप्त होगा।

(७) लोक साहित्य का क्षेत्र विस्तार

लोक साहित्य का विस्तार अत्यंत व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है उन सबको लोक साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक जिन षोडश संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है प्रायः उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाए जाते हैं; किं बहुना, प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाने की प्रथा

प्रचलित है। विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है उसका प्रभाव जन साधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। अतः बाह्य जगत् में इस परिवर्तन को देखकर हृदय में जो उल्लास या आनंद की अनुभूति होती है वह लोक गीतों के रूप में प्रगट होती है। खेतों की बोआई, निराई, लुनाई आदि के समय भी गीत गाए जाते हैं। जनता अपने पूर्व पुरुषों के शौर्यपूर्ण कार्यों को गा गाकर आनंद प्राप्त करती है। उनका यशोगान कर श्रोताओं के हृदय में वीररस का संचार करती है। ये गीत लोकगाथाओं की कोटि में रखे जा सकते हैं।

गाँव के बूढ़े जाड़े के दिनों में आग के पास बैठकर कहानियाँ सुनाया करते हैं। बूढ़ी दादियाँ तथा माताएँ बच्चों को सुलाने के लिये लोरियों तथा छोटी-छोटी कथाओं का प्रयोग करती हैं। जन मन के अनुरंजन के लिये गाँवों में साँग या नाट्य ग्रामीणजनों के मनोविनोद के अन्यतम साधन है। गाँव के लोग अपने दैनिक व्यवहार तथा वार्तालाप में सैकड़ों मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग किया करते है। छोटे-छोटे बच्चे खेलते समय अनेक प्रकार के हास्यजनक गीत गाते हैं। ये सभी गीत तथा कथाएँ लोक साहित्य के अंतर्गत आती है। इस प्रकार हम देखते है कि लोक साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े सभी लोगों की सम्मिलित संपत्ति है।

(८) लोक साहित्य का सामान्य परिचय

एक समय था जब संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसका आचार-विचार, रहन-सहन सरल, सहज तथा स्वाभाविक था। यह आडंबर तथा कृत्रिमता से कोसों दूर रहता था। वह स्वाभाविकता की गोद में पला हुआ जीव था। उसके समस्त क्रियाकलाप--उठना, बैठना, हँसना, बोलना—स्वाभाविकता में आगे रहते थे। चित्त के आह्लाद के लिये, मन के अनुरंजन के लिये साहित्य की रचना उस समय भी होती थी और आज भी होती है; परंतु दोनों युगों के साहित्य में जमीन-आसमान का अंतर है। आज का साहित्य अनेक रूढ़ियों, वादों से जकड़ा हुआ है, कविता पिंगल शास्त्र की नपी तुली नालियों में प्रवाहित होती है, अलंकार के भार से वह बोझिल है, कथाओं में अनेक प्रकार के शिल्प विधान (टेक्नीक) को ध्यान में रखना पड़ता है तथा नाटकों की रचना में अनेक नाटकीय नियमों का पालन करना पड़ता है। परंतु जिस युग की हम चर्चा कर रहे हैं उस युग के साहित्य का प्रधान गुण था-स्वभाविकता, स्वछंदता तथा सरलता। वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वछंद था जितना आकाश में

विचरने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितना गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है वही हमे लोक साहित्य के रूप मे उपलब्ध होता है।

सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है उसे लोक साहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिये लिखा गया हो।[1]

१—दि पोएट्री आव् दि पीपुल, वाई दि पीपुल, फार दि पीपुल।

अध्याय ३

भारत में लोक साहित्य की प्राचीन परम्परा

भारत में लोक साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। संस्कृत में लोक साहित्य की उत्पत्ति तथा विकास की कथा बड़ी मनोरंजक है। सुदूर प्राचीन काल में किस प्रकार लोक साहित्य का प्रचार हुआ और किस प्रकार वे भिन्न-भिन्न शताब्दियों से होकर आज भी अपनी स्थित को बनाए हुए हैं—यह विषय नितांत विचारणीय एवं माननीय है।

लोकगीतों का बीज हमारे सबसे प्राचीन तथा पवित्र ग्रंथ ऋग्वेद में पाया जाता है। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है, वे ही लोकगीतों के पूर्व प्रतिनिधि है। पद्य या गीत के अर्थ में 'गाथा' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के अनेक ग्रंथों में उपलब्ध होता है।[1] गाने वाले के अर्थ में 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों में मिलता है।[2] 'गाथा' शब्द का व्यवहार एक प्रकार से विशिष्ट साहित्य के अर्थ में ऋग्वेद में किया गया है जहाँ इसे 'रैभी' और 'नाराशंसी' से पृथक् निर्दिष्ट किया गया है।[3] ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में गाथाओं का विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण ने ऋक् और गाथा में पार्थक्य दिखलाया है।[4] दोनों में अंतर यह था कि ऋक् दैवी होती थी और गाथा मानुषी, अर्थात् गाथाओं के निर्माण या उत्पत्ति में मनुष्य का

---

१. (क) प्रकृतान्यृजीषणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया। मये सोमस्य बोचत।—ऋ० वे० ८।३२।१

(ख) अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिःशीरशोचिषम्।—ऋ० वे० ८।७१।१४

(ग) तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत।
उतो कृपंत धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः॥ ऋ० वे० ९।९९।४

२. (क) इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत।
ऋ० वे० १।७।२

३. रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्यायाभद्रमिद्वारासो गाथयैति परिष्कृतं॥—ऋ० वे० १०।२५।६

४. ऐतरेय ब्राह्मण

योग अत्यंत आवश्यक था। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुशीलन से यही प्रतीत होता है कि गाथाएँ ऋक्, यजुः और साम से पृथक् होती थीं अर्थात् गाथाओं का प्रयोग मंत्र के रूप में नहीं किया जाता था। अतः प्राचीन काल में किसी राजा के किसी अवदान-सत्कृत्य—को लक्षित करके जो लोकगीत समाज में प्रचलित थे तथा जनता द्वारा गाये जाते थे—वे ही 'गाथा' नाम से साहित्य के एक पृथक् अंग के रूप में स्वीकृत किए गए। यास्क के निरुक्त की व्याख्या करते हुए दुर्गाचार्य ने गाथा का यह अर्थ स्पष्ट रूप से बतलाया है।[1]

'सपुनरितिहासः ऋगबद्धो गाथाबद्धश्च। ऋक् प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते। गाथाः शंसति, नाराशंसीः शंसति इति उक्तं गाथानां कुर्वीतेति।'

इसका आशय यह है कि वैदिक सूत्रों में कहीं-कहीं जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कहीं ऋचाओं के द्वारा और कहीं गाथाओं के द्वारा निबद्ध है।

वैदिक गाथाओं के नमूने शतपथ ब्राह्मण[2] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[3] में उपलब्ध होते हैं जिनमें अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के उदात्त चरित्र का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में यह गाथाएँ कहीं केवल श्लोक नाम से निर्दिष्ट है तो कहीं इन्हें 'यज्ञ गाथा' या केवल 'गाथा' कहा गया है।[4] जनमेजय के संबंध में यह गाथा कही गई है :

आसन्दीवति धान्यादं रूक्मिणं हरितस्रजम्।
अश्वं बबन्ध सारङ्गं देवेभ्यो जनमेजयः॥

दुष्यंत के पुत्र भरत की चर्चा निम्नलिखित गाथाओं में उपलब्ध होती हैं।[5]

हिरण्येन परीवृतान्कृष्णाञ्शुक्लदतो मृगान्।
मरुत्तारे भरतोऽददाच्छतं ब्रह्मानि सप्त च॥
भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः।
यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मण वद्धशो गा विभेजिरे॥
अष्टा सप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात्पञ्चपञ्चाशतं हयान्॥

१ निरुक्त ४।६ की व्याख्या

२. शतपथ ब्राह्मण, कांड १३, अध्याय १, ब्राह्मण ५

३. ऐतरेय ब्राह्मण, ८।४

४. तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते। तां गाथां दर्शयति।—
ऐतरेय ब्राह्मण ३९।७; तत्र प्रथमं श्लोकमाह। —वही, ३९।९

५. ऐतरेय ब्राह्मण, ३९।९, श्लोक १, २, ३, ५.

महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदायुः पञ्च मानवाः ।।

इन ऐतिहासिक गाथाओं की परंपरा महाभारत काल में भी अक्षुण्ण दिखाई पड़ती है । व्यास की इस शतसाहस्त्री संहिता में दुष्यंत के यशस्वी पुत्र भरत के संबंध में अनेक गाथाएँ उपलब्ध है जो नितांत प्राचीन प्रतीत होती है । ऐतरेय ब्राह्मण वाली गाथाएँ ठीक उसी रूप में श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंद में भी पाई जाती हैं ।

ये गाथाएँ राजसूय यज्ञ के अवसर पर तो गाई ही जाती थीं, इसके अतिरिक्त विवाह के शुभ महोत्सव पर भी इन गाथाओं के गाने का विधान मैत्रायिणी संहिता[1] में उपलब्ध होता है । इसी विधान के अनुसार पारस्कर गृह्यसूत्र[2] में विवाह संबंधी दो गाथाएँ पाई जाती है :

अथ गाथां गायति ।
सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजनीवती ।
यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः
यस्यां भूतंसमभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् ।
तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ।।

आश्वलायन गृह्यसूत्र[3] में सीमन्तोन्नयन के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा का उल्लेख हुआ है । वहाँ सोम की प्रशंसा में यह गाथा दी गई है ;

तौ चैतां गाथां गायतः—
सोमो नोराजाऽवतु मानुषी :
प्रजा निविष्ट चक्रासौ ।

इन समस्त उल्लेखों से यही प्रतीत होता है कि राजसूय यज्ञ, विवाह तथा सीमंतोन्नयन के शुभ अवसरों पर ऐसी गाथाएँ गाई जाती थीं जो प्राचीन काल से परंपरागत रूप में चली आती थीं । राजसूय यज्ञ के समय ऐतिहासिक गाथाओं तथा विवाहादि के अवसर पर देवता विषयक प्रचलित गाथाओं के गाने का नियम था, यह पूर्वनिर्दिष्ट उदाहरणों से स्पष्ट होता है ।

वैदिक गाथाओं के समान पारसियों की धर्म पुस्तक अवेस्ता में उपलब्ध गाथाएँ अवेस्ता के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक प्राचीन स्वीकृत की गई है । इन गाथाओं में पारसी धर्म के मूल सिद्धान्त बड़ी ही सुन्दरता के साथ प्रतिपादित किए

---

१. मै० सं० ३।७।३
२. पारस्कर गृह्यसूत्र, कांड १, खंडिका ७।
३. आ० गृ० सू० १।१५

गए है। पालिजातकों के 'अनुशीलन से पालि भाषा मे उपनिबद्ध गाथाओं का पता चलता है। ये गाथाएँ प्राचीन काल से परंपरा रूप मे प्रचलित थी और इनमे उस काल मे विख्यात लोकप्रिय कथाओं का सारांश उपस्थित किया गया है। भगवान गौतम बुद्ध के पूर्वजन्म से संबद्ध कथाएँ–जिन्हे 'जातक' कहा जाता है–इन्ही गाथाओ के पल्लवीकरण से आविर्भूत हुई है। ये गाथाएँ बुद्ध भगवान के समसामयिक प्रतीत होती है। प्रसिद्ध सिह चर्मजातक से—जिसमे व्याघ्रचर्म से आच्छादित गर्दभ की मनोरंजक कथा वर्णित है—ये दो गथाएं दी जाती है जिनसे कथा की मूल घटना की पर्याप्त सूचना मिलती है।[1]

नेतं सीहस्स नदितं न व्यग्घस्स न दीपिनो।
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो।
चिरम्पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवम्।
पारुतो सीहचम्मेन रवमानो च दूसयी ॥

विक्रम संवत् की तृतीय शताब्दी मे—जब प्राकृत भाषा का बोलबाला था—लोक गीतों की उन्नति बड़े जोर शोर से हुई। राजा हाल या शालिवाहन के द्वारा संग्रहीत 'गाथा सप्तसती' से पता चलता है कि उस समय लोकगीत बनाने तथा गाने की प्रथा बहुत ही अधिक थी। राजा हाल ने एक करोड़ गाथाओं मे से सुन्दर तथा श्रेष्ठ केवल सात सौ गाथाओ को चुना और इस प्रकार उन्हें काल-कवलित होने से बचा लिया। ये गाथाएँ सरस गीतकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण है। रस से ओत-प्रोत इन गाथाओं को पढ़कर लोकसाहित्य की माधुरी का तनिक मजा लिया जा सकता है। रसोई बनाते समय कोई सुन्दरी फूंक मारकर आग जलाना चाहती है परन्तु आग जलती नही। इसका कितना सरस कारण इस गाथा में दिया गया है :

रन्धणकम्मणिउणिए मा जूरसु रत्तपाड़लसुअन्धम्।
मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥

किसी विरहिणी नायिका का चित्रण इस गाथा में कितना सुन्दर किया गया है।[2]

अज्जं गओत्ति, अज्जं गओत्ति, अज्जं गओत्ति गणिरीए।
पढ़म च्चिअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्तलिओ ॥

अर्थात् मेरा पति विदेश आज गया है, आज गया है, आज गया है, इस

---

१. प्रो० बटकनाथ शर्मा : पालि जातकावलि, पृ० १७

२. अमरुक : गाथा सप्तशती, ३३।८

प्रकार उसके जाने के दिन गिनने वाली विरहिणी ने दिन के पहले अर्ध भाग में ही दीवाल पर रेखाएँ खींचकर उसे चित्रित कर दिया।

वाल्मीकीय रामायण में भगवान् राम के जन्म के समय तथा श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के जन्म के शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मनोरंजक गीत गाने का स्पष्ट वर्णन होता है। आदि कवि वाल्मीकि ने राम जन्म के समय पर गंधर्वों द्वारा गाने तथा अप्सराओं द्वारा नाचने का उल्लेख किया है :[1]

जगुः कलं च गन्धर्वाः, ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥

महाकवि कालिदास ने अज के शुभ जन्म के अवसर पर राजा दिलीप के महल में वेश्याओं द्वारा नृत्य तथा मंगलवाद्य बजने का उल्लेख किया है।[2] इतना ही नहीं मेहनत मजदूरी करते—जैसे चक्की पीसना, धान कूटना, ढेंकी चलाना, खेती निराना, चरखा कातना आदि—समय जिस प्रकार आजकल स्त्रियाँ झुंड बाँधकर गीत गा गाकर अपनी थकावट मिटाती हैं, ठीक उसी प्रकार प्राचीन काल में भी हुआ करता था। प्रसिद्ध कवियत्री विज्जका (१२ वीं शताब्दी) ने धान कूटने वाली स्त्रियों के गीत का जो वर्णन किया है वह बड़ा ही रोचक है :

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोः कन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः ।
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभकम्पितोरःस्थल-
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलभगण्डनी गीतयः ॥

भाव यह है कि स्त्रियाँ धान कूट रही हैं और साथ-ही-साथ गाना भी गा रही हैं। मूसल उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ झनझन कर रही हैं। उनका उरःस्थल (छाती) हिल रहा है। मीठी हुंकार की आवाज तथा चूड़ियों के शब्द से मिलकर उनका गाना विचित्र आनन्द पैदा करता है। महाकवि श्रीहर्ष ने चक्की में सत्तू पीसने का उल्लेख किया है जिसकी सोंधी-सोंधी गंध पथिकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है :[3]

प्रतिहट्टपथे घरट्टजात—
पथिकाह्लादनसक्तुसौरभैः।

---

१. बालकांड, १८।१६

२. सुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्विनाः प्रमोदनृत्यैः सहवारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥—रघुवंश, ३।१९

१ नैषधीयचरित, सर्ग २, श्लोक ८५

कलहान्न घनान् यदुत्थितात्
अधुनाप्युज्झति घर्घरस्वनः ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी के समय से भी विभिन्न संस्कारों के अवसर पर लोकगीत गाने की प्रथा प्रचलित थी। भगवान् राम के जन्म के समय स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख गोस्वामीजी ने किया है :

गावहिं मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कल कंठ लजानी' ॥

इतना ही नहीं, तुलसीदास जी ने सोहर छंद मे 'रामललानहछु' की रचना कर लोक गीतों की महत्ता भी प्रतिपादित की है।

लोकसाहित्य के एक विशिष्ट अंग लोककथाओं की भी परंपरा कुछ कम प्राचीन नहीं है। वेदों तथा उपनिषदों में ऐसे उपाख्यान उपलब्ध होते है जिन्हे हम लोक-कथाओं का बीज या मूल कह सकते हैं। ऋग्वेद मे सरमा और पणि का संवाद तथा कठोपनिषद् में प्राप्त नचिकेता का आख्यान लोककथाओं के पूर्व रूप है। संस्कृत साहित्य में लोककथाओं का अनंत भांडार भरा पड़ा है। महाभारत मे अनेक आख्यान तथा उपाख्यान उपलब्ध होते है जो बड़े ही शिक्षाप्रद है। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' मे अनेक प्राचीन कथाओं का संग्रह किया गया है। सोमदेव का 'कथा सरित्सागर' वास्तव मे लोककथाओं का अगाध समुद्र है। विष्णु शर्मा द्वारा विरचित 'पंचतंत्र' कथासाहित्य के इतिहास मे अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। मध्यकाल मे इस ग्रन्थ का अनुवाद यूरोप की प्रायः प्रत्येक भाषा मे किया था। नारायण पंडित का 'हितोपदेश' सुन्दर तथा उपदेशप्रद कथाओं का संकलन है। यही बात 'शुक सप्तति' तथा 'पुरुष परीक्षा' के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है।

लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों की परंपरा भी बड़ी प्राचीन है। वेदों मे अनेक लोकोक्तियां उपलब्ध होती है, जैसे—न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। संस्कृत साहित्य मे सूक्तियां तथा लोकोक्तियाँ प्रचुर परिमाण मे प्राप्त होती है। 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' को लिखने वाले वैदिक ऋषि ने मानो सर्वप्रथम पहेली बुझाने का प्रयास किया है। मुहावरों का प्रयोग संस्कृत के कवियों ने अपने काव्यों मे प्रचुरता से किया है।

उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि लोक साहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन काल से लेकर आज तक अबाध गति से चली आ रही है। इसका प्रवाह अक्षुण्ण है।

अध्याय ४

लोक साहित्य सम्बन्धी सङ्कलन तथा अधुसंधान कार्य

(क) प्रारम्भिक इतिहास तथा क्रमिक विकास

१९वी शताब्दी के प्रारंभ में जब अंग्रेजों के शासन की नींव इस देश में जम गई तब उन्होंने भारतीय संस्कृति के अध्ययन की ओर भी दृष्टिपात किया। इसके पहले ही १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध (सन् १७८४ ई०) में सर विलियम जोन्स के स्तुत्य प्रयत्नों से 'एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल' नामक शोध संस्थान की स्थापना कलकत्ते में हो चुकी थी। १९वीं शताब्दी के उतरार्ध में जो अंग्रेज सिविलियन यहाँ शासन करने के लिए आये उनमें से अधिकांश योग्य शासक होने के अतिरिक्त गंभीर विद्वान् भी थे। उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति जिज्ञासा तथा इस देश के पुरातन इतिहास को खोजने की लगन विद्यमान थी। प्राचीन भारतीय इतिहास तथा पुरातत्त्व के क्षेत्र मे इन लोगों ने जो श्लाघनीय कार्य किया है वह इतिहास के प्रेमियो से छिपा नही है।

भारतीय लोक साहित्य के प्रारंभिक अनुसंधानकर्ताओं मे दो प्रकार के व्यक्ति दृष्टिगोचर होते है (१) अंग्रेज सिविलियन, तथा (२) ईसाई मिशनरी। प्रथमोक्त इस देश पर शासन करने के लिए आए थे, अपरोक्त अपने धर्म प्रचार हेतु। परंतु दोनों इस बात को अच्छी तरह से समझते थे कि जब तक इस देश की विभिन्न भाषाओं तथा साहित्यों का सम्यक् अध्ययन नही किया जाता तब तक जनता से संपर्क स्थापित नही हो सकता। धर्म प्रचार के लिए साधारण जनता की भाषा और साहित्य को जानना अत्यधिक आवश्यक था। अतः इसी समान प्रेरणा से प्रेरित होकर इन दोनों श्रेणियों के लोगो ने भारतीय इतिहास के शोध के साथ ही भारतीय भाषा तथा साहित्य का अध्ययन प्रारंभ किया।

भारतीय लोक साहित्य के अध्ययन का सर्वप्रथम सूत्रपात करने वाले जो अंग्रेज सिविलियन थे उनके कार्यो की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है, कर्नल जेम्स टाड ने इस पुनीत कार्य का श्रीगणेश किया था। टाड राजस्थान के अनेक देशी राज्यों में रेजीडेन्ट था। अतः उसे वहाँ से स्थानीय इतिहस, रस्म-रिवाज, रहन-सहन, रेष-भूषा आदि के अध्ययन का अधिक अवसर प्राप्त हुआ था। टाड ने अनेक वर्षों के कठिन परिश्रम के पश्चात् 'ऐनल्स ऐंड

ऐंटीक्विटीज़ आव् राजस्थान' नामक अपना सुप्रसिद्ध ग्रंथ सन् १८२९ ई० में प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में विभिन्न देशी राज्यों का इतिहास सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही विद्वान् लेखक ने राजपूतों की सामाजिक अवस्था, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद, वेश-भूषा आदि विषयों पर भी प्रचर प्रकाश डाला है। यह सत्य है कि इसमें लोकगीतों तथा कथाओं का संग्रह नहीं है, परन्तु कर्नल टाड को अपने ग्रंथ के निर्माण में राजस्थान में प्रचलित लोक गाथाओं, वीर कथाओं तथा चारणों द्वारा गाये गीतों से बड़ी सहायता मिली है। भारतीय लोक संस्कृति के अध्ययन का प्रथम प्रयास टाड ने अपने उक्त ग्रंथ में किया है, इस कारण इस पुस्तक का विशेष महत्त्व है।

जे. ऐबट ने सन् १८८४ ई० में पंजाबी लोकगीतों तथा लोककथाओं के संबंध में अपना एक लेख प्रकाशित किया।[1] पंजाब वीरप्रसू भूमि रही है। अतः वहाँ वीरों की अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। ऐबट ने इन्हीं वीरों की चर्चा अपने लेख में की है।

रेवरेंड एस० हिल्सप नामक पादरी ने मध्य प्रदेश की जंगली जातियों के संबंध में अनेक ज्ञातव्य विषयों का संग्रह किया था। सन् १८६६ ई० में सर रिचर्ड टेंपुल ने हिल्सप साहब के लेखों को संपादित कर प्रकाशित किया। मिस फ्रेयर नामक अंग्रेज महिला ने सन् १८६८ ई० में 'ओल्ड डेकन डेज' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें दक्षिण भारत की लोक कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। चार्ल्स ई. गोवर ने सन् १८७१ ई० में 'फोकसांग्स आफ् सदर्न इंडिया' नामक पुस्तक का संपादन किया। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भारतीय लोकगीतों का सर्वप्रथम संग्रह है। अतः यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। विद्वान् लेखक ने कन्नड़ लोकगीत, तथा बड़ागा गीत, कुर्ग गीत, तमिल गीत, कूरल, मलयालम गीत, तथा तेलुगु के लोकगीतों का संग्रह कर उनका केवल अंग्रेजी अनुवाद इस ग्रंथ में प्रकाशित किया है। इस प्रकार दक्षिण भारत की चार प्रधान भाषाओं—कन्नड़, तमिल, तेलुगु एवं मलयालम के लोकगीतों का सुन्दर अनुवाद इसमें उपलब्ध है। भारतीय लोकगीतों के संग्रह का सूत्रपात इसी ग्रंथ से समझना चाहिए।

डाल्टन ने सन् १८७२ ई० में 'डेस्क्रिप्टिव एथ्नोलाजी आव् बंगाल' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ का निर्माण किया जिसमें बंगाल में निवास करने वाली वाली विभिन्न जातियों के संबंध में बहुमूल्य सामग्री विद्यमान है। इसी वर्ष श्री आर. सी. कालवेल ने 'तामिल पापुलर पोइट्री' नामक अपना लेख प्रकाशित किया जिसमें तमिल भाषा

१. आन दि बैलेड्स ऐंड लीजेंड्स आव् दि पंजाब, जे० ए० एस० बी०, भाग २३, पृ० ५९—९१ तथा १२३—६३

के लोक गीतों पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है।[1] श्री एफ. टी. कोल ने सन् १८७६ में राजमहल में निवास करने वाली पर्वतीय जातियों के लोकगीतों के संबध में एक लेख लिखा।[2]

इसी समय जी. एच. डेमेंट ने 'बंगाली फोकलोर फ्राम दिनाजपुर' नामक पुस्तक लिखी जिसमें अनेक बंगाली लोककथाओं का संग्रह किया गया है। ये सन् १८७६ ई० तक (जबकि इनका देहांत हो गया) लगातार 'इंडियन एंटिक्वेरी' में लोक साहित्य संबंधी लेख लिखा करते थे। बंगाल की सुप्रसिद्ध कवियत्री तरुदत्त ने सन् १८८२ ई० में एंशेंट बैलेड्स एंड लीजेंड्स आव हिन्दुस्तान' का प्रकाशन किया। गाली लोककथाओं के सुप्रसिद्ध संग्रहकर्ता श्री लालबिहारी दे ने सन् १८८३ ई० में 'फोकटेल्स आव् बंगाल' का संग्रह किया। यह बंगाली कथाओं का सर्व प्रथम सुन्दर संग्रह है। यद्यपि अंग्रेजी अनुवाद के कारण इसमें मौलिक कहानियों की सुन्दरता बहुत कुछ नष्ट हो गई है, फिर भी ये कथाएं बड़ी रोचक हैं। इन्होंने अपनी दूसरी पुस्तक 'बंगाल पीजेंट लाइफ' में बंगाल के ग्रामीण जीवन का सच्चा तथा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। श्री आर. सी. टेंपुल ने सन् १८८४ ई० में 'लीजेंडस् आव दि पंजाब' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसमें पंजाब के सुप्रसिद्ध वीरों की गाथाएं संग्रहीत हैं। पंजाबी लोककथाओं के संग्रह का इसे संभवतः प्रथम प्रयास समझना चाहिए। अगले वर्ष सन् १८८५ ई० में श्रीमती स्टील ने 'वाइड अवेक स्टोरीज' पुस्तक लिखी जिसमें उन्हें आर. सी. टेंपुल का भी सहयोग प्राप्त था। यह कहानी संग्रह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें लेखकद्वय ने उस समय तक की प्राप्त समस्त कहानियों का अध्ययन करके उनमें वर्णित घटनाओं को श्रेणीबद्ध रूप में प्रकाशित किया है। इसी वर्ष श्री नटेश शास्त्री ने 'फोकलोर इन सदर्न इंडिया' का प्रकाशन किया जिससे लेखक के अथक परिश्रम का पता चलता है।

इसी वर्ष ई० जे० राबिन्सन का 'टेल्स एन्ड पोएम्स आव् साउथ इंडिया' प्रकाश में आया जिसमें दक्षिण भारत के लोक-गीतों तथा कुछ कथाओं का अंग्रेजी अनुवाद दिया गया है।

भारतीय लोकगीतों तथा लोककथाओं के संग्रहकर्ताओं में सरजार्ज ग्रियर्सन का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है। इन्होंने भाषा विज्ञान के क्षेत्र से जो महान् कार्य संपादित किया उससे भारतीय भाषाशास्त्री अपरचित नहीं हैं। 'लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया' नामक महा ग्रन्थ इनकी अमर रचना है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र के अतिरिक्त

---

१. इंडिया ऐंटीक्वेरी, भाग १, पृ० ६७—१०३

२. दि राजमहल हिलमेंस सांग, इ० ए० भाग ५, पृ० २२१—२२

लोक साहित्य के संग्रह तथा संरक्षण के लिये डा० ग्रियर्सन ने जो कार्य किया है वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस विद्वान् ने सन् १८८४ ई० में 'सम बिहारी फोक्सांग्स' नामक लेख प्रकाशित किया जिसमें बिहारी भाषा के विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का संग्रह है। इसके दो वर्ष के पश्चात् सन् १८८६ ई० में, डा० ग्रियर्सन का सम भोजपुरी फोकसांग्स' नामक वृहत् तथा विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हुआ जिसमें भोजपुरी के बिरहा, जँतसार सोहर आदि गीतों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने मूल गीत देकर उनका सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद भी दिया है। लेख के अंत में भाषा विज्ञान संबंधी टिपणियाँ दी गई है जिससे लेखक की विद्वत्ता का पता चलता है। यह भोजपुरी लोकगीतों के संग्रह का प्रथम प्रयास है। सन् १८८४ ई० में ग्रियर्सन ने विजयमल की लोकगाथा का संकलन किया था जो बंगाल के एशियाटिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। इसके अगले वर्ष सन् १८८५ ई० में, इन्होंने 'दि सांग आफ् आल्हाज् मैरेज' नामक लेख 'इंडियन ऐंटिक्वेरी' में छपवाया। इसमें आल्हा के विवाह से संबंधित लोकगाथा का मूल रूप दिया गया है। इसी वर्ष इन्होंने 'टू वर्शन्ज् आफ् दि सांग आव् गोपीचंद' का संकलन कर प्रकाशित किया। इस लेख में गोपीचंद की लोककथा का भोजपुरी तथा मगही पाठ एकत्रित किया गया है। सन् १८८९ ई० मे जर्मनी की सुप्रसिद्ध पत्रिका में डा० ग्रियर्सन का 'नयका बनजरवा' नामक गीत छपा। यह एक भोजपुरी लोक गाथा है जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में प्रचलित है। डा० ग्रियर्सन के संग्रह की विशेषता यह है कि इन्होंने लोकगीतों का मूल पाठ भी दिया है और उनका अंग्रेजी अनुवाद भी। इसके साथ ही इन्होंने ऐतिहासिक तथा भाषाशास्त्र संबंधी टिप्पणियाँ भी दी हैं। इन्होंने 'बिहार पीजेंट लाइफ' नामक ग्रन्थ भी लिखा है जिसमें ग्रामीण जन जीवन से संबंधित शब्दावली का संग्रह किया गया है।

भारतीय लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति के संग्रह तथा संरक्षण में विलियम क्रुक का योगदान कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। क्रूक एक अंग्रेज सिविलियन थे जो बहुत दिनों तक मिर्जापुर के कलक्टर थे। इन्होंने उत्तर प्रदेश के लोकगीतों का प्रचुर संग्रह तथा भारतीय लोकसंस्कृति का गंभीर अध्ययन किया। विलियम क्रूक ने सन् १८९१ ई० मे भारतीय लोकसाहित्य तथा संस्कृति को प्रकाश में लाने के लिये 'नार्थ इंडियन नोट्स एन्ड क्वेरीज' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया जिसने लोकसाहित्य की बड़ी सेवा की। इस पत्रिका के पृष्ठों में लोकगीतों तथा लोक कथाओं का बहुमूल्य संग्रह सुरक्षित है तथा लोकसंस्कृति की अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है। यह पत्रिका पाँच छः वर्षों तक प्रकाशित होती रही। सन् १८९६ ई० में क्रुक ने 'पापुलर रिलिजन ऐन्ड फोकलोर आव् नादर्न इंडिया' नामक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ

की रचना की। इसमें जन साधारण के अंधविश्वास, टोने-टोटके, नजर लगने तथा ग्रामदेवता, कुलदेवता, भूत-प्रेत, रीति-रिवाज आदि विषयों का बड़ा ही सांगोपांग तथा विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में भोजपुरी प्रदेश की प्रथाओं का वर्णन विशेष रूप से उपलब्ध होता है। क्रुक ने उत्तरप्रदेश की विभिन्न जातियों का विवरण चार भागों में 'कास्ट्स ऐंड ट्राइब्स आफ् नार्थवेस्ट प्राविंस' नाम से प्रकाशित किया है।

पं० रामगरीब चौबे ने, जो हिन्दी प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे, विलियम क्रुक के आदेश तथा प्रेरणा से उत्तर प्रदेश के लोकगीतों का संग्रह किया था जो उन्होंने सन् १८९३ ई० में 'नार्थ इंडियन नोट्स ऐंड क्वेरीज्' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया। इनके द्वारा संग्रहीत गीतों में हरदौल के गीत, कोयल के गीत तथा शिशु गीत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने 'इंडियन ऐंटीक्वेरी' में भी स्वसंकलित अनेक लोक-गीत छपवाए हैं।

जे० डी० ऐंडरसन ने सन् १८९५ ई० में आसाम राज्य की कछारी जाति के लोगों की लोककथाओं तथा शिशुगीतों का संकलन 'कलेक्शन आफ् कछारी फोकटेल्स ऐंड राइम्स' प्रस्तुत किया।

आर० एम० लाफ्नैस ने सन् १८९९ ई० में 'सम सांग्स आव दी पोर्चुगीज इंडियन्स' शीर्षक लेख प्रकाशित किया जिसमें गोआ निवासी भारतीयों के लोकगीतों का संकलन है।[1]

इस प्रकार १९वी शताब्दी के समाप्त होते-होते भारत के विभिन्न प्रांतों के लोकगीतों तथा कथाओं के कुछ संग्रह प्रकाश में आ गए। परंतु यह संकलन कार्य अभी तक बहुत अल्प हुआ था। सिविलियन लोगों तथा मिशनरियों ने इस कार्य को आगे भी जारी रखा जैसा आगे विवृत है।

स्विनर्टन ने पंजाबी लोक कथाओं का संग्रह बड़े परिश्रम से किया है। इसकी 'रोमैण्टिक टेल्स फ्राम दि पंजाब' का प्रकाशन सन् १९०३ ई० में हुआ। इस संकलन में राजा रसालू की सुप्रसिद्ध कथा का संग्रह किया गया है जिसका प्रचार अन्य प्रांतों में भी पाया जाता है। सन् १९०५ ई० में एफ० हान ने 'कुरुख फोकलोर इन ओरिजिनल' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उराँव लोगों के २०० लोकगीतों का संग्रह प्रस्तुत हैं। सन् १९०६ ई० में थर्स्टन मे 'एथ्नोग्रेफिक नोट्स इन सदर्न इंडिया' प्रकाशित की। थर्स्टन साहब ने दक्षिण भारत की विभिन्न जातियों का गहन अध्ययन किया था। सन् १९०९ ई० में इनकी 'कास्ट्स ऐंड ट्राइब्स आफ् सदर्न इंडिया' नामक प्रसिद्ध पुस्तक निकली। सन् १९१२ ई० में 'इनकी ओमेंन्स ऐंड सुपर-

१ इंडियन ऐंटीक्वेरी, भाग ३०, पृ० ४००—६

स्टीज़ंस आव् सदर्न इंडिया' प्रकाश में आई। यह पुस्तक अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें दक्षिण भारत के निवासियों के अंधविश्वास, शकुन, तंत्र-मंत्र, टोने-टोटके आदि का विस्तृत तथा प्रमाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। डब्ल्यू० टी० डेम्स ने सन् १९०७ ई० में 'पापुलर पोइट्री आव् बिलोचीज़' का प्रकाशन किया। इस ग्रंथ में अनेक वीर गाथाएँ, प्रेम संबंधी गीत तथा पहेलियाँ मूल रूप में दी गई हैं। इनके साथ ही इनका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है। आसाम प्रांत में मिकिर नामक जाति निवास करती है। ई० स्टेक ने सन १९०८ ई० में इस जाति की सामाजिक प्रथाओं का उल्लेख अपने इस ग्रंथ 'दि मिकिर्स' में किया है। सी० एच० बोपस ने सन् १९०९ ई० में बोडिंग द्वारा संकलित संथाली कहानियों का अंग्रेजी अनुवाद किया। सन् १९११ ई० में सलिगमैन ने 'वेद्दा' नामक जाति का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया। इसके अगले वर्ष, सन् १९१२ ई० शेक्सपियर नामक पादरी ने आसाम की लुशाई कुकी जाति की सामाजिक दशाओं का चित्रण अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किया। इसी वर्ष ए० जी० आगरकर ने बड़ौदा राज्य में निवास करने वाली जातियों के संबंध में अपनी पुस्तक लिखी जिसका नाम 'ए ग्लासरी आफ् कास्ट्स, ट्राइब्स ऐंड रेसेज इन बड़ौदा स्टेट' है। इसी समय लोक-कथाओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनमें ए० कुलक की 'बंगाली हाउसहोल्ड टेल्स' और सोभना देवी की 'ओरिएंट फेयरी' प्रसिद्ध है। डा० हीरालाल और रसल ने सन् १९१६ में मध्य प्रान्त (मध्य प्रदेश) की जातियों के संबंध में अपना विशाल ग्रन्थ 'दि ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स आफ् सेन्ट्रल प्राविंस आव् इंडिया' चार भागों में प्रकाशित किया जिसमें इस प्रांत में निवास करने वाली जातियों के लोकगीत तथा कथाएँ भी संग्रहीत हैं। सी० ए० बक की पुस्तक 'फेथ्स, फेयर्स ऐन्ड फेस्टिवल्स आफ् इंडिया' सन् १९१७ ई० में लिखी गई जिसमें लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति संबंधी अनेक ज्ञातव्य वस्तुएँ संग्रहीत हैं। सन् १९१८ ई० में बिहार सरकार ने डा० ग्रियर्सन की पुस्तक 'बिहार पीजेंट लाइफ' का पुनः प्रकाशन किया। इसके प्रकाशित हो जाने से ग्रामीण शब्दावली का संग्रह करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ।

सन् १९२० ई० तक लोक साहित्य की प्रचुर सामग्री एकत्रित, संपादित और प्रकाशित हो चुकी थी। परंतु अब तक का अधिकांश शोधकार्य विदेशी विद्वानों द्वारा ही किया गया था। भारतीय विद्वानों ने इतस्ततः अपने लोकसाहित्य का संकलन अवश्य किया था परंतु यह कार्य संगठित रूप से नहीं हुआ था। इस काल के पश्चात् इस देश के विभिन्न प्रांतों में अनेक भारतीय विद्वान अपने लोक साहित्य की रक्षा में जुट गए तथा इन्होने अथक परिश्रम द्वारा अपने साहित्य एवं संस्कृति की रचना की। बंगाल में डा० दिनेशचंद्र सेन, बिहार में रायबहादुर

शरच्चंद्र राय, उत्तर प्रदेश में पं० रामनरेश त्रिपाठी, गुजरात में झवेरचंद मेघाणी आदि विद्वानों ने इस कार्य को अपने हाथों में लिया और लोकसाहित्य की सेवा में अपना जीवन ही लगा दिया। डा० सर आशुतोष मुखर्जी बहुत बड़े विद्वान् तथा गुणग्राही व्यक्ति थे। जब वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर थे तब उन्होंने बंगला भाषा की प्रतिष्ठा उक्त विश्वविद्यालय में की तथा इसके लोक साहित्य की रक्षा के लिये प्रशंसनीय कार्य किया। उनकी प्रेरणा तथा आदेश से डा० दिनेशचंद्र सेन ने पूर्व बंगाल के मेमनसिंह जिले (अब पूर्वी पाकिस्तान में) के लोक गीतों का संकलन करवाया जो बाद में 'मैमनसिंह गीतिका' तथा 'पूर्व वंग गीतिका' के नाम से प्रकाशित हुआ। डा० सेन ने इन गीतों का अंग्रेजी अनुवाद 'ईस्टर्न बंगाल बैलेड्स' के नाम से चार भागों में सन् १९२३–३२ के बीच प्रकाशित किया। इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्त्वाधान में बंगला लोक साहित्य पर अनेक भाषण दिये जो 'फोकलिटरेचर आव् बेंगाल' के नाम से सन् १९२० ई० में प्रकाशित हुए। इसके पहले इन्होंने 'बंगला भाषा तथा साहित्य का इतिहास' भी अंग्रेजी में प्रस्तुत किया था। डा० सेन के लोक साहित्य संबंधी इन कार्यों से अनेक बंगाली विद्वानों को प्रेरणा प्राप्त हुई और उन लोगों ने बंगला लोक साहित्य का संग्रह किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इस कार्य में सक्रिय योगदान दिया है। इस विश्वविद्यालय से प्रकाशित मंगल काव्य के इतिहास तथा मनसा संबंधी लोकगीत इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। बंगला लोक साहित्य के साथ डा० दिनेशचंद्र सेन का नाम अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

बिहार के श्रीशरच्चंद्र राय का कार्य अत्यंत प्रशंसनीय है। वास्तव में श्री राय लोक-साहित्य-शास्त्री (फोकलोरिस्ट) नहीं प्रत्युत मानव-विज्ञान शास्त्री (एंथ्रोपालोजिस्ट) थे। इन्होने बिहार की मुंडा, उराँव, संथाल, बिरहोर आदि आदिम जातियों का अत्यंत विद्वत्तापूर्ण तथा गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। वे राँची में रहते थे और वहीं से 'मैन इन इंडिया' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करते थे जिसमें इन आदिम जातियों के संबंध में महत्त्वपूर्ण लेख छपते थे। इनकी सबसे प्रथम पुस्तक 'दि मुंडाज़ ऐंड देयर कन्ट्री' है जो सन् १९१२ में प्रकाशित हुई थी। इसमें बिहार की मुंडा जाति के लोगों की सामाजिक व्यवस्था का सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही अनेक मुंडा लोकगीत भी इसमें दिए गए हैं। इनकी दूसरी पुस्तक 'दि बिरहोर्स' है जो सन् १९२५ ई० में छपी थी। 'ओराँव रिलिजन ऐंड कस्टम्स' का प्रकाशन सन् १९२८ में हुआ था। इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने ओराँव नामक आदिम जाति के लोगों के धर्म तथा प्रथाओं का

वर्णन किया है। इस पुस्तक में भी अनेक लोकगीत दिये गए हैं। इसके पहले सन १९१५ ई० में ओराँवों के संबंध में इनकी एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी जिसका शीर्षक था 'दि ओराँव्स आव् छोटा नागपुर'। उड़ीसा के पर्वतों में निवास करने वाली 'भुइयां जाति' के लोगों के विषय में लिखी गई 'दि हिल्स भुइयाज आव् ओरिसा' का प्रकाशन सन् १९३६ ई० में हुआ। 'खारीज' नामक पुस्तक की रचना सन् १९३७ ई० में की गई जो अपने ढंग का अद्वितीय ग्रंथ है। इसमें खारी लोगों के ३७ लोकगीत तथा ५५ पहेलिया दी गई हैं। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि शरच्चंद राय का यह कार्य सर्वथा मौलिक है। ये बिहार में ही नहीं, प्रत्युत भारत में भी मानव-विज्ञान-शास्त्र के अग्रणी आचार्य थे। लोक साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले अनेक विद्वानों ने इनकी कृतियों से प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त किया है।

गुजरात में लोक साहित्य की एकांत-साधना में अपना समस्त जीवन खपा देने वाले स्वनामधन्य श्री झवेरचंद मेघाणी के कार्यों की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी ही है। श्री मेघाणी ने गुजराती लोकसाहित्य की जो सेवा की है वह उन्हें अमरत्व प्रदान करने के लिये पर्याप्त है। इन्होंने गुजराती लोक गीतों, लोक-कथाओं, शिशुगीतों; वीर गाथाओं आदि सभी का विशाल संग्रह किया है। 'कंकावटी' का प्रकाशन रनपुर से सन् १९२७ ई० में हुआ था। सन् १९२५ से ४२ ई० के बीच में 'रढ़ियाली रात' के नाम से चार भागो में लोकगीतों का संकलन इन्होंने प्रकाशित किया है। इस विशाल संग्रह में सभी प्रकार के लोकगीत संकलित हैं। सन् १९२८-२९ में 'चुंदड़ी' के दो भाग प्रकाश में आए। 'हालरडाँ' मे पालने के गीतों का सुन्दर संग्रह उपलब्ध होता है। 'सोरठी गीत कथाओं' का प्रकाशन सन् १९३१ ई० में हुआ जिसमें ग्रामीण कहानियों का संकलन है। इन संग्रहों के अतिरिक्त मेघाणी ने लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन भी प्रस्तुत किया है। बंबई विश्वविद्यालय में इन्होंने लोकसाहित्य के सिद्धांत पक्ष को लेकर अनेक सारगर्भित भाषण दिए जो बाद में 'लोक साहित्य नुं समालोचन' के नाम से सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ।[1] 'धरती नुं धावन' में मेघाणी द्वारा लिखी गई विभिन्न प्रस्तावनाओं का एकत्र संकलन किया गया है। मेघाणी सच्चे अर्थों में लोक साहित्य शास्त्री थे। ये लोकगीतों का संकलन ही नहीं करते थे प्रत्युत उन्हें अपने मधुर तथा ललित कंठ से गाकर श्रोताओं को आत्मविभोर कर देते थे। इन्होंने जिस एकाग्रचित्त तथा एकांत साधना से गुजराती के लोक साहित्य की सेवा की है उसका

१ बंबई विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

मूल्य आँकना अत्यंत कठिन है। मेधाणी के साथ ही गोकुलदास रामचुरा का नाम भी लिया जा सकता है जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा लोक साहित्य का भांडार भरा है।[1]

२० वीं शताब्दी के तृतीय दशक मे पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों के संग्रह का प्रशंसनीय कार्य प्रारंभ किया। इन्होंने बड़े श्रम से भारत के विभिन्न प्रांतों की अनेक वर्षों तक यात्रा करके कई हजार लोकगीतों का संकलन किया। सन् १९२९ ई० मे इन्होंने कविता कौमुदी (भाग ५)—ग्रामीण गीत—का प्रकाशन किया जिसमे उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के लोक गीतों का संकलन प्रस्तुत है। त्रिपाठी जी हिन्दी लोकगीतों के संग्रहकर्ताओं के सेनानी एवं अग्रणी थे। इन्होंने 'हमारा ग्राम साहित्य' नामक पुस्तक भी लिखी है जिसमे लोक गीतों, कहावतों तथा मुहावरों का संग्रह है। परंतु अपने ग्राम गीतो का प्रथम भाग प्रकाशित कर त्रिपाठी जी ने इस कार्य से विश्राम ले लिया और वे लोक साहित्य की सेवा से तटस्थ हो गये। दुःख है कि अब वे इस संसार मे नही है। फिर भी हम उनकी सेवाओं के लिये ऋणी है तथा उनके पथप्रदर्शन के लिये उनका आभार स्वीकार करते हैं।

लोकगीतों के संग्रहकर्ताओ मे श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। इन्होंने भारत, बर्मा, लंका आदि देशो मे घूम घूमकर लोक गीतो का संग्रह किया है। अपने जीवन के अमूल्य बीस वर्ष इन्होंने इस कार्य में लगाए है तथा लगभग तीन लाख लोक गीतो का प्रकाड संकलन किया है। सत्यार्थी जी ने लोक साहित्य संबंधी लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं जिनमे 'बेला फूले आधी रात,' 'धरती गाती है,' 'बाजत आवे ढोल,' तथा 'धीरे बहो गंगा' अधिक प्रसिद्ध है। सत्यार्थी जी ने किसी एक प्रात के लोक गीतो का वैज्ञानिक संग्रह प्रस्तुत नही किया है प्रत्युत लोकसाहित्य के संबंध में भावात्मक लेख लिखे है तथा उदाहरणस्वरूप कुछ गीत दे दिये है। इन्होंने किसी प्रांत के दो चार गीतों को पकड़ कर एक लेख लिख मारा है। अतः इनकी रचनाओ मे उस गंभीरता तथा विद्वत्ता का अभाव है जो एक लोक-साहित्य-शास्त्री मे होना चाहिए।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लोकसाहित्य के अध्ययन को बड़ी प्रगति प्रदान की है। सन् १९४४ मे चतुर्वेदी जी की प्रेरणा तथा प्रयास से ओरछा राज्य की राजधानी टीकमगढ़ मे 'लोकवार्त्तापरिषद्' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति के विभिन्न अंगों

---

२ मेधाणी के उपयुक्त सभी ग्रंथ गुर्जर-ग्रंथ-रत्न-कार्यालय, गांधीरोड, अहमदाबाद से प्राप्त हो सकते हैं।

का संकलन, संपादन तथा प्रकाशन था। इस परिषद् के तत्वावधान में 'लोकवार्ता' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी श्री कृष्णानंद जी गुप्त के संपादकत्व में प्रकाशित होती थी जो संभवतः पांच छः अंकों के बाद बन्द हो गई। सन् १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब देशी राज्यों का विलयन होने लगा तब यह 'लोकवार्ता परिषद्' भी विलीन हो गई। परंतु अपने अल्पकालीन जीवन में ही इस परिषद् ने स्तुत्य कार्य किया। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' नामक पाक्षिक पत्र द्वारा बुंदेलखंडी लोकसाहित्य की अनुपम सेवा की। परंतु दुःख है कि यह पत्र भी अब बंद हो गया है। चतुर्वेदी जी के ही उद्योग से काशी में सन् १९५२ ई० में 'हिन्दी जनपदीय परिषद्' की स्थापना की गई थी। इस परिषद की ओर से 'जनपद' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। इसके संपादक-मंडल में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० उदयनारायण तिवारी जैसे धुरंधर विद्वान् थे। परंतु यह पत्रिका भी अर्थाभाव के कारण चार अंकों के पश्चात् अकाल कालकवलित हो गई।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक साहित्य के प्रेमियों को सदा प्रोत्साहित किया है। आपके 'पृथ्वीपुत्र' नामक ग्रंथ में 'जनपद कल्याणी योजना' का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। आप के तथा अन्य विद्वानों के उद्योग से मथुरा में 'व्रज-साहित्य-मंडल' की स्थापना हुई है जिसके तत्वावधान में 'व्रजभारती' प्रकाशित होती है। इस मंडल का कार्य सराहनीय है। इसने लोकसाहित्य संबंधी अनेक पुस्तकों का प्रकाशन कर व्रज साहित्य की बहुमूल्य सेवा की है।

इस देश में लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति के संग्रह तथा रक्षा के लिये अब तक जो प्रयत्न हुए हैं वे विशृङ्खलित और विकीर्ण हैं। आज तक ऐसी कोई केंद्रीय संस्था नहीं थी जो इस देश के विभिन्न राज्यों में शोध करने वाले लोकसाहित्य के विद्वानों के कार्यों में समन्वय (को-आर्डिनेशन) स्थापित कर सके तथा जिसके तत्वावधान में समस्त देश में एक वैज्ञानिक पद्धति का अवलंबन कर लोकसाहित्य के संग्रह का कार्य किया जा सके। इस अभाव की पूर्ति के लिये प्रयाग में सन् १९५८ ई० में 'भारतीय लोकसंस्कृति शोधसंस्थान' की स्थापना की गई। इस संस्थान के संस्थापक पं० ब्रजमोहन व्यास, श्री श्रीकृष्णदास तथा डा० कृष्णदेव उपाध्याय हैं। संस्थापकों की इस त्रयी ने सन् १९५८ के अक्टूबर मास में अखिल भारतीय लोक संस्कृति सम्मलन का प्रथम अधिवेशन प्रयाग में किया था जिसमें भारत के विभिन्न प्रांतों के अधिकारी विद्वान् तथा विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन सन् १९५९ के दिसंबर मास में बंबई में हुआ था जिसमें इंग्लैंड की 'फोकलोर सोसाइटी' तथा इंडोनेशिया के

प्रतिनिधि विद्यमान थे। इस शोधसंस्थान की ओर से 'लोक संस्कृति' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इस संस्थान के द्वारा दो पुस्तकें भी प्रकाशित होने वाली हैं—(१) लोकसाहित्य के विद्वानों का परिचय; (२) लोकसाहित्य तथा लोक संस्कृति संबंधी पुस्तकों का विवरण (बिब्लियोग्राफी)। लोककला को प्रोत्साहन देने के लिये प्रयाग में एक 'लोक कला संग्रहालय' भी खोला गया है जिसके साथ ही एक वृहत् पुस्तकालय भी है। इसमें देश और विदेश की लोकसाहित्य संबंधी पुस्तकें विद्वानों तथा शोधछात्रों के उपयोग के लिये रखी हुई हैं। यह संस्थान भारत की विभिन्न भाषाओं के लोकगीतों का संग्रह प्रकाशित करेगा तथा विभिन्न क्षेत्रों के कार्य करने वाले विद्वानों में सामंजस्य स्थापित करेगा। इस शोध संस्थान की स्थापना से लोकसाहित्य के अध्ययन में एक नई गति और प्रगति आ गई है।

हिन्दी की विभिन्न बोलियों में संग्रह तथा शोधकार्य

हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों राजस्थानी, व्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी आदि—में लोक साहित्य संबंधी शोधकार्य बड़ी लगन के साथ हो रहा है। सभी प्रादेशिक क्षेत्र अपनी मौखिक साहित्य संपत्ति को सँजोकर रखने में तत्पर दिखाई देते हैं। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है, इस दिशा में जितना अधिक तथा ठोस कार्य राजस्थानी में हुआ है उतना हिन्दी की किसी दूसरी बोली में नहीं। राजस्थानी विद्वान् अपने राज्य में बहुमूल्य लोकसाहित्य का संग्रह तथा प्रकाशन बड़े ही सुव्यस्थित ढंग से कर रहे हैं। राजस्थान भारती, परंपरा, मरु भारती, लोककला, वरदा आदि पत्रिकाएँ इस क्षेत्र में प्रंशसनीय कार्य कर रही हैं। राजस्थानी के पश्चात संभवतः दूसरा स्थान भोजपुरी को दिया जा सकता है। अधिकारी विद्वानों ने भोजपुरी के भाषापक्ष तथा लोकसाहित्य पक्ष—इन दोनों का वैज्ञानिक पद्धति से गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। भोजपुरी लोकगीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। व्रज में भी लोक साहित्य के क्षेत्र में अच्छा कार्य हुआ है जिसका अधिकांश श्रेय व्रज साहित्य मंडल (मथुरा) को प्राप्त है। हिन्दी के अन्य क्षेत्रों में भी शोधकार्य हो रहा है परंतु उनका अधिकांश अभी प्रकाश में नहीं आया है। प्रयाग, लखनऊ, काश्मीर तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयों ने लोक साहित्य को एम०ए० हिन्दी में स्थान प्रदान किया है। अतः इससे अनुसंधान कार्य में बड़ी प्रगति आ गई है तथा अनेक शोधछात्र इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

हिन्दी की बोलियों में अब तक लोक साहित्य के संग्रह और शोध का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

(१) राजस्थानी

हिंदी की विभिन्न बोलियों में लोक साहित्य के संकलन का जितना कार्य राजस्थानी में हुआ है उतना संभवतः अन्य किसी बोली में नहीं। राजस्थान सदा से वीरप्रसविनी भूमि रहा है। यहाँ के पराक्रमी पुरुषों के अद्भुत शौर्य और लोकोत्तर वीरता की अमर गाथा इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है। यहाँ की स्त्रियों ने धधकती हुई जौहर की प्रचंड ज्वाला को अपने कोमल कलेवर से आलिंगित कर आदर्श सतीत्व का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है। अतः राजस्थान के लोकगीतों तथा गाथाओं में इन वीरों तथा सतियों का गुणगान होना स्वाभाविक है। इस प्रदेश में जल का अभाव होने पर भी लोकगीतों की पयस्विनी की अजस्त्र धारा सतत गति से प्रवाहित होती रही है।

राजस्थानी लोकसाहित्य की परंपरा प्राचीन है। जैन मुनियों का संपर्क लोक जीवन से अधिक रहा है। अतः वे जहाँ भी गए वहां लोकभाषा तथा लोक रुचि का आदर करते हुए साहित्य की सृष्टि करते रहे। जनसाधारण उनकी किस रचना को किस राग या ताल में गावें, इसकी सूचना के रूप में उन्होंने अपनी रचनाओं के प्रारंभ में 'देशी' या 'ढाल एहनी' आदि शब्दों द्वारा उसके संगीत का निर्देश कर दिया है। जैन साहित्य के पंडित मोहनलाल दलीचंद देसाई ने 'जैन गुर्जर कवियो' के तीसरे भाग के परिशिष्ट में जैन ग्रंथों में प्रयुक्त २४०० देशियों या तर्जों की अनुक्रमिणका दी है। इनमें राजस्थानी लोकगीतों की अधिकता है। इन लोकगीतों की 'देशियों' के उद्धरण के रूप में जैन कवियों ने आज से ५०० वर्ष पूर्व लोकगीतों के महत्व को समझा था। १७ वीं शताब्दी में इस ओर अधिक ध्यान दिया गया और सैकड़ों लोकगीतों की देशियों में अनेक कवियों ने अपनी रचनाएं प्रस्तुत की। १९ वीं शताब्दी के जैन यतियों द्वारा लिखे गए अनेक लोक गीत भी उपलब्ध होते है।[1]

राजस्थानी लोक गीतों का संभवतः सबसे प्रथम संकलन श्री खेताराम माली का 'मारवाड़ी गीत संग्रह' है जो रामलाल नेमाणी द्वारा रामप्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित किया गया था। इस संग्रह में पाँच भाग हैं जिनमें १०३ लोकगीत संग्रहीत है। इस ग्रंथ की द्वितीयावृत्ति सन् १९१५ ई० में हुई थी। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध

---

१. **इस लेख की अधिकांश सामग्री श्री अगरचंद जी नाहटा के लेख 'राजस्थानी लोक गीतों का संग्रह एवं प्रकाशन कार्य' से ली गई है। अतः लेखक इसके लिये नाहटा जी का अत्यंत अनुगृहीत है।**

प्रकाशक श्री बैजनाथ केडिया ने हिंदी पुस्तक एजेन्सी से 'मारवाड़ी गीत' नामक एक संग्रह प्रकाशित किया था। कलकत्ते से ही विद्याधरी देवी द्वारा संकलित 'असली मारवाड़ी गीत संग्रह' नामक पुस्तक सन् १९३३ ई० में प्रकाश में आई। परंतु ये तीनों संग्रह सामान्य कोटि के थे। जोधपुर के श्री जगदीश सिंह गहलोत ने 'मारवाड़ के ग्रामगीत' नामक संकलन सन् १९१९ ई० में प्रकाशित किया। इस संग्रह में १०० गीतों का संपादन गीतों के परिचय, टिप्पणी, और कठिन शब्दों के अर्थ सहित किया गया है। इसी वर्ष जैसलमेर के मेहता रघुनाथ सिंह ने 'जैसलमेरीय संगीतरत्नाकर' नाम से लोकगीतों का सुंदर संग्रह नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित किया। इस संग्रह के गीत बड़े बड़े और अच्छे है। मेहता जी ने इनका संकलन बड़े मनोयोग के साथ किया है। इसी समय पं० रामनरेश त्रिपाठी ने हिंदी मंदिर (प्रयाग) से 'मारवाड़ के मनोहर गीत' नाम से ५१ पृष्ठों की एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की। त्रिपाठी जी के पश्चात् श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने भी राजस्थान के लोकगीतों का संग्रह किया है परंतु इनका कोई ग्रंथ इस विषय पर देखने में नहीं आया। सन् १९३३ ई० में श्री सरदार मल जी थानवी ने 'बुड़ला' नामक एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें 'बुड़ला' नामक त्योहार का वर्णन देते हुए, उससे संबन्धित नौ गीत भी संकलित है। श्री पुरुषोत्तम दास पुरोहित का 'पुष्करणों का सामाजिक गीत' इस दिशा में सुन्दर प्रयास है।[1]

राजस्थानी लोकगीतों का सर्वश्रेष्ठ संकलन बीकानेर की विद्वत्त्रयी श्री-सूर्यकरण पारीक, श्री नरोत्तम दास स्वामी तथा श्री रामसिंह—द्वारा 'राजस्थान के लोकगीत' के नाम से दो भागों में प्रकाश में आया।[2] इस ग्रंथ में विद्वान् संपादकों ने राजस्थान के चुने हुए सुंदर गीतों को एकत्रित कर प्रेमी पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। इस संग्रह में २३० लोकगीत हैं। संपादकों ने प्रत्येक गीत क संदर्भ तथा उसका हिंदी अनुवाद भी दिया है। अंत में कठिन शब्दों का अर्थ भी दिया है। इस प्रकार यह ग्रंथ विशेष महत्वपूर्ण है। इसी संपादकत्रयी ने राजस्थान में प्रचलित तथा अत्यंत लोकप्रिय लोकगाथा 'ढोला मारू रा दूहा' का संपादन बड़े परिश्रम, लगन, तथा विद्वत्ता के साथ किया है।[3] इस ग्रंथ की भूमिका में लोकसाहित्य संबंधी बहुमूल्य विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। मूल गाथा के

---

१. मरुधर प्रकाशन मन्दिर, जोधपुर से प्रकाशित।

२. राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९३८ ई०।

३. नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित।

हिंदी अनुवाद के साथ पाद टिप्पणियों में विभिन्न पाठ तथा पुस्तक के अंत में कठिन शब्दों का अर्थ दिया गया है। सन् १९४२ ई० में श्री सूर्यकरण पारीक का 'राजस्थानी लोकगीत' पाठकों के सामने आया जिसमें विद्वान संपादक ने राजस्थानी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय बड़ी सुंदर रीति से प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह पुस्तिका केवल ९५ पृष्ठों की है फिर भी अनेक उपयोगी बातें इसमें पाई हैं जाती। स्वर्गीय पारीक जी की स्मृति में 'राजस्थान के ग्रामगीत' के प्रथम भाग का प्रकाशन सन् १९४० ई० में हुआ।[1] इसमें स्वयं पारीक जी तथा उनके शिष्य श्री गणपति स्वामी द्वारा संकलित ६७ गीत हैं। ताराचंद ओझा का मारवाड़ी स्त्री-गीत-संग्रह', निहालचंद वर्मा का 'मारवाड़ी गीत' तथा मदन लाल वैश्य की 'मारवाड़ी गीतमाला' इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयत्न हैं। जैसलमेर के श्री नागरमल गोपा ने 'राजस्थानी संगीत' में ६३ गीतों का संकलन किया है।

दिल्ली से मारवाड़ी गीतों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनमें पहला संग्रह ओम्प्रकाश गुप्त द्वारा संकलित 'मारवाड़ी गीत संग्रह' के नाम से छपा है[2] तथा दूसरा प्रह्लाद शर्मा गौड़ द्वारा संकलित 'मारवाड़ी गीत और भजनसंग्रह' है।[3] राजस्थानी लोकगीतों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। पुरुषोत्तम मेनारिया ने 'राजस्थानी लोकगीत' नामक ६४ पृष्ठों की छोटी सी पुस्तिका में संस्कार, त्योहार और देवी-देवताओं संबंधी गीतों को एकत्रित किया है।[4] 'राजस्थानी भीलों के लोकगीत' भी अपने ढंग का प्रथम प्रयास है जिसमें भीलों के मधुर गीत संकलित किए गए हैं।[5] रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत का 'राजस्थानी लोकगीत' नामक संग्रह राजस्थानी संस्कृति परिषद्, जयपुर से प्रकाशित हुआ है जिसमें अर्थसहित ९० गीत दिए गए हैं। संपादिका की भूमिका महत्त्वपूर्ण एवं गंभीर है।

लोकगीतों के अतिरिक्त राजस्थान में लोकगाथाएँ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं जिनका संग्रह अन्वेषी शोधकों ने किया है। राजस्थानी भाषा की प्राचीन लोकगाथा 'ढोला मारू रा दूहा' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसके

---

१. 'सूर्यकरण पारीक राजस्थानी 'ग्रन्थमाला', संख्या १, प्रकाशक—गयाप्रसाद ऐन्ड सन्स, आगरा, सन् १९४०।
२. गर्ग ऐण्ड कं०, खारी बावली, दिल्ली।
३. अग्रवाल बुक डिपो, खारी बावली, दिल्ली।
४. दि स्टूडेंट बुक कंपनी, जयपुर।
५. साहित्य संस्थान, उदयपुर।

बाद दूसरी प्रसिद्ध लोकगाथा पदमा तेली रचित 'रुक्मिणीमंगल' है। इस काव्य की सबसे प्राचीन प्रति संवत् १६६६ विक्रमी की उपलब्ध होती है। लोकगाथा होने के कारण इसमें समय-समय पर परिवर्तनऔर परिवर्धन होता रहा है। इसी के समान प्रसिद्ध दूसरी लोक गाथा 'नरसी जी रो माहरो' है। कालक्रम से इसमें भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। इसके रचयिता का नाम रतना खाती है। राजस्थानी जनता के लोकप्रिय जनकाव्य 'कृष्ण रुक्मणी रो व्यावलो' का लेखक पदमा भगत तेली माना जाता है। उपर्युक्त दोनों लोककाव्यों के रचयिता नीची जाति में उत्पन्न हुए थे। श्रीगणपति स्वामी ने 'जीणामाता रो गीत' नामक एक महत्वपूर्ण लोकगाथा का कुछ अंश 'राजस्थान-भारती' में प्रकाशित किया था। ठाकुर सौभाग्यसिंह शेखावत के संपादकत्व में 'जीणामाता' नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।[1] इसी प्रकार 'डुंग जी जवार जी रो गीत', 'तेजा जी रो गीत', 'माताँ गूजरी को पवाड़ो' तथा 'बाबू जी रा पावड़ा' आदि अनेक लोकगाथाएँ श्रीगणपति स्वामी के संपादकत्व में प्रकाशित हो चुकी है।

शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर, राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊ, मरुभारती पिलानी, राजस्थानी की शोध सम्बन्धी प्रमुख संस्थाएँ हैं।

(२) ब्रज

ब्रज-साहित्य-मंडल, मथुरा—ब्रज मंडल के अनेक उत्साही विद्वानों ने ब्रज की लोकसंस्कृति तथा साहित्य के प्रकाशन के लिये 'ब्रज-साहित्य-मंडल' नामक संस्था की स्थापना मथुरा में की है। इस मंडल की ओर से ब्रज-संस्कृति-संबंधी अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है। यह संस्था 'ब्रजभारती' नामक शोधपत्रिका भी प्रकाशित करती है जिसमें ब्रज का अनंत लोकसाहित्य धीरे-धीरे प्रकाश में आ रहा है। इस मंडल का वार्षिक अधिवेशन ब्रजमंडल के विभिन्न स्थानों में हुआ करता है। इस संस्था के हाथरसवाले अधिवेशन में स्वयं राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र-प्रसाद जी ने पधारने की कृपा की थी। इस प्रकार मंडल ने ब्रज के लोकसाहित्य की रक्षा तथा उसके प्रकाशन के क्षेत्र में बहुमूल्य सेवा की है।

(३) अवधी

अवधी प्रदेश में भी लोकगीत प्रचुरता से पाए जाते हैं परन्तु जहाँ तक

---

१. राजस्थानी संस्कृति संस्थान, जयपुर।

इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है, इन गीतों का कोई प्रमाणिक संकलन प्रकाश में नहीं आया है। प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० बाबूराम सक्सेना ने अपने ग्रंथ 'अवधी भाषा का विकास' (इवोल्यूशन आव् अवधी) की रचना के समय कुछ लोकगीतों का संकलन अवश्य किया था परन्तु वे अभी तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं। श्री सत्यव्रत अवस्थी ने 'विहाग रागिनी' नामक एक छोटी सी पुस्तक में अवधी के कुछ लोकगीतों का संकलन प्रस्तुत किया है। लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने 'अवधी और उसका साहित्य' में अवधी के वर्तमान कवियों का परिचय देते हुए उनकी कविताएँ उद्धृत की हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने श्री सत्यनारायण मिश्र की सहायता से प्रतापगढ तथा गोंडा जिलों से अवधी के २००० लोकगीतों का संग्रह बड़े परिश्रम से किया है जो शीघ्र ही 'अवधी लोकगीत' के नाम से प्रकाशित होने वाला है। पं० रामनरेश त्रिपाठी की कविता कौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत) में भी अवधी के कुछ गीतों का संकलन उपलब्ध होता है।

परंतु अवधी लोकगीतों का सबसे प्रमाणिक तथा सुंदर संग्रह प्रोफेसर इंदुप्रकाश पांडेय (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एलफिन्स्टन कालेज, बंबई) का अवधी लोकगीत और परंपरा' है जिसमें विद्वान लेखक ने अवधी के संस्कार गीतों का ही प्रधानतया संकलन किया है। पुस्तक के प्रारंभ में ८५ पृष्ठों की विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी है जिसमें संस्कारों तथा सामाजिक संस्थाओं की व्याख्या की गई है। पांडेय जी ने बड़े श्रम से इन गीतों का संपादन किया है। प्रत्येक गीत का प्रारंभ में संदर्भ तथा अंत में उसका अर्थ दिया गया है। लेखक ने इन गीतों की स्वरलिपि को सुरक्षित रखने के लिये इनकी टेपरिकार्डिंग भी की है। अपने संग्रह के द्वितीय भाग में पांडेय जी अवधी के अन्य लोक गीत भी प्रकाशित करने वाले हैं।

सीतापुर की हिन्दी सभा लोकगीतों के संग्रह की दिशा में प्रशंसनीय कार्य कर रही है। इधर सन् १९५६ ई० से श्री उपेन्द्रनाथ राय और श्री गौरीशंकर पांडेय के संपादकत्व में 'अवध भारती' का प्रकाशन फैजाबाद से हो रहा है। इस द्विमासिक पत्रिका द्वारा अवधी लोकसाहित्य की बहुमूल्य सामग्री प्रकाश में लाई जा रही है। आशा है शोधी विद्वान् अवधी के लोकगीतों तथा लोककथाओं का प्रामाणिक संग्रह प्रस्तुत कर इस अभाव को दूर करने की चेष्टा करेंगे।

(४) बुंदेलखंडी

बुंदेलखंड में लोकसाहित्य के संग्रह का कार्य बड़े उत्साह के साथ हो रहा

१. रामनारायण लाल ऐंड संस, प्रयाग, १९५८

है। सन् १९४४ ई० में ओरछा के तत्कालीन महाराज के संरक्षण में 'लोकवार्ता परिषद्' की स्थापना टीकमगढ़ में हुई थी जिसने बुंदेलखंड के लोकगीतों, गाथाओं, कहावतों तथा मुहावरों के संकलन का कार्य वैज्ञानिक पद्धति से प्रारंभ किया था। इस परिषद् के तत्वावधान में 'लोकवार्ता' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी जिसके संपादक थे लोकसाहित्य के विद्वान श्रीकृष्णानंद जी गुप्त। यद्यपि इस पत्रिका के संभवतः कुछ ही अंक प्रकाशित हुए, फिर भी इसमें लोकसाहित्य संबंधी बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। इस परिषद् ने अपने अल्पकालीन जीवन में ही प्रशंसनीय कार्य किया था। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ओरछा राज्य के भारतीय संघ में विलयन के साथ ही इस परिषद का भी विलयन हो गया। इसी समय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' पत्र द्वारा बुंदेलखंडी लोकसाहित्य को प्रकाश में लाने का प्रशंसनीय प्रयास किया था। परंतु यह पत्र भी अधिक दिनों तक नहीं चल सका। पिछले दो वर्षों से झाँसी जिले के मऊरानीपुर में 'ईसुरी' 'परिषद्' की स्थापना हुई है जिसके मंत्री हैं श्री नर्मदाप्रसाद जी गुप्त। इस परिषद् का उद्देश्य भी 'लोकवार्ता परिषद' की ही भाँति बुंदेलखंडी लोकसाहित्य का संकलन तथा प्रकाशन है। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार तथा नाटककार डा० वृन्दावनलाल वर्मा तथा श्रीकृष्णानंद जी गुप्त के संरक्षण में यह परिषद् कुछ ठोस सेवा कर सकेगी, ऐसी दृढ़ आशा है।

बुंदेलखंड में ईसुरी नामक लोक कवि की 'फागें' बहुत प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्णानंद जी गुप्त ने इन फागों का संकलन 'ईसुरी की फागें' शीर्षक छोटी सी पुस्तिका में प्रस्तुत किया है।[1] श्री गुप्त जी की इच्छा कई भागों में इन फागों को प्रकाशित करने की थी परंतु संभवतः उनकी यह योजना पूर्ण नहीं हो सकी। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी ने बुंदेलखंडी लोककथाओं का संग्रह बड़े परिश्रम तथा लगन के साथ किया है। इस क्षेत्र में चतुर्वेदी का कार्य प्रशंसनीय है। श्री हरप्रसाद शर्मा ने 'बुंदेलखंडी लोकगीत' प्रकाशित किया है।

परंतु इस क्षेत्र में प्रो० श्रीचंद्र जैन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप आजकल गवर्नमेंन्ट कालेज, खरगोन (मध्य प्रदेश) में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। इन्होंने बुंदेलखंडी तथा बघेलखंडी लोकसाहित्य की प्रचुर सेवा की है। रीवाँ के आसपास की जंगली जातियों के लोकगीतों का भी इन्होंने संकलन किया है जो 'आदिवासियों के लोकगीत' के नाम से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। 'विंध्य

---

१. लोकवार्ता परिषद्, टीकमगढ़ से प्रकाशित।

के लोक कवि' में इन्होंने सुप्रसिद्ध लोक कवि ईसुरी, गंगाधर आदि का प्रामाणिक वर्णन किया है।[1] 'धरती मोरी मैया' में इनके लोकसाहित्य संबंधी अनेक लेखों का संग्रह हैं।[2] 'आगे गेहूँ पीछे धान' नामक पुस्तिका में बुंदेलखंडी तथा बघेलखंडी कृषि संबंधी कहावतों एवं विश्वासों का संकलन किया गया है। 'भुइयाँ परे हैं लाल' में बघेलखंडी सोहरो का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

इसके अतिरिक्त इन्होंने 'विंध्य भूमि की लोककथाएँ; 'विंध्यभूमि की अमर कथाएं; 'विंध्य के आदिवासियों की कथाएं; 'बघेलखंडी लोककथाएँ, आदि पुस्तकें लिखी हैं जिनमें बुंदेलखंड तथा बघेलखंड की लोककथाओं का संकलन किया गया है। 'विंध्य के लोकगीत' में 'करना' नामक स्थानीय जंगली जाति के गीतों का संग्रह है। 'काव्य में पादप पुष्प' श्रीचंद जैन की उत्कृष्टरचना है।[3] जिसके एक अध्याय में लोकगीतों में पादप पुष्पों का वर्णन किया गया है। श्री लखनप्रताप 'डरगेस' ने बघेली लोकगीतों का संकलन कर इस प्रदेश के लोकगीतों को काल के गाल में जाने से बचाया है।[4]

पं० गौरीशंकर द्विवेदी ने 'प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ' में बुंदेलखंडी लोकगीतों का संग्रह तथा उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत की है।[5] श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने इसी ग्रंथ में बुंदेलखण्ड के सात लोकगीतों की चर्चा अपनी भावात्मक शैली में की है।[6] सागर तथा जबलपुर विश्वविद्यालय में अनेक छात्र बुंदेलखण्डी लोकसाहित्य पर शोधकार्य कर रहे हैं। डा० शंकरदयाल चौकृपि एम० ए० पी०-एच० डी० अपनी डी० लिट्० की उपाधि के लिये सागर विश्वविद्यालय में बुंदेलखण्डी लोकोक्तियों तथा पहेलियों पर शोधकार्य कर रहे है। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी की अन्तिम रचना 'बुंदेलखण्डी लोकगीत' है जिसमें उन्होंने इस प्रदेश में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों का विद्वत्तापूर्ण संग्रह किया है।[7]

(५) मालवी

डा० श्याम परमार ने 'मालवी लोकगीत' का सम्पादन कर एक बहुत

---

१. अग्रवाल प्रकाशन, इलाहाबाद।
२. युनिवर्सिटी बुक डिपो, आगरा।
३. मध्यप्रदेशीय प्रकाशन समिति, भूपाल।
४. काटिया, विंध्य प्रदेश, सन् १९५४ ई०।
५. प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ६०७-६१४
६. वही, पृ० ६१५-६२०।
७. मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित, सन् १९५९।

बड़े अभाव की पूर्ति की है। 'मालवी और उसका साहित्य'[1] नामक दूसरे ग्रंथ में इन्होंने मालवा के लोकगीत, लोकनाट्य आदि विषयों का संक्षिप्त विवेचन सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है। 'मालवा की लोककथाएं'[2] बच्चों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं। इधर लोकनाट्यों के सम्बन्ध में इनकी 'लोकधर्मी नाट्य परम्परा' पुस्तक प्रकाशित हुई है।[3] इस प्रकार डा० श्याम परमार ने मालवा के लोकगीत, लोकनाट्य, तथा लोककथा आदि विभिन्न क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य किया है। माधव कालेज, उज्जैन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० चिंतामणि उपाध्याय ने अपने शोध निबन्ध 'मालवी लोकसाहित्य का अध्ययन' में इस प्रदेश के लोकसाहित्य के विभिन्न अवयवों का सांगोपांग प्रामाणिक विवेचन किया है। श्री रतन लाल मेहता ने मालवी कहावतों का संकलन प्रकाशित किया है।[4] श्री वसन्ती लाल 'वस' (उज्जैन) भी मालवी लोकसाहित्य के उद्धार के लिये अथक परिश्रम कर रहे है।

पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण जी व्यास की अध्यक्षता में 'मालव लोकसाहित्य परिषद' की स्थापना उज्जैन में की गई है। यह परिषद मालवी लोकसंस्कृति की रक्षा तथा प्रकाशन में सतत गति से कार्य कर रही है।

(६) छत्तीसगढ़ी

सागर विश्वविद्यालय के मानवविज्ञान शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा० श्यामाचरण दूबे ने 'छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय' नामक ग्रन्थ लिखकर इस प्रदेश के लोकगीतों को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इन्होंने इस सम्बन्ध में अंग्रेजी में भी एक पुस्तक लिखी है जो 'फील्ड साइंस आव् छत्तीसगढ़ी' के नाम से लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी है।[5] यहाँ के सरस तथा मधुर गीतों ने सुप्रसिद्ध मानव विज्ञान शास्त्री डा० वेरियर एलविन का भी ध्यान आकृष्ट किया जिन्होंने अंग्रेजी में 'फोक सांग्स आव् छत्तीसगढ़' नामक ग्रन्थ की रचना की है।[6] डा० एलविन का यह ग्रन्थ बड़ा प्रामाणिक है। इसमें छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का अंग्रेजी

---

१. 'सरस्वती सहकार' की ओर से राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
२. आत्माराम ऐंड सन्स, नई दिल्ली, सन् १९५४ ई०
३. हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी।
४. राजस्थान शोधसंस्थान, उदयपुर।
५. युनिवर्सल बुक डिपो, लखनऊ।
६. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, सन् १९४६।

भाषा में पद्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत किया गया है परंतु मूल गीतों के अभाव में आनंद की पूर्ण अनुभूति नहीं होने पाती। सागर तथा जबलपुर विश्वविद्यालयों में अनेक शोधछात्र छत्तीसगढ़ी लोकगीतों तथा लोकोक्तियों पर अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। इस प्रदेश की लोककथाओं का संकलन डा० एलविन ने 'फोकटेल्स आव् महाकोशल' में किया है।[1] कटनी के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा पुरातत्त्ववेत्ता स्व० रायबहादुर डा० हीरालाल ने इस प्रदेश की जंगली जातियों के लोकगीतों के कुछ रेकार्ड तैयार कराए थे जिनका प्रदर्शन उन्होंने नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा आयोजित कोशोत्सव के अवसर पर किया था। श्री चंद्रकुमार ने छत्तीसगढ़ की लोककथाओं का संकलन बच्चों के लिये किया है जो आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

(७) निमाड़ी

निमाड़ी लोकसाहित्य के एकांतसेवी पं० रामनारायण उपाध्याय ने इस प्रदेश के लोकगीतों का संकलन कर अमूल्य सेवा की है। इस क्षेत्र में आप अद्वितीय है। आप का 'निमाड़ी लोकगीत' इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास है।[2] इसमें निमाड़ में प्रचलित विविध प्रकार के गीतों का संकलन किया गया है। इनकी दूसरी पुस्तक 'जब निमाड़ गाता है' का प्रकाशन अभी हाल में ही हुआ है।[3] इस ग्रंथ में प्रधानतया संस्कार तथा व्रत संबंधी गीतों का संग्रह है। लोरी तथा बच्चों के कुछ गीत भी दिए गए हैं। डा० कृष्णलाल 'हंस' ने 'निमाड़ी भाषा और उसका साहित्य' नामक शोध निबंध पर पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इस शोधपूर्ण ग्रंथ में निमाड़ी साहित्य के विभिन्न अंगों का गंभीर विवेचन किया गया है। इस पुस्तक के प्रकाशित हो जाने पर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जायगी। डा० 'हंस' ने बच्चों के लिये निमाड़ी लोककथाओं को दो भागों में खड़ी बोली में प्रकाशित किया है[4]। इस प्रदेश में अभी बहुत काम करना बाकी है। इधर पं० रामनारायण उपाध्याय के अथक परिश्रम से सन् १९५३ ई० में 'निमाड़ लोक साहित्य परिषद्, सनावद, की स्थापना हुई है जिसका उद्देश्य 'निमाड़ी लोक साहित्य का संकलन

---

१. वही, सन् १९४४ ई०।
२. मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन, जबलपुर, १९४९।
३. उषा प्रकाशन गृह, ४६ यशवंतगंज इंदौर, १९५८ ई०।
४. आत्माराम ऐंड सन्स, नई दिल्ली।

तथा प्रकाशन है। इस परिषद् की ओर से 'निमाड़ी कविताएँ' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमें निमाड़ी के आधुनिक ११ कवियों की कविताएँ संकलित हैं।[1]

(८) कौरवी

आजकल खड़ी बोली जिस प्रदेश में मातृ भाषा के रूप में व्यवहृत होती है उसका प्राचीन नाम कुरु प्रदेश था। अतः कुछ विद्वानों ने इस प्रदेश में प्रचलित भाषा का नामकरण 'कौरवी' किया है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने कुरु प्रदेश के लोकगीतों का संग्रह 'आदि हिंदी के गीत और कहानियाँ' नाम से प्रकाशित किया है।[2] राहुल जी ने इन गीतों को एक बुढ़िया से सुनकर लिपिबद्ध किया था। यह पुस्तक अपने ढंग का प्रथम प्रयास है जिसके लिये लोक साहित्य के प्रेमी राहुल जी के अत्यंत आभारी हैं। सुश्री सत्या गुप्ता, एम० ए० ने प्रयाग विश्वविद्यालय में अनुसंधान कार्य करने के लिए अपने शोध का विषय 'कौरवी लोकसाहित्य का अध्ययन' चुना। उन्होंने अपने इस शोध प्रबंध में अत्यन्त गंभीरतापूर्वक कौरवी लोकगीतों की विस्तृत मीमांसा की है। सुश्री सत्या गुप्ता ने अपने शोधकार्य के संबंध में सहारनपुर, मेरठ आदि जिलों में घूम-घूमकर हजारों गीतों का संकलन किया है। इनका शोधप्रबंध 'खड़ी बोली का लोक साहित्य' हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से १९६५ ई० में प्रकाशित हुआ।

श्रीमती सीता देवी तथा दमयंती देवी ने खड़ी बोली के गीतों का संकलन 'धूलधूसरित मणियाँ' में किया है।[3] कुरु प्रदेश के लोकगीतों का यह सब से प्रामाणिक तथा सुंदर संकलन है। इन विदुषी स्त्रियों ने गाँवों में जाकर, स्त्रियों के मुख से सुनकर, इन गीतों को लिपिबद्ध किया है। इस पुस्तक में अधिकतर संस्कार संबंधी गीत उपलब्ध होते हैं। इसमें कुछ गीत हरियाना प्रांत से भी संग्रहीत हैं।

कुछ वर्ष हुए लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के एक शोधछात्र ने अपने एम० ए० के शोध निबंध के रूप में 'कुरु प्रदेश के लोकगीत' शीर्षक निबंध प्रस्तुत किया था जिसमें स्थानीय गीतों का सुंदर विवेचन किया गया था। परंतु अभी तक यह निबंध प्रकाशित रूप में जनता के सामने नहीं आया।

---

१. निमाड़ लोक-साहित्य-परिषद्-प्रकाशन, सनावद (म० प्र०)।
२. पटना, १९५२ ई०
३. दिल्ली।

(६) भोजपुरी

राजस्थानी को छोड़कर लोकसाहित्य संबंधी जितना अधिक शोधकार्य भोजपुरी में हुआ है उतना संभवतः हिन्दी की अन्य किसी बोली में नहीं। भोजपुरी के विद्वानों ने भोजपुरी के लोकसाहित्य का केवल संकलन ही नहीं किया है प्रत्युत भोजपुरी भाषा और इसके लोकसाहित्य का वैज्ञानिक तथा प्रमाणिक विवेचन भी प्रस्तुत किया है।

(क) भोजपुरी लोकगीत भाग १—इस ग्रंथ का संपादन डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने किया है।[1] भोजपुरी लोकगीतों का यह सर्व प्रथम वैज्ञानिक संग्रह है। इस पुस्तक में संग्रहीत गीतों का संकलन लेखक ने भोजपुरी प्रदेश के गाँव में घूम-घूमकर किया है। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के संस्कृत विभाग के प्रोफेसर पं० बलदेव उपाध्याय ने १०० पृष्ठों की विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी है। इस पुस्तक में कुल २७१ गीतों का संग्रह किया गया है। ये गीत संस्कार और ऋतुओं के क्रम से रखे गये हैं तथा इनका वर्गीकरण निम्नांकित पन्द्रह श्रेणियों में हुआ है :—

सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास, गवना, जाँत, छठी-माता, शीतला माता, झूमर, बारहमासा, कजली, चैता, विरहा और भजन। इस पुस्तक का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से सम्पन्न हुआ है। प्रत्येक गीत का सन्दर्भ देते हुए पादटिप्पणी में कठिन शब्दों का अर्थ भी दिया गया है। पुस्तक के अन्त में चौबीस पृष्ठों का शब्दकोष भी है जो भाषाशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए बड़ा उपयोगी है।

(ख) भोजपुरी लोकगीत, भाग २—इस ग्रंथ के भी संपादक डा० कृष्णदेव उपाध्याय हैं।[2] इसकी भूमिका डा० अमरनाथ झा ने लिखकर इसे गौरवान्वित किया है। इसमें भोजपुरी के निम्नलिखित पचीस प्रकार के लोकगीतों का संग्रह है जिनकी समस्त संख्या ४३० है।

सोहर, जोग, सेहला, विवाह, बहरा, पिड़िया, गोधन, नागपंचमी, जँतसार, झूमर, कजली, बारहमासा, होली, डफ, चैता सोहनी, रोपनी, विरहा, कहरऊँ, गोंड-गीत, पचरा, निर्गुन, देशभक्ति, पूर्वी, पाराती और भजन। इस पुस्तक

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २०००)। इसका दूसरा संस्करण 'भोजपुरी लोक-गीत' के नाम से वहीं से सं० २०११ में प्रकाशित हुआ है।

२. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २००५ वि०) से प्रकाशित। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण भी सम्मेलन से ही सन् १९६७ ई० में प्रकाशित हुआ है।

के भी सम्पादन का क्रम वही है, जो प्रथम भाग का है। पुस्तक के अन्त में लगभग सौ पृष्ठों में टिप्पणियाँ दी गई है जिनमें गीतों में आये हुए ऐतिहासिक, भौगोलिक, धर्म या समाज सम्बन्धी शब्दों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन टिप्पणियों की विशेषता के सम्बन्ध में डा० अमरनाथ झा ने लिखा है कि "उपाध्याय जी ने लगभग एक सौ पृष्ठों की टिप्पणियाँ लिखकर पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है। इससे प्रान्तान्तर के निवासियों को गीतों के समझने में बड़ी सहायता मिलेगी'।[1]

(ग) भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस—इसके सम्पादक दुर्गाशङ्कर प्रसाद सिंह है[2] जिन्होंने बड़े परिश्रम से गीतों का संग्रह किया है। उन्होंने पुस्तक की भूमिका में भोजपुरी की उत्पत्ति, प्राचीनता, विस्तार आदि विषयों पर प्रकाश डाला है।

(घ) भोजपुरी के कवि और काव्य—यह दुर्गाशंकर प्रसाद जी की दूसरी पुस्तक है जिसमें इनकी मौलिक गवेषणा का परिचय प्राप्त होता है।[3] इस पुस्तक में उत्तर प्रदेश तथा बिहार के ऐसे अनेक भोजपुरी कवियों का परिचय दिया गया है जिनकी रचनाओं का अभी तक किसी को पता भी नहीं था। सरभंग संप्रदाय के कवियों का विस्तृत विवेचन यहाँ प्रथम बार हुआ है। इससे लेखक की अनुसंधान की प्रवृत्ति और अध्यवसाय का पता चलता है।

(ङ) भोजपुरी ग्राम्य गीत—इस पुस्तक का संपादन श्री डब्लू० जी० आर्चर आई० सी० एस० तथा संकटाप्रसाद ने किया है।[4] छोटा नागपुर (बिहार) की विभिन्न जातियों के लोकगीतों का संकलन कर श्री आर्चर ने प्रचुर ख्याति प्राप्त की है। उनका यह संग्रह बिहार के शाहाबाद जिले के कायस्थ परिवार से सन् १९३९–४१ ई० के बीच किया गया था। इस पुस्तक में संस्कार संबंधी, विशेषत: विवाह-गीतों का ही संग्रह किया गया है। गीतों का खड़ी बोली में अर्थ न देने के कारण भोजपुरी से अपरिचित लोगों के लिये इसका रसास्वादन करना कठिन है। पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा देवेन्द्र सत्यार्थी की विभिन्न पुस्तकों में भोजपुरी के अनेक लोकगीत उद्धृत पाये जाते हैं।

(च) भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन—इधर भोजपुरी लोक साहित्य के संबंध में गवेषणात्मक निबंध (थीसिस) भी लिखे गये हैं जिनमें डा०

१. भूमिका पृ० ६
२. हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित (सं० २००१ वि०)
३. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित।
४. बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना, १९४३।

कृष्णदेव उपाध्याय का 'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन' विशेष महत्त्वपूर्ण है।[1] इस पुस्तक में भोजपुरी लोक साहित्य के विभिन्न अवयवों लोक-गीत, लोकगाथा, लोककथा आदि—की सांगोपांग तथा गंभीर आलोचना प्रस्तुत की गई है। डा० उपाध्याय ने इस ग्रंथ में लोक साहित्य को सुव्यवस्थित तथा दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। भोजपुरी लोकसाहित्य की महत्ता प्रतिपादित करने वाला यह प्रथम मौलिक ग्रंथ है। भोजपुरी के साहित्य का इतना व्यापक, सुव्यवस्थित तथा गंभीर विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

(छ) भोजपुरी और उसका साहित्य—इस छोटी सी पुस्तिका के लेखक डा० कृष्णदेव उपाध्याय हैं।[2] इसमें डा० उपाध्याय ने भोजपुरी भाषा और साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें भोजपुरी लोकनाट्य, लोकसंगीत तथा लोककला का वर्णन समास शैली में किया गया है।

(ज) लोक साहित्य की भूमिका—इस मौलिक ग्रंथ में डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य के सामान्य सिद्धांतों का गंभीर विवेचन किया है।[3] लोक साहित्य का वर्गीकरण, लोकगाथाओं की उत्पत्ति तथा उनकी विशेषताएँ, लोक कथाओं का मूलस्रोत तथा प्रसार, लोक साहित्य का महत्त्व आदि विषयों का प्रतिपादन यहाँ पहली बार हुआ है। बीच-बीच में लोकगीतों के उदाहरण के रूप भोजपुरी के अनेक गीत उद्धृत किये गये हैं। लोक साहित्य के स्वरूप तथा सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाला हिंदी में यह अद्वितीय ग्रंथ है।

(झ) भोजपुरी लोक संस्कृति का अध्ययन—इस ग्रंथ की रचना डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने बड़े लगन तथा परिश्रम से की है।[4] इस विशालकाय ग्रंथ में डा० उपाध्याय ने भोजपुरी जनजीवन से संबंध रखने वाले समस्त विषयों का विवेचन किया है, जैसे भोजपुरी जनता के आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, अंध-विश्वास, टोना-टोटका, भूत-प्रेत, तावीज-गंडा, डाइन-भूतिन, देवी-देवता, धर्म-कर्म आदि विषयों की सांगोपांग मीमांसा प्रस्तुत की गई है। इसे भोजपुरी जनजीवन का कोश समझना चाहिये।

---

१. हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, काशी, १९६० में प्रकाशित।
२. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
३. साहित्य भवन प्रा० लिमिटेड, प्रयाग, १९५७ ई०।
४. यह ग्रंथ अभी प्रेस में है।

(अ) भोजपुरी लोक संगीत—इस विषय पर भी डा० उपाध्याय ने एक पुस्तक लिखी है जिसमें भोजपुरी लोक संगीत की विशेषताओं पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही लगभग पचास भोजपुरी गीतों की स्वर लिपि भी प्रस्तुत की गई है जिससे मूल धुनों की रक्षा हो सके।

(ट) भोजपुरी लोकगाथा—यह ग्रंथ[1] डा० सत्यव्रत सिनहा का शोधनिबंध है जिसमें विद्वान लेखक ने लोकगाथाओं के विभिन्न तत्त्वों का प्रतिपादन बड़ी सुन्दर रीति से किया है। इन्होंने अनेक भोजपुरीगाथाओं को लिपिबद्ध कर उनका वर्गीकरण करते हुए उनकी विशेषताओं को स्पष्ट किया है।

(ठ) भोजपुरी भाषा और साहित्य—भाषाशास्त्र के प्रकांड विद्वान् डा० उदयनारायण तिवारी ने इस विशाल ग्रंथ में भोजपुरी भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया है।[2] भोजपुरी भाषा का इतना गंभीर अध्ययन अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। यह डा० तिवारी के लगातार बीस वर्षों के अनवरत परिश्रम तथा अथक अध्ययन का फल है। यह पुस्तक आप के अंग्रेजी भाषा में लिखे गए शोधनिबंध 'ओरिजिन एंड डेवलपमेंट आव् भोजपुरी' का हिंदी रूपांतर है।

भोजपुरी लोक-कथाओं का अभी कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। वर्तमान लेखक ने कई सौ कहानियों का संकलन गाँव के बूढ़ों और बूढ़ियों से सुन कर किया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। बिहार के चम्पारन जिले के निवासी पं० गणेश चौबे—जो कई वर्षों से भोजपुरी लोक-साहित्य का संकलन एकान्त साधना के साथ कर रहे हैं—ने भी लोक-कथाओं का संग्रह किया है। चौबे जी विशद टीका-टिप्पणी तथा गम्भीर-गवेषणा के साथ इन कहानियों को प्रकाशित करना चाहते हैं। आरा (बिहार) की 'भोजपुरी' नामक मासिक पत्रिका में इधर अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, परन्तु उनका कोई पुस्तकाकार संग्रह अभी देखने में नहीं आया है।

(ड) हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास-भाग १६ (हिन्दी का लोक-साहित्य)।[3]

इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के साथ किया है। इस ग्रन्थ में डा० उपाध्याय ने 'भोजपुरी लोक-साहित्य' शीर्षक निबन्ध लिखा है जिसमें भोजपुरी साहित्य को अनेक विधाओं भी सम्यक् मीमांसा की गई है। उदाहरण के रूप में इस ग्रन्थ में भोजपुरी के कुछ लोकगीत और कथाएँ भी संकलित की गई हैं।

१. हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।
२. बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना।
३. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सं० २०१७ वि०)

(ढ) भोजपुरी गीत और गीतकार—।[1] यह पुस्तिका श्री 'राहगीर' श्री के संपादकत्व में प्रकाशित हुई है जिसमें भोजपुरी के उदीयमान तरुण लोक कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन कवियों की संक्षिप्त आलोचना की है।

भोजपुरी कहावतों, मुहावरों और पहेलियों का संग्रह प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० उदयनारायण तिवारी ने किया है।[2] तिवारी जी ने कहावतों आदि का अर्थ समझाते हुए उदाहरण भी दिया है जिससे इनका भाव स्पष्ट हो जाय। श्री चन्द्रभानु सिंह ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है जो अभी तक अप्रकाशित है। खालसा कालेज, बम्बई में हिन्दी के प्राध्यापक डा० श्रीधर मिश्र ने 'भोजपुरी पहेलियां' शीर्षक ग्रन्थ का सम्पादन किया है जिसमें भोजपुरी की २५० पहेलियाँ संग्रहीत हैं। इन्होंने अपनी भूमिका में पहेलियों के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश भी डाला है।

डा० विश्वनाथप्रसाद ने भोजपुरी के ध्वनि तत्वों का अध्ययन कर अपना पाण्डित्यपूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किया है।

डा० सत्यदेव ओझा, हिन्दी प्राध्यापक, कोआपरेटिव कालेज, जमशेदपुर को 'भोजपुरी कहावतों' पर रांची विश्वविद्यालय से पी०-एच०-डी० की उपाधि प्राप्त हुई है। इन्होंने भोजपुरी प्रदेश में प्राप्त कहावतों का संग्रहकर उनका सांस्कृतिक विवेचन प्रस्तुत किया है जो विद्वत्तापूर्ण है।

डा० श्रीधर मिश्र ने 'भोजपुरी लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन' प्रस्तुत किया है जिन पर उन्हें बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर से पी० एच० डी० उपाधि प्राप्त हो चुकी है। उपर्युक्त दोनों ही प्रबन्ध ग्रन्थ अभी तक (संभवतः) अप्रकाशित हैं।

भोजपुरी की शोध संबंधी संस्थाएँ

(१) भोजपुरी संसद, वाराणसी

भोजपुरी भाषा और साहित्य की उन्नति के लिए आजकल बिहार तथा उत्तर

१. बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित।

२. हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग से प्रकाशित
'हिन्दुस्तानी' पत्रिका—में देखिए—
भोजपुरी लोकोक्तियाँ—अप्रैल, जुलाई सन् १९३९
भोजपुरी मुहावरे—अप्रैल, अक्टूबर, ४०, जनवरी, ४१
भोजपुरी पहेलियाँ—अक्टबर १९४२

प्रदेश में अनेक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं में भोजपुरी संसद, वाराणसी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इस संस्था ने पाँच वर्षों के लघु जीवन में ही बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। इसके तत्वावधान में अखिल भारतीय भोजपुरी लोक संस्कृति सम्मेलन का आयोजन भी होता है जिसके तीन शानदार अधिवेशन अभी तक हो चुके हैं। यह संस्था 'भोजपुरी कहानियाँ' नामक एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती हैं जो भोजपुरी गद्य के निर्माण में बड़ी सहायता प्रदान कर रही है। इस संस्था ने अपने अल्पकालीन में ही अनेक भोजपुरी ग्रन्थों का प्रकाशन किया है जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं।

(१) भोजपुरी-गीत-संग्रह (२) तेगअली और काशिका (३) बिसराम के बिरहे (४) रहनिदार बेटी। इस संसद के सभापति डा० स्वामीनाथ सिंह हैं जो बड़े ही कर्मठ और उत्साही व्यक्ति है। इन्होंने भोजपुरी की उन्नति के लिए स्तुत्य कार्य किया है।

(२) भोजपुरी परिवार, पटना (बिहार)

इस संस्था के द्वारा 'अंजोर' नामक एक त्रैमासिक शोध पत्रिका प्रकाशित होती है। इसके सम्पादक श्री नर्मदेश्वर सहाय पाण्डेय बड़े ही उत्साही व्यक्ति हैं जो अपने समय और धन को खर्च कर इस पत्रिका को सुचारु रूप से अनेक वर्षों से चला रहे हैं। यह पत्रिका सन् १९६० ई० से नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है।

(३) भोजपुरी परिषद्, आरा (बिहार)

इस परिषद् के द्वारा 'विहान' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित होती है जिसमें कविता, कहानी, पहेली और लोकोक्तियाँ भी छपती हैं। इसके सम्पादक जी बड़े ही जीवट के व्यक्ति हैं।

कुछ दिन पहिले आरा से ही 'गाँव और घर' नामक एक पाक्षिक पत्र भोजपुरी में प्रकाशित होता था। यह पत्र ग्रामीण जनता के लिए बड़ा उपयोगी था। परन्तु दुःख है कि कुछ दिनों के पश्चात् इसका प्रकाशन बन्द हो गया।

आगरा के बाल-हिन्दी पुस्तकालय से प्रकाशित होने वाली 'भोजपुरी' शीर्षक मासिक पत्रिका श्री रघुवंश नारायण सिंह के सम्पादकत्व में अनेक वर्षों तक प्रकाश में आती रही। इसने इन वर्षों तक भोजपुरी की बड़ी ठोस सेवा की। भोजपुरी के अनेक अज्ञात तरुण कवियों को प्रकाश में लाने का श्रेय इसी पत्रिका को प्राप्त है।

ऐसी सुन्दर पत्रिका को प्रकाशित करने के लिए हम रघुवंश नारायण जी के अत्यन्त आभारी हैं ।[१]

(४) भोजपुरी साहित्य सम्मेलन, बक्सर, (आरा) बिहार ।

आरा जिले के बक्सर नामक स्थान में कहीं खाकी बाबा नामक सन्त के आशीर्वाद से उन्हीं के संरक्षण में "भोजपुरी साहित्य-सम्मेलन" की स्थापना हुई है जिसका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता है । लगभग १५ वर्षों से यह संस्था भोजपुरी साहित्य के प्रचार तथा उन्नति के लिए सतत प्रयास कर रही है ।

बक्सर से ही 'भोजपुरी-भूमि' पत्रिका भी प्रकाशित होती है जो इस साहित्य की सेवा तथा उन्नति में लगी हुई है ।

(५) माटी की बोली, छपरा (बिहार)

छपरा के कुछ उत्साही युवकों ने 'माटी की बोली' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया है । आशा है यह भोजपुरी जन-संस्कृति के प्रचार में सहायक सिद्ध होगी ।

———

१. आजकल इस पत्रिका का प्रकाशन बन्द है।

अध्याय ५

लोकसाहित्य का वर्गीकरण

लोक-साहित्य को जन-जीवन का दर्पण कहा जाय तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्‌गार है। सर्व-साधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों और ऋतुओं में गीत गा-गा कर अपना मनोरंजन करती है। कहानियों को सुनना उनके मनबहलाव का अनन्य साधन है। समय समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों और भाव-भरे मुहावरों का प्रयोग कर ग्रामीण जन अपने हृदयगत विचारों का प्रकाशन करते हैं। कुछ सूक्तियों में—जिनका निर्माण जनता के अनुभव पर आश्रित है—ऐसी अनुभूतियां पायी जाती हैं, जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं हो सकती। इस प्रकार हम लोक-साहित्य को प्रधानतया पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) लोक-गीत (Folk-lyrics)
(२) लोक-गाथा (Folk-ballads)
(३) लोक-कथा (Folk-tales)
(४) लोक-नाट्य (Folk-drama)
(५) लोक-सुभाषित (Folk-sayings)

लोक-सुभाषित के अन्तर्गत मुहावरे, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, सुभाषित, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेल के गीत, अर्थहीन गीत इत्यादि आते हैं, जिनका व्यवहार गाँव के लोग अपने प्रतिदिन के व्यवहार में किया करते हैं।

(क) लोक-गीतों के वर्गीकरण की पद्धति

लोक-साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जन-जीवन में अपनी प्रचुरता तथा व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है। लोक-

साहित्य के जिन विभिन्न भेदों का उल्लेख पहिले किया गया है, उनमें पचास प्रतिशत से भी अधिक लोकगीतों की संख्या समझनी चाहिये। ये गीत विभिन्न उत्सवों तथा ऋतुओं में गाये जाते हैं। इनका विभाजन प्रधानतया निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

१. संस्कारों की दृष्टि से।
२. रसानुभूति की प्रणाली से।
३. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से।
४. विभिन्न जातियों के प्रकार से।
५. श्रम-गीत की दृष्टि से।

१. संस्कारों की दृष्टि से

भारतीय जीवन मे धर्म का प्रमुख स्थान है। यदि यह कहा जाय कि भारतीय लोगों का धर्म ही प्राण है तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति न होगी। हमारे जीवन मे धर्म का स्थान कितनी महत्ता रखता है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। जन्म के पहिले से लेकर मृत्यु के बाद तक इस देश के लोगों का जीवन संस्कारो से सम्बद्ध है। हमारे धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारो का विधान किया है, जिनमें गर्भाधान, पुंसवन, पुत्र जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु प्रधान है। इनमे भी प्रथम दो संस्कारों की प्रथा अब नही है। शेष छः संस्कार ही आजकल प्रधान रूप से किये जाते हे। इन विभिन्न संस्कारो के अवसर पर स्त्रियाँ अपने कोमल कण्ठ से गीत गा-गाकर जन-मन का अनुरंजन किया करती है। मृत्यु के अवसर के गीत बड़े ही कारुणिक तथा हृदय-विदारक होते है। किसी प्रिय व्यक्ति, पति या पुत्र के मरने पर उसकी स्त्री या माता उस मृतात्मा के गुणों, का वर्णन करती हुई रोती और विलाप करती है। परन्तु ऐसे गीतो की संख्या अधिक नही है।

२. रसानुभूति की प्रणाली से

लोकगीतों में अनेक रसों की अभिव्यक्ति बड़ी ही सुन्दर रीति से हुई है। इन गीतों में विभिन्न रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है उसका स्रोत कदापि नही सूख सकता। यों तो इन गीतों में सभी रसों की उपलब्धि होती है परन्तु निम्नांकित पाँच रसों की ही प्रधानता पायी जाती है।

१. शृङ्गार रस
२. करुण रस

३. वीर रस
४. हास्य रस
५. शान्त रस

शृङ्गार रस के अन्तर्गत विशेष कर सोहर, जनेऊ, विवाह और वैवाहिक परिहास के गीत आते हैं। सोहर के गीतों में गर्भिणी स्त्री की शरीर-यष्टि का बड़ा सुन्दर वर्णन पाया जाता है। गर्भिणी होने पर स्त्रियों का शरीर पीला पड़ जाता है, पयोधर स्थूलता को प्राप्त करते हैं, अंगों में कृशता आ जाती है। इन विषयों का वर्णन लोकगीतों में हुआ है। यदि इस समय पति परदेस गया होता है तो उसके वियोग में वह स्त्री अत्यन्त दुःखी दिखायी पड़ती है। उसका एक-एक क्षण एक युग के समान बीतता है। पति-वियोग के साथ मिल कर उसकी प्रसव-पीड़ा सौ गुनी हो जाती है। इन गीतों में संयोग तथा विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृङ्गार का वर्णन पाया जाता है।

करुण रस के गीतों में गवना, जँतसार निर्गुन, पूरबी, रोपनी तथा सोहनी के गीतों की गणना की जा सकती है। इन गीतों से करुण रस छलका पड़ता है। यद्यपि उपर्युक्त सभी गीत करुण रस से ओतप्रोत हैं, परन्तु गवना के गीतों में करुण रस बरसाती नदी की भाँति उमड़ता हुआ दिखायी पड़ता है। लड़की की बिदाई के समय जो गीत गाये जाते हैं वे बड़े ही हृदयद्रावी होते हैं। गवना के ये गीत क्या है करुण रस के सागर है जो पाठकों को रस मग्न कर देते हैं।

इसी प्रकार जँतसार, निर्गुन, पूरबी और सोहनी के गीतों को भी समझना चाहिये जिनका विस्तृत वर्णन यथास्थान किया जायेगा।

इन गेय-गीतों के अतिरिक्त कुछ प्रबन्धात्मक गीत भी पाये जाते हैं, जिनकी रचना किसी विशेष घटना को लेकर पद्यबद्ध रीति से की गई है। इन गीतों को 'लोक-गाथा' का नाम दिया गया है। आल्हा, विजयमल, लोरकी सोरठी, नयकवा बनजारा, गोपीचन्द, भरथरी और ढोल-मारू के गीत इस श्रेणी के अन्तर्गत आते है। पंजाब में राजा रसालू का गीत प्रसिद्ध है। आल्हा वीर रस का महाकाव्य है जिसके प्रत्येक पद में वीरता कूट-कूट कर भरी हुई है। सोरठी में रहस्य और रोमाञ्च की कथा का वर्णन बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। विजयमल में कुँवर विजयी नामक किसी वीर की कथा वीररस में वर्णित है। राजा रसालू के विषय मे भी यही बात समझनी चाहिये।

लोक गीतों में हास्य रस की मात्रा अपेक्षा कृत कम पायी जाती है। वैवाहिक परिहास के गीतों में हास्य रस की मधुर व्यञ्जना हुई है। झूमर के गीतों—जिनका नामकरण इन्हें झूम-झूम कर गाने से हुआ है—में भी हास्य का पुट उपलब्ध होता है। इनमें कहीं तो अपने प्रियतम पर कोई फबती कसी जाती है तो कहीं देवर से हँसी-मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है।

भजन, निर्गुन, तुलसी माता और गंगा मइया के गीतों में शान्त रस पाया जाता है। सन्ध्या समय तथा रात्रि के पिछले प्रहर में स्त्रियाँ भजन गाती हैं जिन्हें क्रमशः 'संझा' और 'पराती' कहते हैं। इन गीतों में भगवान् की स्तुति होती है। प्रातःकाल गंगा स्नान के लिए झुण्ड में जाती हुई स्त्रियाँ गंगा जी के गीत गाती हैं, जिनमें संसार के झंझटों से मन को हटा कर भगवान् में उसे लगाने का वर्णन रहता है। इन गीतों को सुन कर मन में भक्ति का उद्रेक होता है।

(३) ऋतुओं और व्रतों के क्रम से

लोकगीतों की मीमांसा करने पर यह पता चलता है कि इनमें से अधिकांश गीत किसी न किसी ऋतु या त्यौहार से सम्बंध रखते हैं। वर्षा, वसन्त आदि ऋतुओं के आने पर जन-जीवन में जो नवीन उल्लास उत्पन्न होता है, उसकी अभिव्यक्ति लोक-गीतों में पाई जाती है। यदि वर्षा (आषाढ़) के दिनों में किसान आल्हा गा-गा कर अपना मनोरंजन करता है तो सावन में कजली गा कर अपने दिल के दर्द को दूर करता है। यदि फागुन के महीने में होली या फगुआ के गीतों के द्वारा वह अपने हृदयगत उल्लास को प्रकट करता है तो चैत में 'चैता' या 'धांटों' गाकर वह आत्मविभोर हो जाता है।

विभिन्न व्रतों के अवसर पर विभिन्न गीत गाये जाते है। श्रावण शुक्ला पंचमी—नाग पंचमी—के अवसर पर नाग (सर्प) देवता सम्बंधी गीत गाये जाते है। भाद्रमास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को 'बहुरा' का व्रत और कार्तिक शुक्ल द्वितीया को 'गोधन' की पूजा की जाती है। इन अवसरों पर स्त्रियाँ गीत गाकर अपने-अपने इष्टदेवता से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति की प्रार्थना करती है। शायद ही ऐसा कोई त्यौहार हो जिस समय कोई गीत न गाया जाता हो।

(४) विभिन्न जातियों के प्रकार से

कुछ ऐसे भी गीत है जिन्हें कुछ विशिष्ट जातियाँ ही गाती हैं। उदाहरण के लिए विरहा को लिया जा सकता है। यह गीत अहीर जाति के लोगों का राष्ट्रीय

या जातीय गीत है। अहीर लोग जिस भावभंगी तथा सुन्दरता के साथ इसे गाते हैं, उस प्रकार से दूसरा नहीं गा सकता है। जो अहीर विरहा गाने में जितना ही प्रवीण होता है, वह उतना ही योग्य समझा जाता है। इस जाति के लोगों में विवाह के अवसर पर वर की योग्यता उसके विरहा गाने पर ही आश्रित होती है।

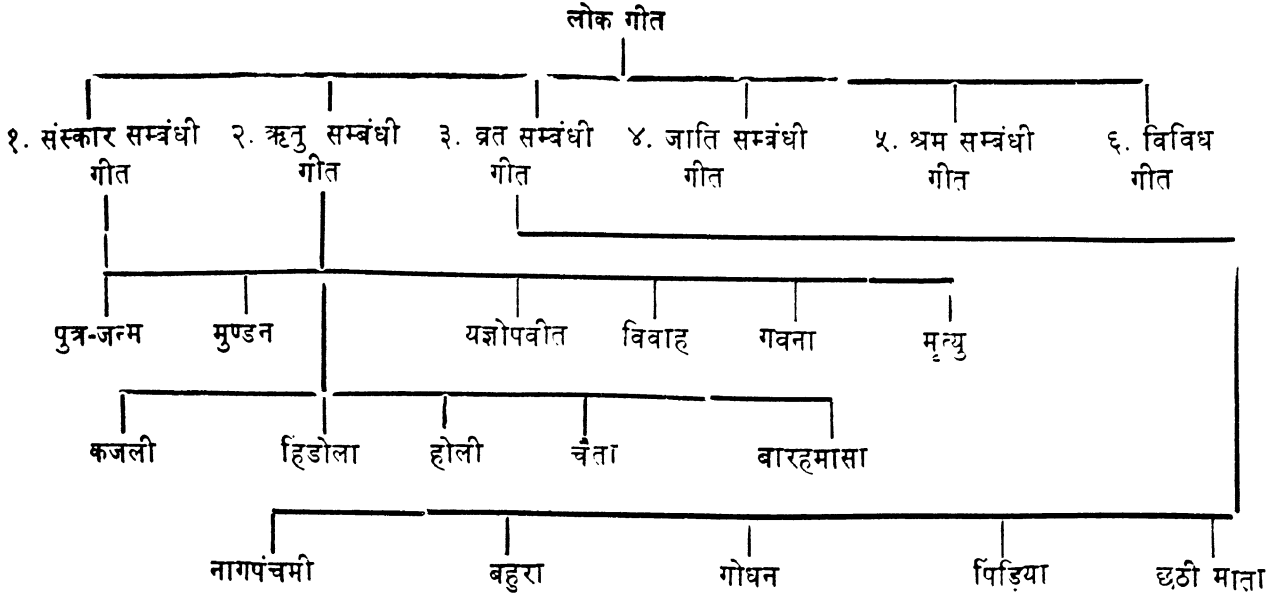
'पचरा' नामक गीत को दुसाध जाति के लोग प्रायः गाया करते हैं। जब कोई इस जाति का व्यक्ति बीमार पड़ जाता है, तब इस जाति का कोई बूढ़ा बुलाया जाता है। वह आकर रोगी के पास बैठकर पचरा गा-गा कर देवी का आवाहन करता है। इस प्रकार कई दिनों तक इस प्रक्रिया के करने से रोगी का रोग दूर हो जाता है, ऐसा उनका विश्वास है।

वर्षा ऋतु में एक विशेष जाति के लोग (नट) ढोल को गले में बाँध कर 'आल्हा' गाते फिरते हैं। इस प्रकार भिक्षा का आयोजन करना उसका व्यवसाय हो गया है। गेरुआ वस्त्र को धारण करने वाले कुछ साधु—जोगी' के नाम से प्रसिद्ध हैं—सारंगी के ऊपर गोपीचन्द और भरथरी के गीत गाते फिरते हैं। यह कार्य उनकी उदर-पूर्ति का प्रधान साधन बन गया है। मालती लोग शीतला माता के गीत-गाते हैं।

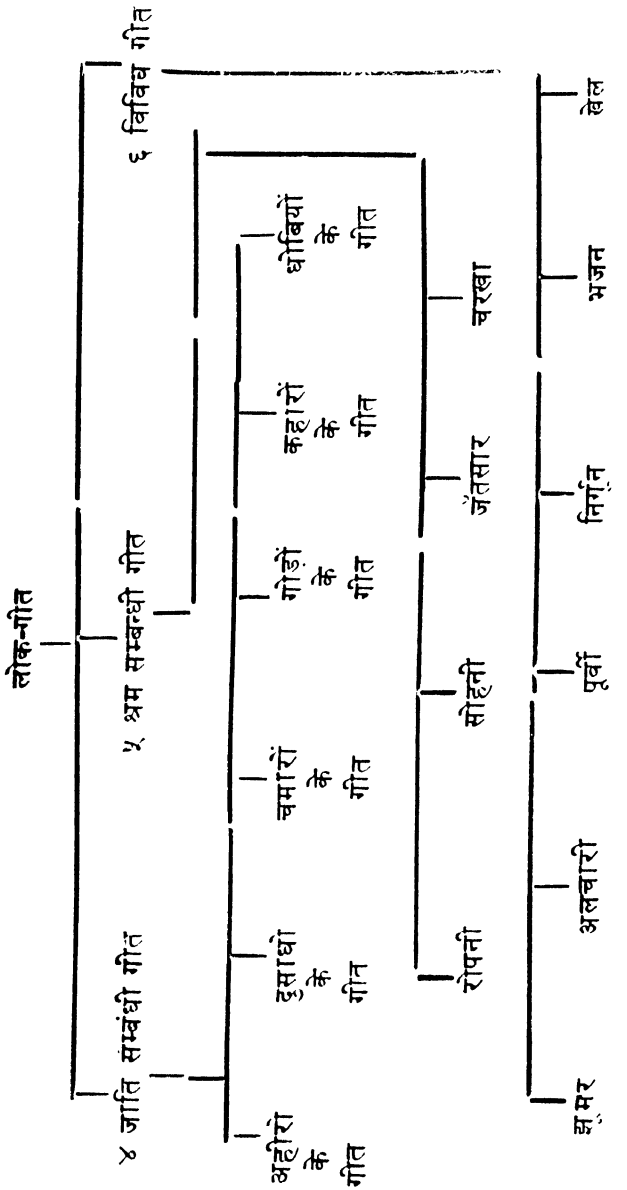
(५) श्रम के आधार पर

कुछ ऐसे भी गीत पाये जाते हैं जो किसी विशेष कार्य को करते समय गाये जाते हैं। उदाहरण के लिए, धान को रोपते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उन्हें 'रोपनी के गीत' कहते हैं। इसी प्रकार खेत को निराते या सोहते समय जो गीत गाये जाते हैं वे 'निरवाही' या सोहनी' के नाम से प्रसिद्ध है। 'जँतसार' उन गीतों को कहा जाता है जिन्हें जाँत पीसते समय स्त्रियाँ गाती है। तेली तेल को 'पेरते' समय अपने हृदय के भावों का मन्थन करता हुआ जिन पदों को सस्वर रूप से गाता है उन्हें 'कोल्हू के गीत' की संज्ञा दी गई है। चूँकि ये गीत एक विशेष कार्य श्रम को करते समय गाये जाते हैं अतः इन्हें श्रम गीतों की श्रेणी में रखा गया है। इस गीतों को गाने से काम करने से उत्पन्न थकावट दूर होती जाती है और साथ ही उस काम के करने में मन भी लगा रहता है।

उपर्युक्त लोक-गीतों के वर्गीकरण को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—


लोक गीत
१. संस्कार सम्बंधी गीत
२. ऋतु सम्बंधी गीत
३. व्रत सम्बंधी गीत
४. जाति सम्बंधी गीत
५. श्रम सम्बंधी गीत
६. विविध गीत
पुत्र-जन्म
मुण्डन
यज्ञोपवीत
विवाह
गवना
मृत्यु
कजली
हिंडोला
होली
चैता
बारहमासा
नागपंचमी
बहुरा
गोधन
पिड़िया
छठी माता

(शेष अगले पृष्ठ पर)


लोक-गीत
४ जाति संबंधी गीत
अहीरों के गीत
दुसाधों के गीत
चमारों के गीत
गोंड़ों के गीत
कहारों के गीत
धोबियों के गीत
५ श्रम सम्बन्धी गीत
रोपनी
सोहनी
जँतसार
चरखा
६ विविध गीत
झूमर
अलचारी
पूर्वी
निर्गुन
भजन
खेल

त्रिपाठी जी का विभाजन ✓

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने ग्रामगीतों का वर्गीकरण निम्नलिखित ग्यारह श्रेणियों में किया है[1] :—

१—संस्कार सम्बन्धी गीत
२—चक्की और चरखे के गीत
३—धर्म गीत
४—ऋतु-संबंधी गीत
५—७ खेती, भिखमंगी तथा मेले के गीत
८—जाति गीत
९—वीर गाथा
१०—गीत-कथा
११—अनुभव के वचन

इस उपर्युक्त वर्गीकरण पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि त्रिपाठी जी का यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है। चक्की और चरखे के गीतों का अन्तर्भाव वर्तमान लेखक द्वारा प्रतिपादित श्रम सम्बन्धी गीतों में हो जाता है। धर्मगीत व्रत गीतों का ही दूसरा नाम है। खेती, भिखमंगे और मेले के गीतों की कोई अलग श्रेणी नहीं है। वे विविध गीतों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। वीर-गाथा और गीत-कथा को लोकगाथा के भीतर माना जा सकता है। अनुभव के वचनों को हम सूक्ति या अनुभूतिपूर्ण उक्ति मात्र कह सकते हैं लोकगीत नहीं। इस प्रकार त्रिपाठी जी के ग्यारह भेदों का अन्तर्भाव हमारे ६ भेदों के अन्दर ही हो जाता है।

पारीक का वर्गीकरण

राजस्थानी लोकगीतों के विद्वान् पारखी पं० सूर्यकरण पारीक ने अपनी पुस्तक में 'राजस्थानी गीतों का क्षेत्र-विस्तार दिखलाते समय इन्हें निम्नांकित उनतीस भागों में विभक्त किया है।[2]

(१) देवी देवताओं और पितरों के गीत।
(२) ऋतुओं के गीत
(३) तीर्थों के गीत

---

१. कविता कौमुदी, भाग ५, पृ० ४५
२. पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० २२-२५

(४) व्रत-उपवास और त्यौहारों के गीत
(५) संस्कारों के गीत
(६) विवाह के गीत
(७) भाई-बहन के प्रेम के गीत
(८) साली-सालेल्यां (सरहज) रा गीत
(९) पति-पत्नी के प्रेम के गीत
(१०) पणिहारियों के गीत
(११) प्रेम के गीत
(१२) चक्की पीसते समय के गीत
(१३) बालिकाओं के गीत
(१४) चरखे के गीत
(१५) प्रभाती गीत
(१६) हरजस—राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत
(१७) धमालें-होली के अवसर पुरुषों द्वारा गाये गीत
(१८) देश-प्रेम के गीत
(१९) राजकीय गीत
(२०) राज दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत
(२१) जम्मे के गीत—वीरों, सिद्ध पुरुषो, महात्माओं की स्मृति में रखे गये जागरण को 'जम्मा' कहते है।
(२२) सिद्ध पुरुषों के गीत
(२३) क—वीरों के गीत
(२३) ख—ऐतिहासिक गीत
(२४) क—गवालों के गीत
(२४) ख—हास्य रस के गीत
(२५) पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत
(२६) शान्त रस के गीत
(२७) गाँवों के गीत (ग्राम-गीत)
(२८) नाट्य गीत
(२९) विविध

इस श्रेणी विभाजन के सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसमे कोई क्रम नहीं दिखलायी पड़ता। पारीक जी ने हास्य, शृङ्गार और वीर रस के

गीतों को तीन श्रेणियों में पृथक्-पृथक् रखा है, जिनको एक ही वर्ग में रखा जा सकता है। इसी प्रकार भाई-बहन और पति-पत्नी के गीतों का अन्तर्भाव संस्कार या ऋतु सम्बन्धी गीतों में किया जा सकता है।

इधर डा० श्याम परमार ने 'भारतीय लोकसाहित्य' में श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव के मत का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा प्रतिपादित लोकगीतों के भेदों का उल्लेख किया है। श्री भालेराव ने गीतों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है।[1]

(१) संस्कार विषयक गीत।
(२) माहवारी गीत।
(३) सामाजिक-ऐतिहासिक गीत।
(४) विविध।

माहवारी गीतों में श्री भालेराव ने ऋतु और व्रत सम्बन्धी गीतों को एक ही साथ रखा है। सामाजिक-ऐतिहासिक गीतों का सम्बन्ध लोकगाथाओं से है। कहने की आवश्यकता नहीं यह विभाजन भी हमारे पूर्वोक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत ही है।

जिस प्रकार काव्य का विभाजन गीति-काव्य और प्रबन्ध काव्य के रूप में किया जाता है, उसी प्रकार लोकगीतों का विभाजन भी उनके वर्ण्य विषय के आधार पर गेय गीत (Lyrics) और प्रबन्ध गीत (Ballads) इन दो भागों में किया जा सकता है। गेय गीत वे छोटे-छोटे गीत हैं जिनमें कथावस्तु का प्रायः अभाव होता है। उनकी गेयता ही इन गीतों की आत्मा है। इस श्रेणी के गीतों में संस्कार, ऋतु और व्रत सम्बन्धी गीत आते हैं। प्रबन्ध गीत वे गीत हैं जिनमें कथा-वस्तु की ही प्रधानता रहती है। उनमें भी गेयता होती है, परन्तु उसका स्थान गौण है। कथानक को आगे बढ़ाने में जितनी गेयता आवश्यक है, उतनी ही उनमें पायी जाती है। यही इनका स्वरूपगत भेद समझना चाहिए।

(२) लोकगाथा

पिछले अध्याय में लोक-साहित्य का विभाजन करते हुए उसका वर्गीकरण लोकगीत और लोकगाथा के रूप में किया गया है। लोकगीत वे गीत हैं जिनमें कथानक प्रायः स्वल्प होता है। गेयता ही उनका प्रधान गुण है परन्तु लोकगाथाओं में कथावस्तु की ही प्रधानता होती है। गेयता उसमें गौण स्थान रखती है। आकार

---

१. श्याम परमार : भारतीय लोक-साहित्य, पृ० ६४-६५

की दृष्टि से भी दोनों में भेद पाया जाता है। लोकगीत छोटे-छोटे होते हैं। परन्तु लोकगाथा अपने कथानक के कारण बहुत बड़ी होती है। पहले को हम गीति-काव्य और दूसरे को प्रबन्ध काव्य कह सकते हैं। कजली, होली, चैता, सोहर, जँतसार, भजन और पराती आदि गीति काव्य की कोटि में रखे जा सकते हैं और आल्हा, विजयमल,लोरकी, हीर-राँझा, ढोला-मारू, राजा रसालू के गीतों को प्रबन्ध काव्य कहा जा सकता है। अंग्रेजी में लोकगीत को 'फोक-लिरिक' और प्रबन्ध काव्य को 'फोक-बैलेड' कहा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीत और लोकगाथा में विषयगत और स्वरूपगत दोनों प्रकार की विभिन्नता पायी जाती है। लोकगीतों में साधारणतया शृङ्गार और करुण रस की प्रधानता पायी जाती है, परन्तु लोकगाथाओं का प्रधान रस प्रायः वीर हुआ करता है। 'ढोला मारू रा दूहा' इस नियम का अपवाद समझना चाहिए।

अँग्रेजी विद्वानों द्वारा बैलेड की जो परिभाषा बतलायी गई है, उसकी पर्यालोचना करने से यह स्पष्ट प्रतीत होती है कि बैलेड में कथानक और गेयता दोनों विद्यमान रहती हैं। लोकगाथाओं के भी ये ही दोनों आवश्यक तत्त्व हैं इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अतः लोकगाथा वह कथा है जो गीतों में कही गई हो।

बैलेड के लिए 'गाथा' शब्द की सार्थकता

श्री सूर्यकरण पारीक ने ग्रामगीत और लोकगीत में पार्थक्य दिखलाने का प्रयास किया है। उन्होंने बैलेड शब्द के लिए 'गीत-कथा' का प्रयोग किया है।[1] परन्तु प्रस्तुत लेखक की विनम्र सम्मति में बैलेड के लिए 'लोकगाथा' शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन है। संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली (लिरिक्स) के अर्थ में प्राचीन काल से होता चला आया है। हाल की 'गाथा सप्तशती'—जिसमें शृङ्गार रस से भरी सात सौ आर्याओं का संग्रह है—इसका उदाहरण है। पालि साहित्य में भी गाथा का अर्थ यही पाया जाता हैं। 'पालि जातकावलि' के सिंह चर्म जातक में आगे दिये हुए श्लोकों को गाथा के उदाहरण में उद्धृत किया गया है[2] :—

---

१. पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० ७८-८५

२. पालि जातकावलि

"नेतं सीहस्स नदितं न व्यग्घस्स न दीपिनो।
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो॥"
चिरं पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवं।
पारुतो सीहचम्मेन रवमानो च दूसयी॥

वैदिक साहित्य में 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया गया पाया जाता है जो किसी प्राचीन आख्यान या कथा को कहने वाला हो।[1] 'गाथा' शब्द से इन् प्रत्यय करने पर इस पद की निष्पत्ति होती है। अतः गाथा शब्द का अर्थ हुआ कोई आख्यान या कथा। हिन्दी की भोजपुरी बोली में गाथा का अभिप्राय किसी कथा या कहानी से समझा जाता है। जैसे 'का आन गाथा गवले बाड़' अर्थात् तुम क्या अपनी कहानी सुना रहे हो? अथवा 'ताहार गाथा ना ओराई' अर्थात् तुम्हारी कथा समाप्त नहीं होगी। इस प्रकार 'गाथा' शब्द में गेयता और कथानक दोनों का अंश विद्यमान है। इस शब्द से दोनों का भाव द्योतित होता है। इसलिए ऐसे प्रबन्धात्मक गीतों के लिए जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गेयता भी विद्यमान हो 'लोकगाथा' शब्द का प्रयोग नितांत उपयुक्त है।

इधर हिन्दी में बैलेड शब्द के लिए गीतकथा या कथागीत का प्रयोग कुछ लोग करने लगे हैं। प्रबन्धात्मक गीत का व्यवहार भी कहीं-कहीं देखने में आता है। परन्तु लेखक की सम्मति में 'लोकगाथा' शब्द से जिस भाव की अभिव्यक्ति होती है, वह इन उपर्युक्त शब्दों से नहीं होती। इसलिए इस पुस्तक में बैलेड के लिए सर्वत्र 'लोकगाथा' शब्द का ही व्यवहार किया गया है। यदि लोक साहित्य के विद्वान् इस शब्द को अपनावें तो लोकगीत और कथागीत के पार्थक्य की बहुत कुछ गड़बड़ी सदा के लिए दूर हो जायेगी।

लोकगाथा की परिभाषा

बैलेड अथवा लोकगाथा की परिभाषा अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है। प्रोफेसर केट्रीज का मत है कि बैलेड वह गीत है जो किसी कथा को कहता है अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलेड वह कथा है जो गीतों में कही गई हो।[2] हैजलिट् ने बैलेड की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'गीतात्मक

---

१. ऋग्वेद १।७।१

२. A ballad is a song that tells a story or to take the other point of view, a story told in song.
इंगलिश एंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स, भूमिका पृ० ११

कथानक' कहा है।[1] फ्रैंक सिज़विक ने अपनी पुस्तक में बैलेड की परिभाषा बतलाने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इसे एक अमूर्त पदार्थ कहा है।[2] न्यू इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान सम्पादक डा० मरे ने बैलेड की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजनापूर्ण कविता है जिसमें कोई जनप्रिय आख्यान रोचक ढङ्ग से वर्णित हो।[3]

लोकगीत और लोकगाथा में अन्तर

लोकगीत और लोकगाथा के अन्तर को प्रधानतया दो भागों में बाँटा जा सकता है :—(१) स्वरूपगत भेद (२) विषयगत भेद। स्वरूपगत भेद के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि लोकगीत आकार में छोटा होता है परन्तु लोकगाथा का आकार बहुत बड़ा होता है। उदाहरण के लिए बिरहा लोकगीत है जो केवल चार कड़ियों (पंक्तियों या चरणों) में ही समाप्त हो जाता है परन्तु लोकगाथा का विस्तार सैकड़ों पृष्ठों में होता है। आजकल जो 'आल्हखण्ड' उपलब्ध होता है वह बड़े आकार के लगभग पाँचसौ पृष्ठों का है। 'ढोला मारू रा दूहा' के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। सोरठी और विजयमल का कथानक भी बहुत लम्बा है। कुछ लोकगाथाओं का आकार छोटा भी होता है—जैसे 'क्षत्रियाणी भगवती' परन्तु इनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

दूसरा भेद विषयगत है। लोक-गीतों में विभिन्न संस्कारों—पुत्र-जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना; ऋतुओं—वर्षा, वसन्त और ग्रीष्म और पर्वों पर गाये जाने वाले गीत सम्मिलित है जिनमें घर-गृहस्थी, प्रेम-विरह, वन्ध्या, विधवा आदि के सुख-दुःखों के वर्णन की प्रधानता ही उपलब्ध होती है। कहीं कोई विधवा स्त्री अपने भाग्य को कोसती है तो कहीं किसी वन्ध्या स्त्री का करुण प्रलाप सुनाई पड़ता है। कहने का आशय यह है कि घर के संकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन

---

१. Lyrical Narrative

२. "The difficulty is to define the ballad, for it has some of the qualities of an abstract thing. It is essentially fluid, nor rigid nor static."

वि बैलेड, पृ० ८

३. A simple spirited poem in short stanzas in which some popular story is graphically told.

न्यू० इ० डि०

अनुभूतियों का साक्षात्कार मनुष्य करता है, उन्हीं की झाँकी हमें इन लोकगीतों में देखने को मिलती है। परन्तु लोकगाथाओं का विषय लोकगीतों से कुछ भिन्न है। इसमें सन्देह नहीं कि इन गाथाओं में भी प्रेम का गहरा पुट रहता है, लेकिन यह प्रेम जीवन के संघर्षों का सामना करता हुआ भी, अंत में सफलीभूत होता हुआ दिखलाया गया है। इन गाथाओं में वीरता, साहस, रहस्य एवं रोमाञ्च का अंश अधिक पाया जाता है। उदाहरण के लिए आल्हखण्ड में माड़ो गढ़ की लड़ाई का वर्णन उपलब्ध होता है तो 'सोरठी' की गाथा में रहस्य और रोमाञ्च की प्राप्ति होती है। कहीं-कहीं इन गाथाओं में अनेक वीर पुरुष लोकत्राता या जनरक्षक के रूप मे अंकित किये गये है। अनेक गीतों में मुगलों के अत्याचार से स्त्रियों को बचाने के लिए त्यागी वीरों ने अपने प्राणों की आहुति तक दे दी है। इस प्रकार लोकगीतों और लोकगाथाओं का पार्थक्य स्पष्ट है।

३. लोककथा ✔

लोकसाहित्य के वर्गीकरण में लोककथाओं का प्रमुख स्थान है। ये अपनी सरसता और लोकप्रियता के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखती है। माताएँ सुन्दर कहानियाँ सुना कर अपने बच्चों को आनन्द प्रदान करती हैं। बालक इन कहानियों को सुनते-सुनते निद्रा देवी की गोद में चले जाते हैं। बालिकाएँ अपने भाई की सुख और समृद्धि के लिए पिड़िया का व्रत करती हैं और कार्तिक में भ्रातृ-द्वितीया से लेकर अगहन की शुक्लपक्ष की दूज तक—पूरे एक महीने तक—नियमित रूप से पिड़िया की कथा रात्रि में सुनती हैं। प्रातःकाल में इस कथा को सुने बिना वे अन्न ग्रहण नही कर सकती। प्रत्येक व्रत के अवसर पर किसी न किसी देवी-देवता की कथा कही जाती है। त्रिलोकीनाथ की कथा अब गाँवों मे सत्यनारायण की कथा का स्थान लेने जा रही है। जाड़े की रात्रियों में चौपाल में बैठकर ग्राम-वृद्ध, रोचक कहानियों को सुना कर बालकों का मनोरंजन किया करते हैं। शीत से रक्षा के लिए अग्नि को प्रज्वलित कर उसके चारों ओर बैठ कर आग 'तापने' वाले ग्रामीण जन लोक-कहानियों को सुना कर जनता का दिल बहलाते हैं। खेतों में पशुओं को चरानेवाले चरवाहे किसी वृक्ष की शीतल छाया में एकत्र बैठ कर छोटी-छोटी चुटीली कहानियों के द्वारा समय बिताते हैं। कहने का आशय यह है कि लोक-जीवन इन लोककथाओं द्वारा पूर्ण रूप से अनुस्यूत हे।

४. लोकनाट्य ✔

नाटक में गीत, नृत्य और सङ्गीत की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। गीत के

साथ सङ्गीत की योजना बड़ा आनन्द प्रदान करती है, परन्तु इसके साथ ही यदि नृत्य भी हुआ तो आनन्द की सीमा नहीं रहती। महाकवि कालिदास ने ठीक ही कहा है कि नाट्य जन-मन के अनुरंजन का सर्वोत्कृष्ट साधन है।[1] ग्रामीण जनता नाट्य को देख कर प्रसन्नता का जितना अनुभव करती है उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं। भोजपुरी प्रदेश में भिखारी ठाकुर का लिखा हुआ 'बिदेसिया' बड़ा लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध लोकनाट्य है, जिसमें परदेश में गये हुए पति का वर्णन है। उसके वियोग में उसकी स्त्री अनन्त कष्टों का अनुभव करती है और अपने दुःखों को लिपिबद्ध कर वह अपने परदेसी पति के पास भिजवाती है, जिसे पढ़कर वह घर लौट आता है। 'बिदेसिया' नाटक की संक्षेप में यही कथा है।

भिखारी पहिले स्वयं इस नाटक का अभिनय किया करता था जिसे देखने के लिए हज़ारों आदमियों की भीड़ इकट्ठी होती थी। दस-दस और पन्द्रह-पन्द्रह मील से लोग पैदल चल कर 'बिदेसिया' नाटक को देखने के लिए आया करते थे। जनता दर्शकों की उमड़ती हुई भीड़ को नियंत्रित करने के लिये अधिकारियों को पुलिस का प्रबन्ध करना पड़ता था। अब उसके अनुयायिओं ने अनेक मंडलियों की स्थापना कर 'बिदेसिया' के अभिनय की परम्परा को कायम रखी है। यह लोकनाट्य बड़ा ही लोकप्रिय सिद्ध हुआ है।

गुजरात में 'गर्बा' नामक लोकनृत्य बड़ा प्रसिद्ध है जिसमें गीत और सङ्गीत का सुन्दर सामंजस्य पाया जाता है। गुजराती लोकसाहित्य के आचार्य श्री झबेरचन्द मेघाणी ने इस लोक-नृत्य को गीतसङ्गीत-नृत्य की त्रिवेणी कहा है। युवती स्त्रियाँ अथवा लड़कियाँ समुदाय में इस नृत्य का अभिनय करती है जो बड़ा ही मनोरंजक होता है।

इसी प्रकार मालवा में 'माँच' नामक लोकनृत्य प्रसिद्ध हैं जिसका अभिनय देखने के लिए जनता की बड़ी भीड़ एकत्र हुआ करती है। इन लोकनृत्यों का अध्ययन बड़ा ही रुचिकर और मनोरंजनकारी है।

५. लोक सुभाषित

ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों' कहावतों पहेलियों, सूक्तियों, और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिरसंचित अनुभूत ज्ञान-राशि भरी पड़ी है। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है, जिनका विस्तृत विवेचन यथावसर किया

१. नाट्यं भिन्नरुचे र्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्—कालिदास।

जायेगा। कुछ ऐसी भी सूक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें नीति के वचन कहे गये हैं। घाघ और भड्डरी की उक्तियों में ऋतुविज्ञान की बहुमूल्य सामग्री पायी जाती है। खेती और वर्षा के सम्बन्ध में घाघ की जो उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, उनमें स्वानुभूति की मात्रा अत्यधिक है। पशुओं की पहिचान भी घाघ को अच्छी थी। उन्होंने अच्छे या बुरे पशुओं की जो पहिचान बतलायी है, वह बिल्कुल ठीक है। पालने के गीत तथा खेल के गीत भी इसी कोटि में रखे जा सकते हैं। माताएँ बच्चों को पालने पर सुला कर मधुर गीत गाती हैं जिन्हें सुनते-सुनते बच्चे सो जाते हैं। बालक खेल खेलते समय गीतों को भी गाते रहते हैं।

गाँव के लोग अपने दैनिक व्यवहार में गाली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया करते हैं। अतः मौखिक साहित्य के अन्तर्गत गालियों की चर्चा अत्यावश्यक है। इन गालियों में समाज की अनेक प्रथाओं का उल्लेख यत्र तत्र पाया जाता है।

———

अध्याय ६

लोकगीतों का विवेचन

(१) संस्कार-सम्बन्धी गीत

हमारे जीवन के सभी कृत्य धर्म से ओत-प्रोत हैं। भारतीय धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारे जीवन में कोई न कोई संस्कार होते ही रहते हैं। जन्म से पूर्व भी पुंसवन आदि संस्कारों का वर्णन उपलब्ध होता है। यद्यपि कुल संस्कारों की संख्या सोलह है परन्तु पुत्र-जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु प्रधान संस्कार माने जाते हैं। इन अवसरों पर (अन्तिम को छोड़कर) स्त्रियाँ कोकिल कण्ठ से गीतों को गा-गाकर अपने हार्दिक उल्लास और आनन्द को प्रकट करती है। जहाँ इन गीतों में प्रसन्नता और उछाह दिखायी पड़ता है, वहाँ मृत्यु-गीतों में विषाद की अमिट रेखा उपलब्ध होती है। इन्हीं संस्कार सम्बन्धी गीतों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ उपस्थित किया जाता है।

१. सोहर

पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सोहर' कहते हैं। कहीं-कहीं इन्हें 'मंगल' भी कहा जाता है। गीतों में इस शब्द का प्रयोग भी हुआ है :—

"गावहु ए सखि ! गावहु, गाइ के सुनावहु हो।
सब सखि मिलि जुलि गावहु, आजु 'मंगल' गीत हो ॥"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचन्द्र के जन्म के अवसर पर रामचरित मानस में मंगल गाने का उल्लेख किया है :—

"गावहिं मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी ॥"

सोहर शब्द की व्युत्पत्ति 'शोभन' शब्द से ज्ञात होती है। संभवतः यही शोभन शब्द शोभिलो > सोहिलो > सोहद > सोहर के रूपों में परिवर्तित होता हुआ इस रूप में आ गया है। भोजपुरी में 'सोहल' का अर्थ अच्छा लगना है जो संस्कृत के 'शोभन' से मिलता-जुलता है। सोहर की उत्पत्ति 'सुघर' शब्द से भी

मानी जा सकती है, जिसका अभिप्राय 'सुन्दर' होता है। पुत्र-जन्म के गीत 'सोहिलो 'के नाम से भी प्रसिद्ध है।)

नामकरण

इस मांगलिक अवसर पर जो गीत गाये जाते है वे 'सोहर' छन्द में होते है। इस छन्द में निबद्ध होने के कारण ही इन गीतों का नाम सोहर पड़ गया है। भोजपुरी गीतों में जो सोहर उपलब्ध होते है उनमें तुक नही होता और न वे पिंगलशास्त्र के नियमो के अनुसार ही लिखे गये होते हैं। ये मतवाली पहाड़ी नदी की भाँति स्वच्छन्द रीति से बहते चलते है। तुलसीदास जी ने 'रामलला नहछू' में जिन सोहरों की सृष्टि की है उनमें तुक के साथ ही साथ प्रत्येक पंक्ति में समान मात्राएं उपलब्ध होती हैं।

पुत्र-जन्म भारतीय ललनाओं की ललित कामनाओं की चरम परिणति है। मानी गई मनौतियों का मनोरम परिणाम है। इस अवसर पर पास- पड़ोस की स्त्रियाँ—विशेषत: लोकगीतो की पंडिता वृद्धाएं एकत्र होकर, नवप्रसूता स्त्री के 'सूतिका गृह' के द्वार पर बैठ कर, मनोरंजक सोहरों को सुना कर उस घर मे अमृत की वर्षा करती है। ये गीत बारह दिनों तक गाये जाते हैं और बालक के 'बरही' संस्कार (जो बारहवें दिन किया जाता है) के साथ ही इन गीतों की समाप्ति होती है।

परम्परा

धनी-मानी तथा समृद्ध व्यक्तियों के घरों मे पुत्र के पैदा होने पर, 'पोरिया' नचाने की प्रथा है। पोंरिया प्राय: मुसलमान होते हैं जो इस समय पर श्री रामचन्द्र के जन्म-ग्रहण करने की कथा को गा-गाकर नाचते है। 'सिरि रामचन्दर जनम लिहले चइत रामनवमी' यह उनके गीतों का प्रधान टेक है। परन्तु यह प्रथा अब धीरे-धीरे उठती चली जा रही है।

पुत्र की प्राप्ति उत्सव का प्रधान अवसर समझा जाता था और आज भी माना जाता है। अत: इस समय की नाच, गान की प्रथा प्राचीन काल में भी प्रचलित थी। आदि कवि, तमसा-तट के तपस्वी, महर्षि वाल्मीकि ने राम-जन्म के समय गन्धर्वों द्वारा गाने और अप्सराओं द्वारा नाचने का वर्णन किया है।[१]

"जगु: कलं च गन्धर्वा: ननृतुश्चाप्सरो गणा:
देवदुन्दुभयो नेदु: पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्॥"

१. बालकाण्ड, १८।१६

महाकवि कालिदास ने आज के शुभ जन्म के अवसर पर राजा दिलीप के महल में वेश्याओं के द्वारा नृत्य तथा मंगल वाद्य होने का उल्लेख किया है[1] :—

"सुखश्रवाः मंगलतूर्यनिस्वनाः
प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः
पथि व्यजृम्भ्यन्त दिवौकसामपि ॥

वर्ण्य विषय

पुत्र-जन्म के गीतों में आनन्द और उल्लास का विशद् वर्णन होना स्वाभाविक है। इनमें नवप्रसूता स्त्री के हृदय में गुदगुदी पैदा करने वाले गीतों की झाँकी भी देखने को मिलती है। कहीं-कहीं वन्ध्या स्त्रियों की करुण दशा का चित्र सहृदयों के हृदय में विशद सहानुभूति की उत्पत्ति करता है।

सोहरों का प्रधान विषय संभोग शृङ्गार का वर्णन है। इनमें स्त्री-पुरुष की रतिक्रीड़ा, गर्भाधान, गर्भिणी की शरीर यष्टि, प्रसव-पीड़ा, दोहद,धाय का बुलाना और पुत्रजन्म का वर्णन पाया जाता है।

गर्भवती स्त्री जिन विभिन्न वस्तुओं को खाने की इच्छा करती है उसे'दोहद' कहते हैं। कालिदास ने सुदक्षिणा के दोहद का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।[2] इन गीतों में दोहद का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है तथा पति उसकी पूर्ति करता हुआ पाया जाता है। पति स्त्री से पूछता है कि तुम्हें कौन सी वस्तु खाने में अच्छी लगती है। इस पर वह उत्तर देती है कि मुझे धान (चावल) का भात, अरहर की दाल, रोहू नामक मछली और तित्तिर का मांस स्वादिष्ट लगता है। इसके अतिरिक्त नीबू, केला और नारियल भी मुझे पसन्द है।[3]

जहाँ इन गीतों में पुत्र के पैदा होने पर महान् उत्सव मनाया जाता है, वहाँ पुत्री के जन्म के कारण विषाद की गहरी रेखा इनमें दिखायी पड़ती है। माता कहती है कि जैसे पुरइन का पत्ता हवा के कारण काँपता है, उसी प्रकार मेरा

---

१. रघुवंश, ३।१९

२. न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं,
स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी ।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः,
प्रियासखीमुत्तरकोशलेश्वरः ॥ रघुवंश ३।५

३. भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृ० ५१-५२

हृदय पुत्री के जन्म से काँप रहा है। इसीलिए पुत्री पैदा होने पर ये गीत नहीं गाये जाते।

खेलवना के गीत भी सोहर के समान ही पुत्र पैदा होने के उत्सव पर गाये जाते हैं, परन्तु सोहर से इनमें कुछ भिन्नता है। सोहर में विशेषकर पुत्र-जन्म की पूर्वपीठिका का वर्णन रहता है, परन्तु खेलवना के गीतों में उत्तरपीठिका का। पुत्र-प्राप्ति की लालसा रखने वाली स्त्री, गर्भ की वेदना से व्याकुल तरुणी, वधू के मंगल-साधन में निरत सास, धाय को दौड़ कर बुलाने वाला पति, बालक के उत्पन्न होने पर धन-धान्य माँगने वाली धाय—ये सब सोहर के प्रतिपाद्य विषय हैं। परन्तु सद्यःजात शिशु का रुदन, माता का आनंद, सास की प्रसन्नता अपने कुलांकुर के पैदा होने के हेतु सर्वस्व लुटा देनेवाले पिता का हर्ष 'खेलवना' के मुख्य विषय हैं। यद्यपि सोहर और खेलवना के गीतों के बीच में कोई मध्य रेखा नहीं खींची जा सकती, परन्तु स्थूल रूप से दोनों गीतों में यही पार्थक्य है। इन दोनों प्रकार के गीतों का वर्ण्य विषय समान—पुत्र-जन्म—होने के कारण सोहर के भीतर ही खेलवना का अन्तर्भाव माना जाता है।

मैथिली सोहरों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। इनमें भी भोजपुरी सोहरों की भाँति दोहद, प्रसव-पीड़ा, आनन्द और उछाह का वर्णन उपलब्ध होता है। परन्तु शृंगार की अपेक्षा इनमें करुण का पुट अधिक है। मैथिली सोहर तुकान्त और भिन्न तुकान्त दोनों प्रकार के पाये जाते हैं।[1] इनके वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' लिखते हैं कि "सोहर में माशूक आशिकों और नायिका-नायकों की जुल्फे सँवारने के लिए बेचैन नहीं दीखती। सोहर सुखान्त होता है और इसमें आशा की निर्झरिणी टेढ़ी नागिन-सी बलखाती बिजली सी दौड़ती चली गई है।"[2]

व्रज में इन गीतों को सोभर, सोहर या सोहिलो कहा जाता है। 'सोभर' वह घर है जिसमें नवप्रसूता स्त्री रहती है। भोजपुरी में इसे 'सउरि' कहते हैं। अतः प्रसूतिका-गृह के उपलक्ष में गाये जाने वाले गीत 'सोभर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भोजपुरी प्रदेश की ही भाँति व्रज में भी पुत्र जन्म के समय विभिन्न अवसरों पर गाने के लिए भिन्न-भिन्न गीत प्रचलित हैं। इन गीतों को प्रधानतया चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) जन्ति के गीत (२) छठी के गीत (३) जग

---

१. राकेश : मं० लो० गीत, पृ० ५०

२. वही, पृ० ५०

मोहन लुगरा (४) तगा। जन्ति तथा छठी के गीतों के भी अनेक भेद पाये जाते है।[1]

(२) मुण्डन के गीत

बालक जब बड़ा होने लगता है तब उसका मुण्डन संस्कार किया जाता है। इसे संस्कृत में 'चूडाकर्म' कहते है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में मुण्डन संस्कार का उल्लेख किया है।[2] गोस्वामी तुलसीदास ने महर्षि वशिष्ठ के द्वारा राम के चूडाकर्म का वर्णन रामचरित मानस में किया है।[3] मुण्डन षोडश संस्कारों में एक प्रसिद्ध संस्कार है। इस संस्कार के पहिले बालक के बालों को काटना निषिद्ध है। बालक के जन्म के पहिले, तीसरे, पाँचवे या सातवें अर्थात् विषम वर्ष में ही इस कार्य को सम्पादित किया जाता है। इसमें अधिक विलम्ब करना अनुचित है।

किसी पवित्र तीर्थ स्थान में, देवस्थान में अथवा नदी के किनारे यह संस्कार सम्पादित किया जाता है। अधिकांश लोग मिर्जापुर जिले में स्थित विन्ध्याचल देवी के मन्दिर पर अपने पुत्रों का मुण्डन कराते है। अनेक लोग मनौतियाँ मान कर वहाँ जाते है। परन्तु जो लोग अपनी क्षीण आर्थिक परिस्थिति के कारण वहां नही जा सकते वे किसी नदी के किनारे अथवा देवस्थान के पास इस कार्य को सम्पन्न करते हैं।

भोजपुरी प्रदेश में गाँव की स्त्रियाँ झुण्ड बना कर इस अवसर पर बालक और उसकी माता के साथ गंगा के किनारे जाती है। वे नदी के इस किनारे जमीन में खूंटा गाड़कर उसमे मूंज की नयी रस्सी बाँध देती है, जिसमे आम के पत्ते स्थान-स्थान बाधे गये रहते है। यह रस्सी 'तोरण' का कार्य करती है। इस रस्सी को लेकर स्त्रियाँ, नाव में बैठ कर, नदी के उस पार जाती है। इस विधि को 'गंगा-ओहारना' कहते हैं। फिर नाई बालक के बालों को कैंची से काटता है। यज्ञोपवीत संस्कार के पहिले छुरे से बालकों के बालों को काटना निषिद्ध माना जाता है।

---

१. डा० सत्येन्द्र: अवलो० सा० अ०, पृ० १२२-२३

२. अथास्य गोदानविधेरनन्तरं
विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुरुः।
[रघुवश ३।३३]

३. चूडाकर्म कीन्ह गुरु आई।
[रा० च० मा०, बालकाण्ड]

वर्ण्य-विषय

मुण्डन के गीतों में कहीं तो कोई स्त्री इन्द्र भगवान से जल न बरसाने की प्रार्थना कर रही है तो कहीं बालक की फूआ अपने भानजे के मुण्डन में सम्मिलित होने के लिए चली आ रही है। कहीं भाई अपनी बहन से 'लाहर परीछने' की प्रार्थना करता है तो कहीं बहन अपने पिता से 'नग' के रूप में आभूषण मांगती है। मुण्डन और जनेऊ के अवसर पर बालक की फूआ (बुआ) को नेग (उपहार) की बड़ी आशा रहती है। अतः इन गीतों में इसका यथेष्ट उल्लेख उपलब्ध होता है।

(३) यज्ञोपवीत के गीत

मनु ने लिखा है कि मनुष्य जन्म से शूद्र उत्पन्न होता है परन्तु संस्कारों के करने के उपरान्त ही वह 'द्विज' कहलाता है[1]। प्राचीन काल में इस संस्कार का बड़ा महत्त्व था। आज भी उच्च वर्ण—ब्राह्मण और क्षत्री—के लोग इसे बड़े उत्सव के साथ करते हैं।

यज्ञोपवीत को 'जनऊ' भी कहा जाता है जो उसी शब्द का अपभ्रंश रूप है। इसे 'उपनयन' भी कहते हैं। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है वह संस्कार जिसके द्वारा छात्र गुरु के समीप लाया जाता है।

उपनीयते गुरुसमीपं प्रापयते अनेनेति उपनयनम्।

प्राचीन भारत में यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् बालक या छात्र गुरु के पास गुरुकुल में भेज दिया जाता था। इसलिए इस संस्कार को 'उपनयन' कहते थे। यज्ञोपवीत धारण करने के समय से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों अर्थात् नियमों का पालन करना आवश्यक होता है, इसलिए इसे 'व्रतबन्ध' भी कहते हैं जिसका अर्थ है व्रतों अर्थात् नियमों के द्वारा बांधा गया। द्विजातियों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य—के लिए यज्ञोपवीत धारण करना नितान्त आवश्यक है।

प्राचीन काल में जो जनेऊ पहिना जाता था वह अपने हाथ से कते हुए सूत का ही बना हुआ होता था। अनेक गीतों में सूत कात कर जनेऊ बनाने का उल्लेख पाया जाता है। ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत आठवें वर्ष की अवस्था में होना चाहिए। क्षत्रिय बालक का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य का बारहवें वर्ष में यज्ञो-

१. जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारात् द्विज उच्यते। मनुस्मृति।

पवीत का विधान शास्त्र सम्मत है।[1] इस संस्कार के समय के सम्बन्ध मे शतपथ ब्राह्मण का यह मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म ऋतु में और वैश्य का शरद् ऋतु में करना चाहिए।[2] इसीलिए आजकल ब्राह्मणों के यहाँ जो यज्ञोपवीत होता है वह निश्चित रूप से फागुन या चैत्र के महीने में ही सम्पन्न किया जाता है।

वर्ण्य विषय

जनेऊ के जो गीत पाये जाते है उनमें उन विधि-विधानों का वर्णन पाया जाता है, जो इस संस्कार में किये जाते है। कहीं पर ब्रह्मचारी किसी स्त्री को माता कह कर सम्बोधित करता हुआ भिक्षा देने की प्रार्थना करता है तो कही वह विद्या पढ़ने के लिए काशी या काश्मीर जाने के लिए प्रस्तुत है। यज्ञोपवीत संस्कार मे भिक्षा माँगना एक प्रधान विधि है। ब्रह्मचारी मूँज की करधनी और पलाश-दण्ड धारण करता है। वह खड़ाऊँ पहिनता है। अनेक गीतो में ब्रह्मचारी का पिता पलाश-दण्ड को खोजने के लिए व्याकुल दिखायी देता है।[3]

बुन्देलखण्डी और मैथिली के जनेऊ के गीत

जनेऊ के गीतो मे माता और पिता की प्रसन्नता, बालक की फूआ का नेग माँगने के लिए आग्रह और विविध विधि-विधानो तथा नियमो का उल्लेख पाया जाता है। जनेऊ के सभी गीतो मे चाहे वे बुन्देलखण्डी हो या मैथिली, चाहे राजस्थानी हों या गुजराती—एक ही भावधारा प्रवाहित है।) हमीरपुर जिले मे प्रचलित जनेऊ के गीतो में वही उछाह दिखायी पड़ता है जो भोजपुरी गीतों मे।[4] मैथिली लोकगीतों मे जनेऊ के अवसर पर भी बांस का मण्डप तैयार करने का उल्लेख पाया जाता है—जो सम्भवतः अन्यत्र प्रचलित नही है।"[5] 'लापर परीछने'

---

१. अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्, गर्भाष्टमे वा।
एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्।

२. वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत। ग्रीष्मे राजन्यम्।
शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके।
श० प० ब्रा०

३. उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १ पृ० १०८ (प्रथम संस्करण)

४. त्रिपाठी : हु० ग्रा० सा०, पृ० ६२

५. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० ६७

की प्रथा भोजपुरी तथा मैथिली गीतों मे समान रूप से वर्णित है। इसके अतिरिक्त पलाश-दण्ड, मृगछाला और मूँज के दण्ड का वर्णन भी दोनों में अभिन्न रूप से हुआ है।

(४) विवाह के गीत

विवाह हमारा सब से प्रसिद्ध और प्रधान संस्कार है। संसार की सभ्य, अर्धसभ्य और असभ्य सभी जातियों में यह संस्कार बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। मनुष्य के जीवन मे विवाह का जितना महत्त्व है उतना संभवतः अन्य संस्कार का नही। यही कारण है कि इस संस्कार का विधान संसार के प्रत्येक भाग मे पाया जाता है।

वेदों में लिखा है कि जो मनुष्य अविवाहित है उसका जीवन अपूर्ण है। वह किसी यज्ञ-यागादि का विधान नहीं कर सकता। अतः भारतीय समाज में विवाह हमारे धार्मिक जीवन का आवश्यक अंग है। भगवान् मनु ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है—(१) ब्राह्म (२) दैव (३) आर्ष (४) प्राजापत्य (५) आसुर (६) गान्धर्व (७) राक्षस, और (८) पैशाच। हिन्दू समाज में आजकल जो विवाह प्रचलित है उसे ब्राह्म और दैव का मिश्रण कहा जा सकता है। यों तो आजकल गान्धर्व विवाहों की कुछ कमी नही है, परन्तु लोकगीतों में इनका उल्लेख नही मिलता।

गीतों के भेद

इस देश के प्रत्येक राज्य मे विवाह की प्रथाएं भिन्न-भिन्न है। एक ही राज्य की भिन्न-भिन्न जातियों में यह प्रथा विभिन्न रूप मे पायी जाती है। स्थान तथा समय के अभाव से इन प्रथाओं का वर्णन करना संभव नहीं है।[1]

विवाह के गीत वर और कन्या दोनों के घर में गाये जाते हैं। जिस दिन वर का 'तिलक' चढ़ता है, उसी दिन से इन गीतो का गाना प्रारम्भ हो जाता है। वर तथा कन्या दोनों के घरों में गाये जाने से इनमें स्वतः पार्थक्य हो जाते हैं। जहाँ वर पक्ष के गीतों में उछाह और उत्साह की प्रचुर मात्रा दिखायी पड़ती है वहाँ कन्या पक्ष के गीतों में विषाद की गहरी रेखा पायी जाती है। विवाह के अवसर पर अनेक प्रकार के विधि-विधान किये जाते हैं, जिनमें गीतों का गाना एक

---

१. भोजपुरी वैवाहिक प्रथाओं के विशेष विवरण के लिए देखिये—उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी)।

आवश्यक अंग माना जाता है। इन विधि-विधानों के अनुसार इन गीतों का विभाजन निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है :—

(क) कन्या पक्ष के गीत—

१. तिलक के गीत
२. संझा के गीत
३. मांड़ो के गीत
४. माटी कोड़ाई के गीत
५. कलसा धराई के गीत
६. हरदी के गीत
७. लावा भुजाई के गीत
८. मातृ-पूजा के गीत
९. द्वार-पूजा के गीत
१०. गुरहत्थी के गीत
११. विवाह के गीत
१२. भाँवर के गीत
१३. चूमने के गीत
१४. द्वार रोकने के गीत
१५. कोहबर के गीत
१६. परिहास के गीत
१७. भात के गीत
१८. बर को उबटन लगाने के गीत
१९. माँड़ो खोलाई के गीत
२०. बारात की बिदाई के गीत
२१. कंकन छुड़ाई के गीत
२२. चौथारी के गीत

(ख) वर पक्ष के गीत—

१. तिलक के गीत
२. सगुन के गीत
३. भतवानि के गीत
४. माटी कोड़ाई के गीत
५. लावा भुजाई के गीत
६. इमली घोंटाई के गीत
७ हरदी के गीत
८. मातृपूजा के गीत
९ वस्त्रधारण के गीत
१०. मउरि के गीत
११. परिछावन के गीत
१२. डोमकछ के गीत
१३. गोड़ भराई के गीत
१४. कोहबर के गीत
१५. ककन छुड़ाई के गीत
१६. चौथारी के गीत

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विवाह सम्बन्धी विभिन्न विधियों के समय गाये जाने कन्या पक्ष के गीतो के भेद २२ हैं और वर पक्ष के गीत १६ प्रकार के है। कन्या पक्ष के गीतों के भेदों की अधिकता का कारण यह है कि बारात के आने पर समस्त वैवाहिक विधान कन्या के घर पर ही सम्पादित किये जाते है। कन्या पक्ष के गीत बड़े ही करुण और मर्मस्पर्शी होते हैं। पुत्री के वर खोजने

तथा उसके विवाह में पिता को जितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती है, उनका संकेत इनमें उपलब्ध होता है।

"दिनवा हरेलू ए बेटी भुखिया रे पिअसिया
रतिया हरेलू आँखि निनियाँ नु हो"

इसमें कितनी वेदना भरी हुई हैं।

व्रज के विवाह गीत

व्रज मण्डल में वैवाहिक प्रथाएँ भोजपुरी प्रदेश से बिल्कुल भिन्न हैं जो स्वाभाविक है। वहाँ प्रचलित निम्नांकित विधि-विधानों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं जो बड़े मधुर और सुन्दर होते हैं।[1]

१. सगाई	२. पीली चिट्ठी
३. लगुन	४. भात न्यौंतना
५. हरद हात (ताई)	६. रतजगा
७. तेल	८. घूरा पूजना
९. अछता	१०. माढ़वा गाड़ना
११. भात	१२. विवाह
१३. भाँवर	१४. रहस बधाना
१५. बढ़ार	१६. पलकाचार
१७. बन्दनवार	१८. मूँह मड़ई
१९. विदा	२०. बहू नचाना
२१. दई-देवता सिराना	२२. माढ़वा सिराना
२३. कलनावरि	२४. दई-देवता की पूजा

व्रज में विवाह-संस्कार का यथार्थ आरम्भ 'लगुन' अथवा लग्नपत्रिका से होता है, परन्तु भोजपुरी प्रदेश में 'तिलक' के समय से ही विवाह सम्बंधी कृत्यों का प्रारम्भ हो जाता है।

वर्ण्य विषय

विवाह के गीतों का वर्ण्य विषय बड़ा विस्तृत है। इनमें कहीं तो पुत्री की माता अपनी सयानी लड़की के लिये योग्य वर खोजने का आग्रह करती है तो कहीं पुत्री अपने पिता से सुन्दर वर खोजने की प्रार्थना करती हुई दिखाई पड़ती है।

---

१. व्रज की वैवाहिक प्रथाओं के विशेष विवरण के लिए देखिए—
डा० सत्येन्द्र—व्र० लो० सा० अ०, पृ० १५३-२३१ (साहित्य रत्न भण्डार, आगरा)

कहीं पिता योग्य वर न मिलने की चिन्ता से व्याकुल है तो कहीं माता पुत्री-जन्म के कारण अपने भाग्य को कोस रही है। कहीं बारात के आने और बाजा बजने का उल्लेख है तो कहीं बारातियों को भोजन कराने का। इन गीतों में एक ऐसी प्रथा का उल्लेख है जो साधारणतया हिन्दू समाज में नही पायी जाती। भोजपुरी में कुछ ऐसे गीत पाये जाते हैं जिनमें वर कन्या के आँगन में आकर बैठा है और वहाँ आने का कारण पूछने पर कहता है कि इस घर में एक कुमारी कन्या है, मैं उससे विवाह करने आया हूँ।[1] गीत की कुछ कड़ियाँ इस प्रकार है :—

"पुरूब से अइले रे जोगी, पछिम कइले जाले
कवन बाबा चौपरिया ए जोगी, वइसे आसन मारी।
हम त बिआहन अइली ए बाबा,
तोहार बिटिया कुँवारी।"

पिता अपनी पुत्री के लिए वर खोजने के लिए जगन्नाथपुरी तक की यात्रा करता है, परन्तु उसे उचित वर नहीं मिलता। कहने की आवश्यकता नहीं है कि वरों की समस्या आज भी उतनी ही कठिन है जितना पहिले थी।

गीतों में बाल-विवाह का वर्णन पाया जाता है। विवाह करने के लिए जाने वाले बालक की माता उसकी छोटी अवस्था को देख कर कहती है कि मेरा लाल ब्याहने जा रहा है।[2] दूध के बिना उसके होंठ कहीं सूख न जाँय! कहीं-कहीं वृद्ध विवाह की भी प्रथा प्रचलित है, परन्तु गीतों में इनका उल्लेख विशेष नहीं पाया जाता। वर की वेशभूषा से सम्बंधित अनेक गीतों में उसके सेहरे का वर्णन प्रधान स्थान रखता है। इसे 'मउरि' भी कहा जाता है। विवाह के समय पर वर घोड़ी पर चढ़ कर चलता है जिसे 'घुड़चढ़ी' कहते हैं।[3]

विवाह के गीतों—विशेषकर 'कोहबर' में गाये जाने वाले गीतों में संभोग शृङ्गार का वर्णन अधिक होता है, जिनमें कहीं-कही अश्लीलता का पुट भी आ गया है। फिर भी इनमें मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं किया गया है। बारात में समधी—वर का पिता—को भात खिलाते समय गाली गाने की प्रथा व्रज तथा भोजपुरी प्रदेश में समान रूप से पायी जाती है।[4] यदि विवाह में गाली न गायी गई तो समधी महोदय के सत्कार में कमी समझी जाती है।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १, पृ० १२०
२. वही, पृ० १५३
३. सत्येन्द्र : व्र० लो० सा० अ०, पृ० २१७
४. सत्येन्द्र: व्र० लो० सा० अ०, पृ० २१६

मैथिली तथा राजस्थानी में विवाह गीत

मैथिली में विवाह के गीतों को 'लग्न गीत' कहते हैं। इस समय 'सम्मरि' नामक गीत भी गाये जाते हैं जो बड़े मधुर और मनोरम होते हैं। सम्मरि शब्द स्वयंबर का अपभ्रंश है। इन 'सम्मरि' के गीतों में सीता-स्वयंबर, रूक्मिणी-हरण और उषा-स्वयंबर आदि के गीत प्रसिद्ध हैं। परन्तु ये अन्य अवसरों पर भी गाये जाते हैं। अतः इन्हें शुद्ध वैवाहिक गीतों के अन्तर्गत नहीं ले सकते। मैथिली लग्न-गीतों का विषय भी वही पुत्री-जन्म की निन्दा, सुन्दर वर खोजने के लिए पुत्री की पिता से प्रार्थना और पिता की परेशानियाँ हैं।[1]

राजस्थानी विवाह के गीतों को 'बनड़े' कहते हैं जिसका अर्थ 'दूल्हा' होता है।[2] स्थानीय प्रथाओं के कारण इन गीतों के भी अनेक भेद पाये जाते हैं, जैसे पीठी, हलदी, मँहदी, सेवरा, घोड़ी, कामण तथा ओलूं आदि। वर के चुनाव के सम्बन्ध में राजस्थानी लड़की अपनी भोजपुरी तथा मैथिली बहिनों से अधिक चतुर दीख पड़ती है। उसका चुनाव सुसंस्कृत है।[3] एक अवधी गीत में दुष्टा सास के व्यवहारों से दुःखी लड़की को समझाता हुआ उसका पिता कहता है कि चार दिन का राजा का राज है। तुम्हारी सास भी थोड़ी ही दिन जीवित रहेगी। फिर घर में तुम्हारा ही राज होगा।[4]

(५) गवना के गीत

गवना शब्द संस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ 'जाना' है। कहीं-कहीं विवाह के दूसरे दिन ही लड़की की बिदाई कर दी जाती है। परंतु कुछ लोगों को विवाह के साथ पुत्री की विदाई नहीं सहती। अतः वे लोग विवाह के पश्चात् किसी दूसरी निश्चित तिथि को पुत्री को विदा करते हैं जिसे 'गवना' कहते है। गवना विवाह के प्रथम, तृतीय, पञ्चम या सप्तम—अर्थात् विषम वर्षों—में ही किया जाता है सम वर्षों में नहीं। पहिले जब छोटे-छोटे लड़के लड़कियों का विवाह होता था उस समय तीन, पाँच या सात वर्षों के पश्चात् ही गवना करना श्रेयस्कर था। परन्तु आजकल युवक और युवतियों का विवाह होने के कारण गवना एक वर्ष के भीतर ही हो जाता है।

---

१. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० १३२
२. पारीक : राजस्थान के लोकगीत भाग १ (पूर्वार्ध) पृ० १६०
३. वही, पृ० १६०-६१
४. त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा०, पृ० ९७

गवना विवाह के समान ही बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर वर का पिता अपने वधू को लिवा लाने के लिए बारातियों के साथ नहीं जाता। पुत्र-वधू का रुदन इस समय सुनना उसके लिए निषिद्ध माना जाता है।

वर्ण्य-विषय

पुत्री की विदाई के अवसर पर गाये जाने के कारण इन गीतों में करुण रस की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती है। विवाह के गीतों में जहां आनन्द, उल्लास एवं परिहास का वर्णन है, वहाँ गवना के गीतों में विषाद का दृश्य दिखायी पड़ता है। कहीं भाई अपनी ससुराल जाने वाली बहिन की पालकी के पीछे पीछे रोता हुआ जाता दिखायी पड़ता है तो कहीं बहिन अपनी माता, पिता और भाई के वियोग के दुःख से दुःखी होकर रोती, कलपती और बिलखती चली जाती है। कहीं सास अपने जामाता से अपनी प्राणप्यारी पुत्री को आदर के साथ रखने और उससे प्रेम करने का उपदेश देती है तो कहीं पुत्री के भावी वियोग-जन्य दुःख से दुःखी होकर रुदन करती हुई पायी जाती है। कहने का आशय यह है कि इस अवसर पर जिन विषयों का वर्णन किया गया है वे सभी करुण रस से ओत-प्रोत हैं। इन गीतों में करुणा का समुद्र हिलोरें मारता हुआ दिखायी पड़ता है। गवना के गीतों में इतनी हृदयद्रावकता है कि उन्हें सुन कर पाषाण-हृदय भी द्रवित हो उठेगा।[1]

मैथिली तथा राजस्थानी गवना के गीत

मिथिला में गवना के गीतों को 'समदाऊनि' कहते हैं। इनके विषय में श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' लिखते हैं कि "विवाह संस्कार की समाप्ति के बाद जब दुलहिन डोली में बैठकर ससुराल जाने की तैयारी करती है उस समय मिथिला में एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है जो 'समदाऊनि' के नाम से प्रसिद्ध है। 'समदाऊनि' का सब से बड़ा गुण है स्वाभाविकता। इसका शृङ्गार प्रेम और करुणा के मोतियों से हुआ है।"[2] इन 'समदाऊनि' के गीतों में पुत्री के प्रति माता और पिता का प्रेम उमड़ा पड़ता है और पुत्री के सतत अश्रुपात से नदियों में बाढ़ तक आ जाती है। एक गीत में लोक कवि ने बेटी की जुदाई में बिसूरती हुई माँ

---

१. भोजपुरी गवना के गीतों के लिए देखिये—
डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १, पृ० २६५-२७८

२. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० १७०

और माँ की याद में तड़पती हुई बेटी—दोनों के हृदय को निकाल कर रख दिया है। इस गीत के प्रत्येक शब्द से करुणा फूट कर बह पड़ी है।[1]

राजस्थानी भाषा मे गवना के गीतों को 'ओलूं' कहते है "इनके भाव इतने करुण होते है कि सुनकर हृदय थाम कर आँसू रोकना कठिन हो जाता है। स्त्रियाँ गाती हुई जोर-जोर से रोने लगती है। पुरुषों की आँखें भी छलछला जाती है।"[2] एक राजस्थानी गीत में पुत्री की उपमा कोयल से दी गई हैं। लोक कवि कहता है कि "ए कोयल ! इस बन को छोड़कर कहाँ जा रही है। तुम्हारी माता उन्मना हो रही है। छोटी बहिन अकेली रो रही है। तेरा बड़ा भाई उदास फिरता है और तेरी भावज बिलखती है।[3]

ब्रज के भी बिदाई के गीत बड़े मार्मिक होते है। इन गीतों में विदा होती हुई लड़की, पिता, भाई तथा माँ की हृदय-द्रावक विविध मनोवृत्तियो का चित्र चित्रित किया गया है।[4]

(६) मृत्यु गीत

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने षोड़श संस्कारों का विधान बतलाया है। जन्म से मृत्यु तक अनेक संस्कार सम्पादित किये जाते है। मृत्यु मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है। यह संस्कार संसार के सभी सभ्य और असभ्य देशों में किसी न किसी रूप मे अवश्य किया जाता है। इस देश मे प्रत्येक संस्कार के अवसर पर गीत गाने की प्रथा है। मृत्यु संस्कार भी इसका अपवाद नही है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ अन्य अवसरों पर गाये जाने वाले गीतो मे प्रसन्नता तथा उछाह प्रकट होता है वहाँ इन गीतों मे विषाद की गहरी रेखा दिखाई पड़ती है।

भेद

मृत्यु गीत दो प्रकार के पाये जाते हैं। एक में तो मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन होता है और दूसरे में उसकी मृत्यु से उत्पन्न कष्टों का उल्लेख। यदि कोई छोटा बच्चा अकाल में ही काल-कवलित हो गया तो उसकी सुन्दरता, भोलापन तथा सरलता का उल्लेख इन गीतों का वर्ण्य विषय होता है। यदि परिवार के किसी कमासुत (धन कमाने वाला) व्यक्ति का निधन हो जाता है तब उसके न

---

१. राकेश: मैं० लो० गी०, पृ० १७३-७४
२. पारीक : रा० लो० गी०, भाग १ पृ० १८८
३. पारीक : रा० लो० गी०, भाग १ पृ० १९०
४. डा० सत्येन्द्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० २२२

रहने से परिवार की आर्थिक दुर्दशा का चित्रण मृत्यु गीत में पाया जाता है। इनमें कुछ गीतों का निर्माण तत्काल होता है। किसी स्त्री के मन में अपने पति या पुत्र की मृत्यु के कारण जो दुःख उत्पन्न होता है उनको वह सद्यः गीत के रूप में प्रकट करती जाती है और इस प्रकार इन गीतों की उत्पत्ति होती है। यह प्रक्रिया अत्यन्त स्वाभाविक है।

परम्परा

मृत्यु गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त मिलते हैं जिनमें मृत व्यक्ति के सम्बन्ध में शोक प्रकट किया गया है। प्रेत की आत्मा किस मार्ग से स्वर्ग को जायेगी, उसकी रक्षा के लिए कौन से लोग रक्षक के रूप में जायेंगे इसका बड़ा रोचक वर्णन इन ऋचाओं में पाया जाता है। मृत आत्मा को सम्बोधित करता हुआ वैदिक ऋषि कहता है कि—

"प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिः
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यासि वरुणं च देवम्।"

ऋग्वेद। १०। १४। ७

नीचे की ऋचा में राक्षसों की मृत आत्मा को अकेले छोड़ देने के लिए कहा गया है। यमराज उसके लिए सुन्दर विश्राम स्थान देते हैं।

"अपेत वीत वि च सर्पतातोऽ
स्मा एतं पितरो लोमक्रन्न्।
अहोभिरद्भिरक्तुभि र्व्यक्तं
यमो ददात्यवसानमस्मै॥"

ऋ. वे. १०। १४। ९

रामायण तथा महाभारत में अनेक स्थलों पर विशेष व्यक्तियों की मृत्यु पर विलाप के अनेक प्रसङ्ग आये हैं, जिन्हें मृत्यु गीत की कोटि में रखा जा सकता है।

महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव में शिव के द्वारा मदन-दहन के पश्चात् रति के विलाप का जो वर्णन किया है वह वास्तव में बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। रति मदन के विभिन्न गुणों का वर्णन करती हुई अत्यधिक दुःख के कारण संज्ञाहीन हो जाती है। होश में आने पर रति कहती है कि :—

"मदनेन बिना कृता रतिः,
क्षणमात्रं किल जीवतीति मे।

वचनीयमिदं व्यवस्थितं,
रमण ! त्वामनुयामि यद्यपि ।।''

(वह फिर कहती है कि हे कामदेव ! अब तुम्हारे बिना स्त्रियों के सभी संभोग एवं शृङ्गार व्यर्थ है।)

''नयनान्यरुणानि घूर्णयन्
वचनानि स्खलयन् पदे पदे ।
असति त्वयि वारुणीमदः,
प्रमदानामधुना विडम्बना ।।''

इसी प्रकार महाकवि ने रघुवंश में इन्दुमती की अकाल मृत्यु पर अज के द्वारा शोक की जो अभिव्यंजना करायी है, वह संसार के साहित्य में अपना सानी नहीं रखती। राजा अज इन्दुमती की प्रशंसा करते हुए कहते हैं। 'तुम मेरी गृहिणी थी, मन्त्रिणी थी और ललित कलाओं में मेरी शिष्या थी। मृत्यु ने तुम्हारा हरण कर मेरा सर्वस्व नष्ट कर दिया' [1]।

''गृहिणी, सचिवः, सखी मिथः,
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना,
हरता त्वां वद किन्न मे हृतम् ।।''

फिर अज आगे कहते हैं, 'मेरे सुख के दिन अब बीत गये क्योंकि मेरे सभी सुख-सम्भोग की वस्तुएँ तुम्हारे ही ऊपर आश्रित थीं—

''विभवेऽपि सति त्वया बिना,
सुखमेतावदजस्य गण्यताम् ।
अहृतस्य विलोभनान्तरैः
मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः ।''

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने मृत्यु-गीत का बड़ा सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है।

महाकवि बाण ने 'हर्षचरित' में 'रूदितक' नामक गीत का उल्लेख किया है जो मृत्यु के अवसर पर गाये जाते थे। हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री के पति की मृत्यु के उपरान्त इस प्रकार के गीतों के गाने का संकेत मात्र उपलब्ध होता है।

---

१. रघुवंश, ८।६७

भारतीयों का दृष्टिकोण मृत्यु मे भी मङ्गल की भावना की ओर ही रहता है। अतः इस प्रकार के गीत संस्कृत साहित्य मे बहुत ही कम है।

उर्दू साहित्य में किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् शोक-गीत लिखने की प्रथा प्रचलित है जिसे 'मर्सिया' कहते है। उर्दू मे 'मर्सिया' काव्य का एक विशिष्ट प्रकार माना जाता है जिसे लिखने मे कुछ कवियों ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है।

व्रज में मृत्यु गीत

व्रज लोक साहित्य मे मृत्युगीत बहुत कम पाये जाते है। परन्तु मथुरा के चतुर्वेदियो में मृत्यु के अवसर पर जो स्त्रियों का विलाप होता है वह सङ्गीत की गति के साथ होता है। परन्तु इसका अभिप्राय किसी वाद्ययन्त्र के साथ होने का नहीं है। व्रज के इन मृत्यु गीतो मे एक लय मिलती है और इनका अर्थ भी होता है। इनमें प्रायः मृत व्यक्ति के विविध प्रिय पदार्थों का नाम ले लेकर शोक प्रकट किया जाता है।[1] व्रज का यह गीत लीजिए जिसमे मृत्यु के समय गोदान का भी उल्लेख है—

"काए के कारन जौ बए, और काहे के हरे हरे बाँस ॥
हरि रे किसन कैसे तिरयऔ। (टेक)
लाला धरम के कारन जौ बए,
मरन के काजे हरे हरे बाँस। (टेक)
बेटी न ब्याही आपनी,
मढ़हे न लीयौ कन्यादान। (टेक)
साजन न झुलमे द्वार,
हरि रे किसन कैसे तिरयऔ।
काए के कारन गऊ दई,
काए के दीए गऊ दान।
पार के काजे गऊ दई,
और तरन कूँ दए गऊ दान॥
हरि रे किसन कैसे तिरयऔ।

भोजपुरी के मृत्यु गीत

भोजपुरी प्रदेश में जब कोई पुरुष मर जाता है तब घर की स्त्रियाँ विशेष-

१. डा० सत्येन्द्र: व्र० लो० सा० अ०, पृ० २३२

कर उसकी स्त्री—अपने पति के विभिन्न गुणों का उल्लेख करती हुई लय के साथ विलाप करती है। इन गीतों मे मृत व्यक्ति के न रहने से उत्पन्न होने वाले भावी दुःखों का भी वर्णन पाया जाता है। यदि मृत व्यक्ति कमासुत (धन कमाने वाला) हो तो विषाद की मात्रा और अधिक बढ़ जाती है। स्त्रियाँ रोती हुई गाती भी जाती है। इसमें भावी दुःख की विवृत्ति रहती है। जैसे—

'के मोरा नइया के पार लगइहे ए रामा।
'अब कइसे दिनवा काटबि ए रामा।
'आताना आरामवा हमरा के दिहले,
अब कबन दुरदसवा होई ए रामा।

यदि विदेश मे जाकर पति मर गया हो तो उसे वहां न जाने देने की चर्चा भी की जाती है।

'हम नाही जननी विदेसवा में मरिहे
नाही त जाये ना दिहिती ए रामा।
'अब के हमार दिनवा पार लगाई ए रामा।
'कवन घाटवा हम लागबि ए रामा।'

स्त्रियो के क्षुब्ध तथा संतप्त हृदय मे जो भाव आते जाते है उनका प्रकाशन वे करती जाती है। वे किसी पूरे गीत को नही गाती बल्कि प्रत्येक बार कुछ न कुछ नयी बात कहकर अपना दुःख प्रकट करती है। ये गीत बड़े ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी होते है।

यूरोपीय देशों में मृत्यु गीत

यूरोपीय देशो मे भी मृत्यु गीत की प्रथा प्रचलित है। महाकवि होमर ने 'इलियड' नामक अपने महाकाव्य के अन्तिम भाग मे ट्राय की जनता के दुःख तथा विलाप का जो मर्मस्पर्शी वर्णन किया है वह मृत्यु गीत का प्राचीन उदाहरण है। आयरलैण्ड में किसी व्यक्ति के मर जाने पर सामूहिक रूप मे विलाप करने की प्रथा अब भी प्रचलित है यद्यपि इसका धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। इन विलाप-गीतों को कीन (Keens) कहते है। इनका स्पष्ट रूप मे उच्चारण किया जाता है। इनमे एक विशेष प्रकार की लय होती है। इनमें मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन होता है और अपने परिवार को छोड़कर चले जाने के लिये उसको उलाहना दिया जाता है। ऐसे अवसर पर रोने वाले व्यक्ति प्रायः पेशेवाले होते है

और उनके गीत तत्काल बनाये हुए न होकर परम्परा से चले आते हुए प्राचीन होते हैं।[1]

कार्सिका

कार्सिका टापू में यह प्रथा प्रचलित है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु के समय से लेकर उसके दफनाये जाने तक रोने तथा विलाप करने का क्रम जारी रहता है। जब कोई आदमी मर जाता है तब इसकी सूचना उसके सम्बन्धियों को दी जाती है जो शीघ्र ही दल बना कर जलूस में मृत व्यक्ति के घर पहुँचते हैं। एक कमरे में सभी व्यक्ति इकट्ठा हो जाते हैं और मृत्यु गीत प्रारम्भ हो जाता है। पहिले दो व्यक्ति गाना प्रारम्भ करते हैं। परन्तु प्रायः एक व्यक्ति ही एक बार उठकर गाता है। मृत व्यक्ति की विधवा पत्नी पहिले मृत्यु गीत गाती है जिसमें अपने पति की प्रशंसा तथा उसके जीवन की प्रधान घटनाएँ होती हैं। फिर इतने जोरों से वह मर्मस्पर्शी तथा हृदयविदारक लययुक्त विलाप करती है कि वहाँ उपस्थित स्त्रियाँ दुःख से अभिभूत होकर बेहोश हो जाती हैं। वह अपने नाखून से शरीर के मांस को काटने लगती है, जमीन पर गिर पड़ती है और अपने मुख में धूल मलने लगती है।[2] जब पति किसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण मृत्यु को प्राप्त होता है तब उसकी पत्नी उसके गुणोत्कर्ष का वर्णन इस प्रकार करती हुई रोती है—

"You were my flower, my thornless rose, my stalwart one, my column, my brother my hope, my prop, my esteem gem, my most beautiful treasure"

फ्रांस के दक्षिण-पश्चिम भाग मे मृत्यु गीत गाने की परम्परा बहुत दिनों तक रही है। गैसकोनी की बूढ़ी स्त्रियाँ आज भी इन गीतों की स्मृति को सुरक्षित बनायी हुई हैं। गैस्कन के गीत गद्यात्मक है जिनमें विस्मयादि बोधक अव्ययों की

1 The keens must not be confused with the peculiar wail or death-cry known Ullagone; they are articulate utterances, in a strongly marked rhythm, extolling the merits of the dead, and reproaching him for leaving his family, with much more in the same strain. The keeners may or may not be professionl, and the keens are more often of a traditional than of an improvised description.

काउण्टेस एभेलिन माटिनेङ्गों : दि स्टडी आफ फोक सांग्स, पृ० २७१

२. **दि स्टडी आफ फोक सांग्स, पृ० २७३**

प्रधानता है। प्राब जान नामक व्यक्ति के मरने के बाद उसकी स्त्री इस प्रकार से विलाप करती है।)

Ah !
Ah ! Ah ! Ah !
Ah ! Praube !
Ah ! Praube !
Moun Diu !
Moun Diu ! Moun Diu !

मांटेनेग्रो में शोक गीत की प्रथा आदिम रूप में पायी जाती है। सन् १८७७ ई० के युद्ध में इसके निरीक्षण का अनेक बार अवसर मिला। (ओस्ट्रोग में एक ऐसी ही घटना घटी जिसमें कोई सैनिक घायल अवस्था में अस्पताल पहुँचाया गया जो दो-तीन दिन में मर गया। इस पर उसकी स्त्री तथा बहिन ने वह कुहराम मचाया जिसका वर्णन कठिन है। वे अपनी छाती पीटने लगीं, अपने मुख तथा बालों को नोचने लगीं और इतने जोर से चिल्लाकर रोने लगीं कि वह मीलों तक सुनाई पड़ता था। मृत पति को दफ़नाने के बाद वे फिर अस्पताल पहुँची और चिल्लाने लगी। बड़ी कठिनाई से वे वहाँ से हटायी जा सकीं।[1])

इटली

दक्षिण इटली के निवासी जो ग्रीक भाषा बोलते हैं शोक-गीतों के लिये एक विशेष छन्द का प्रयोग करते हैं। वहाँ मृत्यु के अवसर पर रोने वाली सार्वजनिक स्त्री (Public wailer) होती है जो किराया देकर इस कार्य के लिए बुलायी जाती है।

उस स्त्री की मृत्यु के उपरान्त उसके पद को उसकी पुत्री ग्रहण करती है। यह सार्वजनिक रोदनकर्त्री शोक-गीतों के निर्माण में तथा उनको गाने में बड़ी चतुर होती है। वह इस बात को जानती है कि यह दुःख मेरा नहीं बल्कि पराया है परन्तु श्रोताओं के सामने वह दुःख की अधिष्ठात्री देवी मालूम होती है।[2]

---

१. वि स्टडी आफ फोक सांग्स, पृ० २८१

2. The office of the public wailer is transmitted from mother to daughter— — — — Unrivalled in the matter of her impregnation as in the manner of, their delivery, the hereditory dirge, singer no doubt, like a good actress, keenly realises at the moment the sorrow not her own, of which she undertakes the interpretation in return for a trifling gratuty, and to her hearers she appears as the genius or highpriestess of woe.

"वि स्टडी आफ फोक सांग्स' पृ० २८८

परन्तु कुछ ऐसे भी शोक-गीत मिलते हैं जिनमे वास्तव में प्रेम तथा करुणा का समुद्र उमड़ा पड़ता है। अपनी प्यारी पुत्री की मृत्यु पर किसी कृषक माता का यह कारुणिक प्रलाप सुनिये।[1]

—"Now they have buried thee, my little one,
Who will make thy little bed ?
Black Death will make it for me
For a very long night.
Who will arrange thy pillows,
So thou mayst sleep softly ?
Black Death will arrange them for me
With hard stones.
Who will awake thee, my daughter,
When day is up ?
Down here it is always sleep,
Always dark night.
This my daughter was fair
When I went (with her) to high mass,
The Columns shone
The way grow bright.

दक्षिण पैसिफिक द्वीप के निवासी मृत व्यक्ति के विषय मे कहते है कि वह 'समुद्र के ऊपर से जा रहा है' एक मृत्यु गीत में दो मृत बालकों की प्रेतात्मा की यात्रा का वर्णन किया गया है जिसे उनके दुःखी पिता ने सन् १७९६ ई० में बनाया था। पिता कहता है कि—

"Thy god pet child is a bad one;
For thy body is attenuated;
This wasting sickness must end thy days.
Thy form, once so plump, now has changed !
Ah ! that god, that bad god !
Inexpressibly bad, my child !"

---

१. दि स्टडी आफ फोक सांग्स पृ० २८९

सी० ई० गोमर ने नीलगिरी की पहाड़ियों में निवास करने वाली बड़ागा जाति के मृत्यु गीतों का उल्लेख किया है जिसमें प्रेतात्मा के सभी दुर्गुणों का वर्णन उपलब्ध होता है। इस अवसर पर एक विशेष प्रथा प्रचलित है। रोने वालों के बीच में एक हृष्ट पुष्ट भैंस का बच्चा लाया जाता है। प्रत्येक पंक्ति को गाकर वे उस बच्चे को पकड़ते हैं और कहते हैं कि 'यह पाप है।'

प्रधान दुःखिया व्यक्ति भैंस के बच्चे को अपने हाथ से छूता है। इस प्रकार प्रेतात्मा का सारा दोष संक्रमित हो जाता है। नीचे के गीत में प्रेत के भिन्न-भिन्न दोषों को इस प्रकार गिनाया गया है।[१]

He killed the crawling snake
(Chorus) It is a sin
The creeping ligard slew
It is a sin
Also the hawless frog,
It is a sin
Of brothers he told tales,
It is a sin
The landmark stone he moved
It is a sin
The strangers straying on the hills
He offered aid but guided wrong
It is a sin.
His sisters tender love he spurned;
And showed his teeth to her in rage,
It is a sin

इस प्रकार उसके दोषों का वर्णन कर वह अन्त में कहता है कि—

Oh ! let us never doubt;
That all his sins are gone
That Bassava forgives.

संसार के सभी सभ्य तथा असभ्य देशों में मृत्यु गीत की परम्परा उपलब्ध होती है, परन्तु धीरे-धीरे इनका ह्रास होता जा रहा है।

१ दि स्टडी आफ फोक सॉंग्स पृ० २९५

(ख) ऋतु सम्बन्धी गीत

ऋतु-सम्बन्धी गीतों में जन-मानस पूर्ण तरंगित दिखायी पड़ता है। विभिन्न ऋतुओं में जन-मन के अनुरंजन के लिए गीतों के गाने की प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही है। भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न ऋतुओं में गीत गायन की परम्परा प्रचलित है। यहाँ क्रम से इन गीतों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) कजली

सावन के मन-भावन महीने में उत्तर प्रदेश में कजली गाने की प्रथा है। इस मास में प्रकृति सर्वत्र हरी दिखायी पड़ती है। भक्त कवि सूरदास जी ने अपनी बन्द आँखों द्वारा इस छटा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

जँह देखौ तँह श्याममयी है।
श्याम कुंज, वन, यमुना श्यामा,
श्याम श्याम घन घटा छई है।

वर्षा ऋतु में आकाश में काले काले बादल दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं काले बादलों से आच्छादित आकाश के नीचे खुले मैदान में कजली गाई जाती है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि इन्हीं काले बादलों के काल में गाये जाने के कारण इन गीतों का नाम 'कजली' पड़ा। भारतेन्दु के मतानुसार इस नामकरण के दो अन्य कारण भी है।[1]

(१) दादू राय के राज्य में 'कजली' नामक वन था। अतः उसके नाम पर इसका नाम कजली पड़ गया।

(२) सावन-भादों की शुक्लपक्ष की तीज—जिस दिन कजली के गीत विशेष रूप से गाये जाते हैं—का नाम ही कजली तीज है। इस कारण भी इसकी व्युत्पत्ति मानी जाती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा उल्लिखित दादू राय की कहानी में सत्य का अंश कितना है यह कहना कठिन है। परन्तु कजली तीज के दिन गाये जाने के कारण इसका नाम 'कजली' पड़ गया हो इसकी संभावना अधिक है।

सावन के महीने में, प्रत्येक गाँव में—बाग या किसी तालाब के किनारे—झूले लगाये जाते हैं जिनमें गाँव की स्त्रियाँ और पुरुष झूला झूलते हैं। इन झूलों को लगाने के लिए बड़ी तैयारी की जाती है। सुन्दर काठ के चौकोर खण्ड को रङ्गीन रस्सी से बाँधकर किसी पेड़ की शाखा से उसे लटका देते है। इसी सुसज्जित झूले पर बैठकर नर-नारी झूलने का आनन्द लेते हैं। एक या दो स्त्रियाँ झूले पर

---

१. डा० ग्रियर्सन : ज० ए० सो० ब०, भाग ५३, खण्ड १ (१८८४) पृ० २३७

बैठी रहती हैं और कोई दो पुरुष उस झूले पर दोनों ओर खड़े होकर उसे झटका देकर जोर से हिलाते हैं जिसे 'पेग बढ़ना' कहते हैं। इस प्रकार सावन में झूले का दृश्य बड़ा ही सुहावना होता है। यों तो इस प्रदेश में सभी जगह कजली गायी जाती है, परन्तु मिर्जापुर की कजली बड़ी प्रसिद्ध है जैसा कि निम्नांकित उक्ति से पता चलता है।

लीला राम नगर की भारी,
कजली मिर्जापुर सरदार।

काशी तथा मिर्जापुर में कजली गाने के दंगल भी हुआ करते हैं जहाँ गवैयों की दो पार्टियाँ रात भर कजली गाने की कला का प्रदर्शन करती हैं। इनमें दंगल जीतने वालों को पुरस्कार भी दिया जाता है। दोनों दलों के गवैये, बड़ी अदा से कजली गा कर सुनाते हैं जो प्रायः स्वरचित और सामयिक होती है।

मिथिला में प्रचलित कजली से मिलता-जुलता हुआ गीत 'मलार' है। "मलार को पावस ऋतु में स्त्री-पुरुष दोनों गाते हैं। लेकिन दोनों के गाने के ढंग अलाहिदा-अलाहिदा हैं। औरतें इन्हें गाने के वक्त किसी साज-बाज की मदद नहीं लेंती। हिंडोले पर बैठकर वे सम्मिलित स्वरों में गाती हैं। पुरुष साज-बाज की मदद से गाते हैं।[1]"

राजस्थान में तीज के अवसर पर हिड़ोले के जो गीत गाये जाते हैं वे इसी कोटि में आते हैं।[2] एक राजस्थानी गीत में कोई पुत्री अपनी माता से कहती है कि "ए माँ! चम्पा के बाग में झूला डाल दो, नवेली तीज आ गई है। मेरे सहेलियों के घर में हिंड़ोले हैं परन्तु मेरे नही है। मैं आज झूला झूलने गई तो मुझको किसी ने नही झुलाया।"[3]

वर्ण्य विषय

कजली का वर्ण्य विषय प्रेम है। ये गीत शृङ्गाररस से ओत-प्रोत हैं। यद्यपि इनमें शृङ्गाररस के उभय पक्ष की झाँकी हमें देखने को मिलती है परन्तु संभोग शृङ्गार की ही प्रधानता है जो स्वाभाविक ही है। एक भोजपुरी गीत में राधा और कृष्ण के झूला झूलने का वर्णन पाया जाता है।[4] कहीं-कहीं इन गीतों

---

१ राकेश : मै० लो० गी० पृ० २९३
२ पारीक : रा० लो० गी० भाग १ पूर्वार्द्ध [पृ० ८४-८५]
३ वही : पृ० ८६
४ डा० उपाध्याय, भो० लो० गी० भाग २, पृ० १७६

में पति-पत्नी की प्रेम-लीला का बड़ा ही सुन्दर उल्लेख हुआ। कहीं झूला झूलने के लिए उत्सुक भावज अपनी ननद से पूछती है कि "ए ननद ! बादल उमड़े चले आ रहे हैं, मैं सावन में कजली खेलने कैसे जाऊं ? इस पर उसकी ननद कजली खेलने के लिए जाने को उसे मना करती हुई कहती है कि आजकल मस्ती का दिन है, कोई मनचला तुम्हें रास्ते में पकड़ लेगा अतः मत जावो।[१]" कोई मैथिली प्रोषित-पतिका स्त्री कहती है कि "हे सखी ! चारों ओर सघन काली घटाएँ उमड़ आई। बूँदे छहर-छहर कर पलंग पर गिर रही हैं। मेरी सुन्दर कुसुम रंग की चूनरी भींग रही है। प्रियतम के बिना आज मेरा संसार सूना है, कीचड़ से राह-बाट पिच्छिल हो गये हैं और मेरे प्रियतम प्रवासी हैं।[२]" इस प्रकार इन गीतों में संयोग और वियोग दोनों पक्षों की मनोरम विवृत्ति हुई है।

(२) होली

फाल्गुन मास में होली के सार्वजनिक उत्सव के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हे 'होली' कहते है। फाल्गुन में गाये जाने के कारण, भोजपुरी प्रदेश में इन्हें 'फगुआ' भी कहते है। ये फाग के नाम से भी प्रसिद्ध है। माघ मास की शुक्ल पञ्चमी वसन्त पञ्चमी के नाम से अभिहित की जाती है। इसी दिन से वसन्त का आगमन माना जाता है। आज से ही गाँवों मे फगुआ का गाना प्रारम्भ हो जाता है जिसे भोजपुरी में 'ताल ठोकना' कहते है। गाँव के लोगों की मण्डली आज से ही किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वार पर एकत्र होकर फगुआ गाना प्रारम्भ करती है। परन्तु होली गाने का चरम उत्कर्ष फागुन की पूर्णिमा को दिखायी पड़ता है। जिस दिन होली मनायी जाती है उसकी पूर्व रात्रि को होलिका जलायी जाती है जिसे भोजपुरी में 'संवत् जलाना' कहते है। संवत् जलाने के लिए गाँव का कोई चौराहा अथवा मुख्य स्थान चुन लिया जाता है। वहाँ पर गाँव के लड़के अनेक दिनों से लकड़ी, उपला, पत्ती, सूखी घास ला-लाकर एकत्र करते रहते हैं। शुभ मुहूर्त में इस में आग लगा दी जाती है जो थोड़ी ही देर में जल कर राख की राशि बन जाती है। होली जलाने की प्रथा विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न रूप से प्रचलित है।

होली के अवसर पर गालियों के गाने की बड़ी प्रथा है जिन्हें 'कबीर' कहते हैं। जैसे :—

अररर अररर भइया, सुनलेउ मोर कबीर।

---

१ वही, पृ० १७४

२ राकेश : मै० लो० गी०, पृ० २९४

इन गालियों को कबीर क्यों कहते हैं यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि कबीर की अटपटी निर्गुण बानी तत्कालीन समाज के लिए लोक-प्रिय नहीं हो सकी। अतः कबीर के प्रति समाज की अप्रसन्नता या क्षोभ दिखलाने के लिये ही लोगों ने इन गालियों को 'कबीर' का नाम दे दिया हो।[1]

मैथिली में इन गीतों को 'फाग' कहते हैं। "होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की गति, उनकी भाषा का बन्ध और स्वरों का सन्धान अत्यन्त मीठा होता है। गवैये एक-एक टेक की दर्जनों बार आवृत्ति करते हैं। प्रेम की रंगीन पुलकारियाँ और वैभववती वन-वीथियों के नैसर्गिक चित्रण होली की संगीत महफिलों में ताने बाने का काम देते हैं।"[2]

वर्ण्य विषय

होली हमारा आनन्द और मस्ती का त्योहार है। अतः ऐसे मंगलमय अवसर पर गेय गीतों में उल्लाह और हर्ष का वर्णन स्वाभाविक है। इन गीतों में कहीं राधा और कृष्ण होली खेलते हुए दिखलायी पड़ते हैं तो कहीं शिवजी भी होली का आनन्द ले रहे हैं। कही राम और सीता सोने की पिचकारी में रङ्ग भर एक दूसरे पर डाल रहे हैं[3] तो कही पवन-सुत हनुमान लंका में 'होरी मचाते' हुए पाये जाये जाते है। फगुआ के एक गीत में राम के बालरूप का मनोरम वर्णन हुआ है।[4] राजस्थानी लोक-गीतों में भी होली के गीतों में आनन्द और मस्ती की वही धारा प्रवाहित होती है जो हमें भोजपुरी गीतों में उपलब्ध होती है। उत्तर प्रदेश में होली ढोलक और झाल को बजाकर गायी जाती है। परन्तु राजस्थान में इस गीत के साथ चंग —एक प्रकार का बाजा—अथवा डफ बजाने की प्रथा है जो बहुत पुरानी है। राजस्थान में होली के अवसर पर लड़कियाँ और स्त्रियाँ गहनों और वस्त्रों से सज धज कर, मिल-जुल कर गाती-बजाती, खेलती-कूदती और नाचती हैं। इस समय एक विशेष प्रकार का नृत्य होता है जिसे 'लूर' कहते हैं जिसमें स्त्रियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़कर गोलाकार रूप में नाचती हैं।[5] इसको 'लूवर' या 'घूमर' भी कहते हैं।

---

१ होली के विषय वर्णन के लिए देखिए—
डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन

२ राकेश : मै० लो० गी० २७८

३ डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग २, पृ० २१६

४ वही, पृ० २२४

५ पारीक : रा० लो० गी० भाग १, पृ० ६६

इन गीतों में गम्भीर और सूक्ष्म भावों अथवा कथानकों के स्थान पर खुला और सादा सार्वजनिक आह्लाद का व्यापक भाव रहता है। कल्पना के उड़ान की यहाँ आवश्यकता नहीं होती। होली आने पर लड़की अपनी माँ से कहती है कि मुझे पिता जी से कहकर चुनरी मँगवा दे। मुझे चाचा जी से कहकर चूड़ा मँगवा दे। मैं फाग खेलने जाऊँगी।[१]

मैथिली फाग के गीतों में संभोग शृङ्गार का चित्रण सुन्दर रीति से किया गया है।[२] कोई मैथिली रमणी अपनी सखी से कहती है कि बंशीवाला मोहन पनघट पर खड़ा है। अरी सखी ! जल भरने यमुना किनारे मैं कैसे जाऊँ ?[३] कृष्ण जी का गोपियों के साथ होली खेलने और रंग भर कर अपनी पिचकारी का उन्हें निशाना बनाने का उल्लेख अनेक गीतों में हुआ है।[४]

इस प्रकार होली के ये गीत आनन्द और मस्ती के गीत हैं। होली के त्योहार में जो सार्वजनिक उछाह और उत्सव दिखायी पड़ता है उनकी व्यंजना इन गीतों में हुई है। ये आनन्द के छूटते हुए फौवारे हैं जो जनता को रस-सिक्त कर देते हैं।

(३) चैता

चैत्र के महीने में गाये जाने के कारण ही इस गीत का नाम 'चैता' पड़ गया है। भोजपुरी में इसे 'घाँटो' भी कहते हैं। लोकगीतों के जितने भी प्रकार हैं उनमें मधुरता, सरलता एवं कोमलता में 'चैता' अपना सानी नहीं रखता। चैता दो प्रकार का होता है (१) झलकुटिया (२) साधारण। झलकुटिया चैता उसे कहते हैं जो झाल (एक प्रकार का बाजा जो दोनों हाथ से बजाया जाता है) कूटकर —बजाकर—समूह में गाया जाता है। साधारण चैता है वह जिसे कोई व्यक्ति विशेष गाता है। जब चैता सामूहिक रूप से गाया जाता है तब गाने वाले दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। पहिला दल प्रथम पंक्ति कहता है तो दूसरा दल उसके टेक पद को उच्च स्वर से गाता है। इस प्रकार गाने का क्रम चलता रहता है।

लोकगीतों में प्रायः उनके रचयिताओं का नाम नहीं पाया जाता। परन्तु

---

१. पारीक : रा० लो० गी०, भाग १, पृ० १०१
२. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० २७६
३ वही, पृ० २८१
४. वही, पृ० २८२

भोजपुरी चैता के गीतों के लेखक बुलाकीदास का नाम उपलब्ध होता है;[1] जैसे—

"दास बुलाकी चइत घाँटों गावे हो रामा,
गाई गाई विरहिन समुझावे हो रामा।"

परन्तु ऐसे चैता के गीतों की संख्या अधिक नहीं है।

वर्ण्य विषय

चैता प्रेम के गीत हैं। इनमें सम्भोग शृङ्गार की कहानी रागों में लिखी गई है। इनमें कहीं आलसी पति को सूर्योदय के बाद तक सोने से जगाने का वर्णन है तो कहीं पति और पत्नी की प्रणय-कलह की झाँकी देखने को मिलती है। कहीं ननद और भावज के पनघट पर पानी भरते समय किसी दुश्चरित्र पुरुष द्वारा छेड़खानी का उल्लेख है तो कहीं सिर पर मटका रख कर दही बेचने वाली ग्वालिनों से कृष्ण के द्वारा गोरस माँगने का वर्णन है।[2]

मैथिली में चैता को 'चैतावर' कहते हैं। "इनमें बसन्त की मस्ती और रंगीन भावनाओं का अनोखा सौंदर्य अंकित किया गया है। इनके छोटे छोटे परिचित शब्दों मे गजब का माधुर्य भरा है। साथ ही इनके भावों की छलकती हुई रसमयता मंत्र मुग्ध बना देती हैं।"[3] कोई विरहिणी मैथिली महिला कह रही है कि जब चैत (बसन्त) बीत जायेगा तब मेरा मूर्ख पति घर आकर क्या करेगा? आम्र वृक्ष की बौर में 'टिकोरे' (छोटा कच्चा आम) निकल आये, टहनी टहनी में रस का संचार हो गया परन्तु प्रिय नहीं आया।

"चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ।
आरे अमुआ मोजर मेल,
फरि गेल टिकोरवा,
डारे-पाते भेल मतवलवा हो रामा
चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ।"

(४) बारहमासा

पावस ऋतु में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'बारहमासा' कहते हैं। इन गीतों

१ उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २
२ डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १
३ राकेश : मै० लो० गी०, पृ० २८५

में विरहणी की वेदना की अभिव्यक्ति पायी जाती है। जीविकोपार्जन के लिये पति परदेस चला गया है। बरसों से लौटकर नहीं आया है। वर्षा का दिन है। छप्पर चू रहा है। परन्तु कोई उसको छाने वाला नहीं है। ऐसी दशा में विरहिणी वेदना पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है और उसकी मनोव्यथा बारहमासे के रूप में प्रकट होती है। इन गीतों में पति के वियोग के कारण बारह महीनों—मासों—में जो जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनका बड़ा ही मार्मिक वर्णन होता है। अतः इन्हें 'बारहमासा' कहते हैं। जिन गीतों में बारहों महीने का विरहजन्य वर्णन होता है उन्हें 'बारह-मासा', जिनमें छह मासों का वर्णन होता है उन्हें 'छह मासा' और जिनमें केवल चार महीने—आसाढ़, सावन, भाद्रपद और आश्विन—का वर्णन प्राप्त होता है उन्हें 'चौमासा' कहते हैं। परन्तु इनमें प्रथम ही सब से लोकप्रिय है।

परम्परा

हिन्दी साहित्य में बारहमासा लिखने की परम्परा बड़ी प्राचीन है। सुप्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि जायसी ने नागमती के विरह-वर्णन में बारहमासा का प्रयोग किया है।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि जायसी से बहुत पहिले ही लोक-गीतों के रूप में बारहमासे प्रचलित थे। जायसी ने उसी परम्परा का अनुसरण अपने काव्य में किया है। जायसी ने नागमती का वियोग वर्णन आषाढ़ मास से प्रारम्भ किया है और ज्येष्ठ मास में इसकी समाप्ति की है। प्रत्येक महीने में होने वाले विरह-जन्य प्रकृति का वर्णन इस कवि ने तल्लीनता के साथ किया है। जायसी के पश्चात् अनेक सन्त कवियों—विशेषकर भोजपुरी सन्त कवियों—ने बारहमासा लिखा है जिसमें विरहिणी के दुःखों की मार्मिक व्यंजना उपलब्ध होती है।

वर्ण्य विषय

बारहमासा प्रायः वर्षा ऋतु में ही गाया जाता है। ग्रामीण जनता इन गीतों को सुन कर रस-मग्न हो जाती है। 'बारहमासा' में विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन प्रधान रूप से पाया जाता है। कहीं तो इन गीतों में परदेस जाने के लिए प्रस्तुत पति को रोकने के लिये स्त्री की प्रार्थना सुनाई पड़ती है तो कहीं कोई प्रोषितपतिका अपनी सखी के विषम वियोग-जन्य दुःखों का वर्णन करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

मैथिली लोकगीतों में बारहमासा का प्रधान स्थान है। इनका मिथिला में बहुत प्रचार है। मैथिली लोकगीतों के उत्साही संग्रहकर्ता श्री राकेश जी लिखते हैं कि "बारहमासा" मैथिल लोक-साहित्य की अनुभूत्यात्मक व्यंजना है।

---

१. पद्मावत—नागमती-वियोग खण्ड

इसके नैसर्गिक सौंदर्य के सामने कीट्स की हल्के पैर, गहरे नीलरङ्ग की बनफ़शा-सी आँखें, काढ़े हुए बाल, मुलायम पतले हाथ, श्वेतकंठ और मलाईदार वक्ष प्रदेश वाली भी फीकी पड़ जाती है। 'बारहमासा' की भाव-धारा पुरानी शराब सी चोखी और चित्र देवदारु सा स्वच्छ है। पद में शृङ्गार की रोचक सरसता है।[१]" लेखक की उपर्युक्त उक्ति मैथिली बारहमासों के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य घटती है।

बँगला में बारहमासा

बँगला में इन गीतों को 'बारमाशी' कहते हैं जो बारहमासा का ही रूपांतर है। बंगला साहित्य में पल्लीगान में और विजयगुप्त के 'मनसा मङ्गल', में बेहुला की 'बारमाशी' का वर्णन पाया जाता है। भारतचन्द्र के 'अन्नदा मङ्गल' में भी बारहमासा उपलब्ध होता है। भोजपुरी और मैथिली बारहमासा की भाँति बंगला 'बारमाशी' में भी स्त्री की विरहजन्य वेदना का चित्रण हुआ है। 'बारमाशी' की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक मास में होने वाले व्रतों का भी विवेचन है। निम्नांकित बारमाशी में किसी वियोगिनी की विरह-ज्वाला की मार्मिक व्यंजना हुई है।[२]

यौवन ज्वाला बडई ज्वाला शहिते ना पारि
यौवन ज्वाला तेज्य करे, गलाय दिव दडि
दुःख यौवन प्रानेर बैरी
झाड़ेर बांश काट रे साहु वान्दिओ बाँगेला।
तुम सादु वाणिज्य गेले के खावे कमेला॥
दुःख यौवन प्राणेर बैरी
हाटे जाओ बाजारे जाओ गाछे पाका बेल।
तुम सादु वाणिज्य गेले, राखाले मारबे टेल॥
दुःख यौवन प्रानेर बैरी

(ग) व्रत-सम्बन्धी गीत

हमारा जीवन धर्ममय है। प्रत्येक मास में कोई न कोई पर्व या त्योहार आकर हमारी धार्मिक चेतना को जागृत करता रहता है। इन अवसरों पर स्त्रियाँ गीत गाती हैं। विभिन्न मासों में बहुरा, तीज, पींड़िया और गोधन का व्रत बड़े

१. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० ३६०
२. मुहम्मद मन्सूरउद्दीन : हारामणि

उत्साह से स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। इन सभी पर्वों पर गीत गाने की प्रथा है। मासों के क्रम से इन पर्वो का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) नाग पंचमी के गीत

श्रावण शुक्ला पञ्चमी को 'नाग पञ्चमी' को कहते हैं। गाँवों में यह 'नागपचैया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। चूंकि इस दिन नाग अर्थात् सर्प की पूजा की जाती है अतः इसका उपर्युक्त नाम यथार्थ ही है। पञ्चमी के प्रातःकाल घर की लड़कियाँ मकान की बाहरी भित्ति पर चारों ओर से गोबर की रेखा खींचती हैं तथा घर के प्रधान द्वार पर सर्प के दो चित्रों को गोबर से अंकित करती हैं। फिर कटोरे में दूध और धान की खील—लावा—भरकर एकांत स्थान में रख दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि इस दिन नाग देवता आते हैं और दूध पीते हैं। जो इस दिन नाग की पूजा करते हैं उन्हें फिर सर्प-दंश का भय नहीं रहता,

नागपूजा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। आज भी बंगाल में सर्पों की अधिष्ठातृ देवी 'मनसा' की पूजा का प्रचुर प्रचार है तथा इसकी उपासना और स्तुति में संकड़ों ग्रंथों की रचना हुई है।

(२) बहुरा

(बहुरा का व्रत भाद्रकृष्ण चतुर्थी को किया जाता है) इसे 'बहुला' भी कहते हैं। इस व्रत की कथा की नायिका बहुला है। यही इसके नामकरण का कारण है (स्त्रियाँ इस व्रत को पुत्र की प्राप्ति के लिये करती हैं। अतः बहुरा के गीतों में माता का पुत्र के प्रति अकृत्रिम स्नेह और सत्य प्रतिज्ञा की महिमा का उल्लेख हुआ है। परन्तु अधिकांश गीतों में सास और बहू का शाश्वतिक विरोध और दाम्पत्य-प्रेम का वर्णन ही विशेष रूप से पाया जाता है।

(३) गोधन

(कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् को 'गोधन' का व्रत मनाया जाता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में इस दिन गोबर की मनुष्य की प्रतिमा बनायी जाती है और स्त्रियाँ उसे मूसल से कूटती हैं। इन प्रक्रिया को 'गोधन कूटना' कहते हैं। इस व्रत का विधि-विधान बड़ा विस्तृत तथा मनोरंजक है।[1])

गोधन शब्द गोवर्धन की पूजा का अपभ्रंश रूप है। प्राचीन काल में

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० सा० अ०

गोवर्धन की पूजा का उल्लेख पाया जाता है। यही गोवर्धन पूजा 'गोधन' के रूप आज भी वर्तमान है। गोबर की बनी हुई मनुष्य की प्रतिमा वास्तव में इन्द्र की प्रतिकृति है। भगवान कृष्ण ने इन्द्र के गर्व को चूर्ण किया था। अतः 'गोधन कूटने' की यह प्रथा इन्द्र के मद-चूर्ण करने का प्रतीक स्वरूप है। इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहिन में प्रेम-भावना की वृद्धि है। इसी का वर्णन इन गीतों में किया गया है।

(४) पिड़िया

पिड़िया का व्रत कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् से प्रारम्भ होकर अगहन शुक्ल प्रतिपद्—पूरे एक मास—तक रहता है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् के दिन जो गोधन की गोबर की मूर्ति बनाकर पूजा की जाती है उसी गोबर का थोड़ा सा अंश लेकर कुँवारी लड़कियाँ पिड़ियाँ लगाती है। घर की दीवाल पर गोबर की छोटी-छोटी सैकड़ों मनुष्य की आकृतियाँ बनायी जाती हैं। इसके साथ ही उस पर आटा तथा रंग से चित्र-कर्म भी किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को 'पिड़िया लगाना' कहते हैं। पिड़िया शब्द 'पिण्ड' से बना है जिसमें लघु अर्थ में 'इया' प्रत्यय लगाकर पिड़िया को निष्पत्ति की गई है। अतः पिड़िया का अर्थ हुआ गोबर का बना हुआ छोटा पिण्ड या गोला।[1] इन गीतों में भी भाई-बहन के स्वाभाविक प्रेम का वर्णन उपलब्ध होता है जो दिव्य और अलौकिक है।

(५) छठी माता के गीत

छठी माता का व्रत कार्तिक शुक्ल षष्ठी को किया जाता है। इस व्रत को केवल स्त्रियाँ ही करती हैं परन्तु मिथिला में इसे स्त्री और पुरुष दोनों करते हैं। इसे 'षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। छठी इसी षष्ठी का अपभ्रंश रूप है। इसे 'डाला छठ' के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि इस दिन पूजा की समस्त सामग्री को एक डाल—बाँस की बनी हुई बड़ी छबड़ी—में रखकर नदी के किनारे ले जाते है और इस डाल की सामग्री को सूर्य देवता के लिए अर्पित करते हैं।

इस व्रत का प्रधान उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति और उसका दीर्घायु होना है। वास्तव में छठी का व्रत भगवान् सूर्य का व्रत है, क्योंकि इन्हीं की पूजा के पश्चात् स्त्रियाँ अन्न ग्रहण करती हैं। छठी माता के इन गीतों में वन्ध्या स्त्री की

---

१. पिड़िया प्रथा के विशेष विवरण के लिए देखिये—
डा० उदयनारायण तिवारी : मैन इन इण्डिया

पुत्र-प्राप्ति के लिए प्रार्थना बड़ी मर्मस्पर्शिनी है। सूर्य की पूजा के लिए व्याकुल वन्ध्या भगवान् आदित्य से शीघ्र उदय लेने के लिए प्रार्थना करती है। पुत्रहीन स्त्री को जो यातना सहनी पड़ती है उसका उल्लेख भी इन गीतों में हुआ है।

मिथिला में ये 'छठ के गीत' के रूप में प्रसिद्ध हैं। धार्मिक मनोभाव, धर्म के नाम पर प्रचलित विश्वास, पारिवारिक विचार और मान्यतायें, घरेलू निष्ठा और आत्मसंयम—ये छठ के गीतों के प्रिय विषय है।[1] भोजपुरी और मैथिली दोनों गीतों में पुत्र-प्राप्ति की कामना समान रूप से पायी जाती है।

[घ] जाति सम्बन्धी गीत

कुछ लोकगीतों को विशिष्ट जाति के लोग ही गाते हैं। ऐसे गीतों में विरहा का विशिष्ट स्थान है। यह अहीर लोगों का जातीय गान है। उमंग से भरा हुआ नौजवान अहीर ललकारते हुए जब विरहा गाता है तब श्रोताओं के हृदय में एक विचित्र उत्साह पैदा हो जाता है। अहीरों में विवाह के अवसर पर विरहा गाने की प्रतियोगिता होती है और जो अधिक संख्या में विरहा गा सकता है उसी की जीत मानी जाती है।

१. अहीरों के गीत

विरहा की उत्पत्ति 'विरह' शब्द' से हुई है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारंभ में इन गीतों का वर्ण्य विषय विरह रहा होगा परन्तु आजकल इन गीतों का प्रतिपाद्य विषय कोई भी वस्तु हो सकती है।

डा० ग्रियर्सन के अनुसार इन विरहों का विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं है। परन्तु जनता के मनोभावों और आकांक्षाओं के प्रतीक होने के कारण इनका महत्व अधिक है। जिस प्रकार हिन्दी में बरवै और दोहा छन्द अल्पकाय होने पर भी अपनी चुस्त बन्दिश और सरस भावधारा से श्रोताओं को रस से आप्लावित कर देते हैं उसी प्रकार विरहा लोक-गीतों में सम्भवतः सबसे छोटा छन्द है, परन्तु अपनी सुगठित पदावली और चुभती शैली के कारण सहृदयों के हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहता।

ये विरहे बिहारी के दोहों के समान हृदय पर सीधे चोट करते हैं। विरहा दो प्रकार का होता है (१) छोटा (२) बड़ा। छोटा विरहा 'चरकड़िया' के नाम से प्रसिद्ध है अर्थात् जिसमें केवल चार चरण या पद हो उसे 'चारकड़िया' विरहा

---

१. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० ३१६

कहते हैं। यही अधिक लोकप्रिय है। लम्बा विरहा गाथा के रूप में होता है जिसमें रामायण या महाभारत की कथा गायी गई रहती है।

२. दुःसाधों के गीत

दुःसाध (एक अस्पृश्य या परिगणित जाति) लोग 'पचरा' नामक गीत गाते हैं। दुःसाधों में जब कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है अथवा भूत-प्रेत की बाधा से पीड़ित होता है तब उस जाति का बूढ़ा (वृद्ध वशिष्ठ) बुलाया जाता है और रोगी को नीरोग करने की उससे प्रार्थना की जाती है। वह अपनी देवी का आवाहन करके 'पचरा' गाना प्रारम्भ करता है। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहता है और अन्त में भक्त की प्रार्थना सुन कर देवी रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करती हैं।

(पचरा के गीतों में देवी का अपने वाहन पर चढ़कर आना, उनकी विधिवत् पूजा करना तथा रोगी का रोग निवारण करने का वर्णन पाया जाता है।)

गड़ेरिया लोगों के भी निजी गीत होते हैं। इनके एक मुख्य गीत का नाम 'सिउरिया' और दूसरे का 'पड़ोकीमार' है।[1] ये लोग किसानों के खेतों में अपनी भेड़ों को 'हिरा' कर मस्ती के साथ गीत गाते रहते हैं।

३. गोड़ों के गीत

(उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में गोंड नामक जाति के लोग निवास करते हैं जिनका काम प्रधानतया सेवा-वृत्ति है। ये लोग विवाह आदि मांगलिक अवसर पर एक विशेष प्रकार का नृत्य करते हैं जिसे 'गोड़ँऊ नाच' कहते है)। इस समय 'हुड़का' (एक विशेष प्रकार का बाजा) नामक बाजा बजाते हुए ये लोग जो अभिनय करते हैं वह 'हर बोलाई' के नाम से प्रसिद्ध है। नृत्य के साथ ये गीत भी गाते जाते हैं जिनमें कहीं-कहीं अश्लीलता का भी पुट पाया जाता है।

४. तेलियों के गीत

तेलियों के गीतों में—जिन्हें कोल्हू के गीत भी कहते हैं—शृङ्गाररस की मात्रा प्रचुर परिमाण में पायी जाती है। इन गीतों में तैलिक जीवन का सुन्दर चित्रण हुआ है।[2] धोबी लोग गोंड़ो की भाँति हुड़का बजाते हुए सामूहिक रूप में गीत गाते हैं। इन गीतों में इनके पेशे का उल्लेख होता है। चमारों के जातीय

---

१. त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा०, पृ० १९८—९९

२. त्रिपाठी : ग्रा० गी०, पृ० ४५७

गीत बड़े मनोरंजक होते हैं। विवाह के अवसर पर ये अपने 'यजमानों' के यहाँ जाकर नृत्य का प्रदर्शन करते है। इनका प्रधान बाजा 'डफरा' और 'पिपिहरी' है। इनके गीतों मे सामाजिक बुराइयों के सम्बन्ध में चुभता हुआ व्यङ्ग पाया जाता है। इस प्रकार इन विभिन्न जातियों में विशेष प्रकार के गीत प्रचलित हैं जिन्हें प्रधानतया ये ही लोग गाते हैं।

(ङ) श्रम गीत (Action Songs)

श्रम गीत वे गाने हैं जो किसी काम को करते समय गाये जाते हैं। ऐसा देखा जाता है कि मजदूर लोग अपनी शारीरिक थकावट को दूर करने के लिए काम करते समय गाना भी गाते जाते हैं। इससे काम करने में मन लगा रहता है और परिश्रम का पता नहीं चलता। इस प्रकार के गीतों मे जँतसार, रोपनी, सोहनी आदि के गीत प्रधान हैं।

(१) जाँत के गीत

चक्की पीसते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'जँतसार' या 'जाँत के गीत कहा जाता है। यह शब्द 'यन्त्र-शाला' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है वह' शाला या घर जिसमें आटा पीसने का यन्त्र रखा गया हो।

जाँत के गीतो मे करुण रस का अपार पारावार तरंगित दिखायी पड़ता है। इन गीतों मे कही तो दुःखिनी विधवा का करुण क्रंदन सुनने को मिलता है तो कहीं वन्ध्या स्त्री की मनोवेदना अभिव्यंजित होती है। कही विरहिणी स्त्री की व्याकुलता का वर्णन है तो कहीं सास के द्वारा बधू की नारकीय यंत्रणा का चित्रण। करुण रस के जितने भी मार्मिक प्रसंग हो सकते हैं प्रायः इन सभी की अवतारणा इन गीतों में हुई है। पुत्रहीन विधवा की मनोव्यथा का कारुणिक वर्णन अनेक गीतों में उपलब्ध होता है जो पाषाण हृदय को भी पिघला देता है।[1]

(२) रोपनी के गीत

धान को खेत में रोपते समय जो गीत गाये जाये जाते हैं वे रोपनी के नाम से प्रसिद्ध हैं। धान रोपने का काम प्रायः मुसहर, चमार आदि की स्त्रियाँ किया करती हैं। गार्हस्थ्य जीवन का चित्रण इन गीतों में विशेष रूप से पाया जाता है। कोई स्त्री ससुराल के कष्टों का निवेदन करती हुई अपने पति से कहती है कि जब से मैं यहाँ आयी तब से काम करते करते मेरे शरीर का चाम सूख गया और सुख

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग २, पृ० ११५-१६

सपना हो गया।[1] स्त्रियों का अटूट एवं विशुद्ध पति प्रेम तो बहुत देखने को मिलता है परन्तु पति का स्त्री-प्रेम प्रायः दुर्लभ पदार्थ है। परन्तु रोपनी के गीतों में इस विशुद्ध स्त्री-प्रेम की झाँकी भी हमें देखने को मिलती है।[2]

(३) सोहनी के गीत

खेत में व्यर्थ की घास और पौधे जो पैदा हो जाते हैं उन्हें काटकर अलग कर देने को 'निराना' या 'सोहना' कहते हैं। इस कार्य को करते समय जो गीत गाये जाते हैं वे 'निरौनी' या 'सोहनी' कहलाते हैं। इन्हें 'निरवाही के गीत' भी कहते हैं। इन गीतों का भी वर्ण्य विषय वही है जो रोपनी के गीतों का है। कहीं बहू का सास द्वारा सताये जाने का विवरण पाया जाता है तो कहीं पति का अपनी पत्नी के आचरण पर सन्देह करके उसकी अग्नि-परीक्षा करने का उल्लेख उपलब्ध होता है।)

(च) देवी-देवताओं के गीत

देवी देवताओं के सम्बन्ध में अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। भोजपुरी प्रदेश में शीतला माता, गंगा जी, तुलसी जी के गीत प्रसिद्ध हैं। भजनों में भगवान् की महिमा का वर्णन किया गया है। शीतला माता के गीतों मे चेचक के रोग से पीड़ित बालक को आरोग्य प्रदान करने की प्रार्थना इन से की गई है। राजस्थान में विवाहादि मांगलिक अवसरों पर गृहस्थ स्त्रियाँ गणपति (गणेश) की स्तुति में गीत गाती है।[3] इन गीतों में गणपति को विनायक के नाम से स्मरण किया गया है। इसके अतिरिक्त हनुमान जी, भैरूँजी, जल देवता, सील, सती और पितराणी आदि के गीत प्रसिद्ध हैं।[4] इन गीतों में अपनी मनोवाच्छित कामना की पूर्ति के लिये भक्तों की विभिन्न देवताओं से प्रार्थना बड़ी मर्मस्पर्शी है। कोई राजस्थानी वन्ध्या स्त्री भैरव जी से बिनती करती हुई कहती है कि देवरानी-जेठानी ने मुझे ताना मारा है। उनके पालने में पुत्र झूल रहे हैं परन्तु कुल भर में मैं ही ऐसी अभागिन हूँ जिसे पुत्र नहीं है। अतएव हे देव! मेरे ऊपर दया करो।[5] इसी प्रकार इन गीतों में भक्तों की अभिलाषाओं का वर्णन पाया जाता है।

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग, पृ० ३०१
२. वही, पृ० २९५
३. पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० ३२
४. वही, भाग १
५. वही, पृ० ३५

(छ) विविध गीत

अनेक ऐसे भी गीत उपलब्ध होते हैं जिनका अन्तर्भाव उपर्युक्त वर्गीकरण में नहीं होता। इन गीतों में झूमर, अलचारी, पूरबी और निर्गुन आदि मुख्य हैं। पालने के गीतों को भी इसी कोटि में रखा जा सकता है। मांगलिक अवसरों पर समवेत स्वर से जिन गीतों को स्त्रियाँ झूम झूमकर गाती हैं उन्हें झूमर कहते हैं। ये गीत शृङ्गार रस से लबालब भरे होते हैं जिनमें दाम्पत्य प्रेम का वर्णन विशेष रूप से होता है। मैथिली झूमरों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। अलचारी शब्द लाचारी से निकला हुआ है जिसका अर्थ है विवशता। जब किसी स्त्री का पति उसका कहना नहीं मानता अथवा वह परदेश चला जाता है तो लाचारी अवस्था में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'अलचारी' कहते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में—विशेषकर बलिया, गाजीपुर—में तथा बिहार राज्य के छपरा जिले में एक विशेष प्रकार के राग (Tune) में जो गीत गाये जाते हैं वे पूर्वी के नाम से अभिहित किये जाते हैं। ये गीत बड़े मधुर, सरस और मनमोहक होते हैं। छपरा निवासी महेन्द्र मिश्र इन गीतों के रचयिता थे जिनका नाम इनमें पाया जाता है। निर्गुन के गीत भक्ति रस के गाने हैं जिनमें ईश्वर की स्तुति उपलब्ध होती है। कबीरदास जी का नाम निर्गुन गीतों के साथ सलग्न है परन्तु महात्मा कबीर के द्वारा इनके रचित होने की बात संदिग्ध है।

अध्याय ७

लोक-गाथाओं की मीमांसा

लोक-गाथा का नामकरण

भारतीय भाषाओं में जो लोकगीत पाये जाते हैं उनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकार के वे गीत हैं जो आकार में छोटे हैं, जिनमें कथानक का अभाव है और जिनकी प्रधान विशेषता गेयता है। दूसरे प्रकार के वे गीत है जो आकार में बड़े है, जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गेयता भी है। काव्य की भाषा में इन्हें मुक्तक और प्रबन्ध काव्य कह सकते हैं। संस्कार तथा ऋतु सम्बन्धी समस्त गीत प्रथम कोटि में आते हैं और लोरकी, विजयमल, नयकवा बनजारा, भरथरी, गोपीचंद, सोरठी, हीर राँझा, ढोला—मारू, राजा रसालू आदि के गीत द्वितीय श्रेणी में रखे जा सकते हैं। डा० उपाध्याय ने प्रथम प्रकार के गीतों को लोकगीत और द्वितीय प्रकार के गीतों को लोक-गाथा का नाम दिया है। इन दोनों के विषयगत तथा स्वरूपगत भेद का निरूपण आगे किया जायगा।

बैलेड

अंगरेजी में लोक-गीत तथा लोक-गाथाओं के लिए 'बैलेड' शब्द समान रूप से व्यवहृत होता है। बैलेड (ballad) की व्युत्पत्ति लैटिन के बैलारे (ballare) शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ 'नाचना' है। रावर्ट ग्रेम्स ने लिखा है कि इसका सम्बन्ध 'बैलेट' (ballet) शब्द से है। इसका मूल अर्थ उस गीत से था जो नृत्य के समय साथ-साथ गाया जाता था। परन्तु बाद में इसका प्रयोग किसी भी गीत के लिए—जिसे जनता का एक दल सामूहिक रूप से गाता हो—किया जाने लगा।[1] इङ्गलैण्ड के गवैयों ने जब इसका प्रयोग प्रारम्भ किया तब नृत्य के साथ इसके साहचर्य का भाव तो नष्ट हो गया, परंतु लययुक्त सामूहिक कार्य

1 It is connected with the word 'ballet' and originally meant a song or refrain intended as accompaniment to dancing, but later covered any song in which a group of people socially joined.

रावर्ट ग्रेम्स : दि इङ्गलिश बैलेड-इन्ट्रोडक्शन

(Rhythmic group action) के अर्थ मे इसका प्रयोग होने लगा। इस बैलेड की लोकप्रियता मधुशाला में, खेतों, में जहाजों में काम करने वाले मजदूरों को उत्साह प्रदान करने के लिये अधिक पायी जाती थी। मधुशाला मे भिन्न-भिन्न वाद्यों के साथ इसका गान होता था जिसे जनता बहुत पसन्द करती थी।

लोक-गाथाओं की विशेषताएँ

लोक-गाथाओं की अनेक विशेषताएँ हैं जो इन्हे अलंकृत काव्य (Poetry of art) से स्पष्टतः पृथक् करती है। इन विशेषताओ पर ध्यान देने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अमुक गीत लोक-गाथा है, अलंकृत काव्य नहीं। लोक-गाथाओ की इन विशेषताओं को हम प्रधानता दस भागों में विभक्त कर सकते है—

(१) रचयिता का अज्ञात होना।
(२) प्रामाणिक मूलपाठ का अभाव।
(३) सङ्गीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य।
(४) स्थानीयता का प्रचुर पुट।
(५) मौखिक प्रवृत्ति।
(६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव।
(७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता तथा स्वाभाविक प्रभाव।
(८) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव।
(९) लम्बा कथानक।
(१०) टेक पदो की पुनरावृत्ति।

इनका वर्णन यथाक्रम सक्षिप्त रूप में यहाँ उपस्थित किया जाता है।

(१) रचयिता का अज्ञात होना

लोक-गाथाओ की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसका रचयिता अज्ञात होता है। हीर-राँझा, ढोला-मारू, विजयमल, सोरठी, नयकवा बनजारा, गोपीचंद और राजा भरथरी आदि की अनेक गाथाएँ उत्तरी भारत मे प्रसिद्ध है परन्तु इनकी रचना किसने की यह अन्धकार के गर्त मे छिपा हुआ है। किस काल मे किस गाथा की रचना किस व्यक्ति ने की इसका पता लगाना अत्यन्त कठिन है। भोजपुरी मे कबीरदास जी के नाम से बहुत से 'निर्गुन' प्रसिद्ध है जिनके अन्त में 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' अथवा 'गावेले कबीरदास यह निरगुनवा' आदि पद बार-बार आते है। परन्तु कई कारणो से इन गीतो को कबीर के द्वारा रचा गया नही माना जा सकता। रावर्ट ग्रेम्स ने लिखा है कि वर्तमान सामाजिक सङ्गठन

मे किसी लेखक का अज्ञातनामा होना इस बात को सिद्ध करता है कि उसे अपनी कृति से लज्जा लगती है अथवा उसे अपने नाम को प्रकट करने में भय लगता है। परन्तु आदिम समाज में यह बात लेखक के नाम की असावधानी के कारण होती थी।[1]

अन्य कविताओं की भाँति इन गाथाओं का भी कोई न कोई रचयिता अवश्य होगा जिसने अपने साथियों के साथ आनन्द में मस्त होकर इनकी रचना का प्रारम्भ किया होगा। परन्तु जातीय रचना (Communal Composition) की विशेषता यह होती है कि इसका रचयिता उस दल के मुखिया का काम करता है और जब गाथा की रचना समाप्त हो जाती है तब उसके लेखक होने का वह अहंकार नही करता। इस प्रकार की रचनाओं में गाथा की प्रधानता होती है, दल का भी महत्त्व होता है परन्तु किसी व्यक्ति विशेष की महत्ता नहीं रहती। ऐसा देखा जाता है कि छोटे-छोटे बच्चे छोटे-छोटे गीतों की बनाते, गुन-गुनाते और गाते जाते है परन्तु इनमे से कोई भी गीत के रचयिता होने का दावा नही करता। यह किसी को याद भी नही रहता कि किस बालक ने इस गीत मे किस कड़ी या पंक्ति को जोड़ा है।[2] जातीय रचना मे एक व्यक्ति का नहीं बल्कि अनेक व्यक्तियों का हाथ रहता है। सभी के सहयोग से उसकी रचना होती है; अतः किसने इसका निर्माण किया यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव है।

(२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव

लोक-गाथाओं का कोई प्रामाणिक मूल पाठ नही होता। चूंकि गाथा

1. Anonymity in the present structure of society usually implies that the author is ashamed of his authorship or afraid of the consequences if he reveals himself; but in a primitive society is due jnst to carelessness of the author's name.

दि इङ्गिलश बैलेड इन्ट्रोक्शन, पृ० १२

2. The ballad is important, the group is important, but the individual counts for little. Rudimentary balladry is common among group of small children and it will be noticed that no child will claim authorship of the sing-song; no one remembers who added which phrases to the common store.

राबर्ट ग्रेम्स—वही, पृ० १३

समुदाय की सम्मिलित रचना होती है अतः उसके मूल पाठ (Original Text) का पता लगाना बड़ा कठिन है। रचयिता गाथा की रचना कर उससे पृथक् हो जाता है। अब यह गाथा समस्त समाज, समुदाय या जाति की रचना हो जाती है और प्रत्येक मनुष्य उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझता है। प्रत्येक गवैया अपनी इच्छा के अनुसार नयी पंक्तियाँ जोड़ता जाता है। विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित होने के कारण स्थानीय निवासी उसमें अपनी भाषा में प्रचलित होने के कारण स्थानीय निवासी उसमें अपनी भाषा की शब्दावली को मिलाते जाते हैं। इस प्रकार आकार में वृद्धि होने के साथ ही साथ उसकी भाषा में भी परिवर्तन होता जाता है।

हडसन ने अपनी पुस्तक में काव्य को दो भागों में विभक्त किया है[1] :—

(१) अलंकृत काव्य (Poetry of art)

(२) सम्वर्धित काव्य (Poetry of growth)

अलंकृत काव्य से उनका अभिप्राय उस कविता से है जो किसी एक कवि की रचना है और जिसमें रस, अलंकार, गुण आदि की योजना की गई है। सम्वर्धित काव्य से उनका अभिप्रायः उस काव्य से है जिसकी वृद्धि युग-युग में विभिन्न कवियों ने की हो। कालिदास का रघुवंश प्रथम का तथा व्यास लिखित महाभारत द्वितीय का उदाहरण है।

सम्वर्धित काव्य की ही भाँति, लोक-गाथाओं में समय-समय पर लोक-कवियों द्वारा परिवर्तन और सम्वर्धन होता रहता है। इस प्रकार इनके मूल कलेवर में वृद्धि होती रहती है। जैसे-जैसे यह एक गवैये से दूसरे गवैये के पास जाता है वैसे ही वैसे यह लगातार बदलता जाता है। उसमें से पुराने पद निकाल दिये जाते हैं और नये जोड़े जाते है। इनके लय भी बदल दिये जाते है। पात्रों के नामों में भी भिन्नता आ जाती है। दूसरी लोक-गाथाओं के पद इसमें सम्मिलित हो जाते हैं। इस विधि से यह परम्परा यदि दो-तीन सौ वर्षों तक चलती रही तो गाथाओं में भाषा सम्बन्धी इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि कदाचित् मूल लेखक भी उसे पहिचान न सके।[2] गाथाओं की यह मौखिक परम्परा शताब्दियों तक प्रवहमान रहती है और इस बीच में अनेक लोक-कवियों द्वारा इसमें इतना परिवर्तन तथा

---

१. इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ् लिटरेचर

२. कीट्ज द्वारा सम्पादित—इङ्गलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स इन्ट्रोडक्शन, पृ० xvii

परिवर्धन कर दिया जाता है कि मूल गाथा का पता ही नहीं चलता। कुछ विद्वानों ने लोकगाथा की उपमा विशाल नदी से दी है। जिस प्रकार कोई नदी अपने स्रोत से अत्यन्त पतली धारा के रूप में निकलती है, बाद में उसमें अनेक छोटी-मोटी नदियाँ, तथा नाले मिलते जाते है और अन्त में उसका आकार इतना विस्तृत हो जाता है कि उसके स्वरूप को पहिचानना कठिन हो जाता है। उसी प्रकार लोक-गाथाओं के मूल रूप में लोक-कवियों द्वारा इतना अधिक परिवर्तन कर दिया जाता है कि उसके मौलिक रूप का पता नही चलता।

इसीलिए किसी लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित या अंतिम स्वरूप नहीं होता। कोई प्रामाणिक पाठ (Version) नही होता। इसके अनेक पाठ होते है कोई एक ही निश्चित पाठ नही होता। मान लीजिये कि किसी गाथा में क, ख, ग तीन विभिन्न पाठ है और क पाठ मूल गाथा के अधिक समीप है परन्तु ख और ग पाठ का महत्त्व कुछ कम नही हो सकता।[1] इन पाठों का उतना ही मूल्य है जितना क पाठ का। कीट्रीज ने लिखा है कि प्रोफेसर चाइल्ड के द्वारा सम्पादित कई बैलेड्स के एक से लेकर इक्कीस पाठ तक उपलब्ध होते है जिनका संग्रह उन्होंने किया है।[2] परन्तु इनमें से किसी एक पाठ का मूल दूसरे पाठ से किसी भी प्रकार कम नही है।

रावर्ट ग्रेव्स ने लिखा है कि किसी विशिष्ट गाथा का कोई वास्तविक एवं शुद्ध पाठ नही होता। गवैये अपनी इच्छानुसार उसमे परिवर्तन करते रहते हैं। अतएव किसी एक पाठ को ही विशुद्ध नही माना जा सकता।[3] पं० रामनरेश त्रिपाठी

---

1. It follows that a genuinely popular ballad can have no fixed and final form, no sole authentic version. There are texts, but there is no text. Version A may be near the original than versions B and C but that does not effect the pretensions of B and C to exist and hold up their heads among their fellows.

कीट्रीज : इन्ट्रोडक्शन, पृ० १७-१८

२. वही,

3. That is why there is never any actual correct text of a ballad proper, singers are allowed to alter it to their liking. X X X No single version must be regarded as the 'right one' in an absolute sense.

दि इंगलिश बैलेड—भूमिका, पृ० १३

ने "भगवती देवी" शीर्षक लोक-गाथा के तीन-चार पाठ सङ्कलित किया है परन्तु कौन-सा पाठ मूल तथा शुद्ध है यह कहना कठिन है।[1]

आल्हा का मूल लेखक जगनिक था जिसने हिन्दी की बुन्देलखंडी बोली मे अपनी अमर कृति की रचना की थी। इस गाथा मे आल्हा ऊदल के पराक्रम का वर्णन था। जगनिक की यह कृति आकार में बहुत बड़ी न रही होगी। परन्तु आजकल जो 'आल्हा' उपलब्ध होता है उसका आकार मूल ग्रंथ से कई गुना अधिक है। उसमें ऐसी अनेक घटनायें पीछे से जोड़ दी गई हैं जिनका मूल 'आल्ह खंड' मे नही था। जगनिक ने अपना मूल ग्रंथ बुन्देलखंडी बोली में लिखा था परन्तु उत्तरी भारत में आल्हा के सर्वत्र प्रचार के कारण इसके अनेक पाठ उपलब्ध होते हैं जिसमें कन्नौजी, बुन्देलखंडी और भोजपुरी पाठ प्रसिद्ध हैं। कन्नौजी और भोजपुरी पाठ तो प्रकाशित भी हो गये हैं। खोज करने पर इसके व्रज तथा अवधी पाठों का भी पता चल सकता है। गोपीचन्द की गाथा के भी कई पाठ उपलब्ध होते हैं। बँगला भाषा में प्रचलित इनकी गाथा भोजपुरी से भिन्न हैं। डा० ग्रियर्सन ने गोपीचन्द के दो पाठों (Versions) का सङ्कलन तथा सम्पादन किया है जिसमें बँगला और मगही पाठों की तुलना की गई है।[2] पंजाब मे प्रचलित राजा रसालू की कथा के भिन्न-भिन्न पाठ पाये जाते हैं। स्विनर्टन तथा डा० एलविन ने इन विभिन्न पाठों का संग्रह तथा सम्पादन योग्यता से किया है। ढोला-मारू की गाथा राजस्थान से लेकर भोजपुरी प्रदेश तक अनेक रूपों मे उपलब्ध होती है परन्तु सब में भिन्नता है। विद्वानो से यह बात छिपी नहीं है कि बाला लखन्धर तथा बिहुला की भोजपुरी गाथा बङ्गाल मे भी प्रचलित है।

कहने का तात्पर्य यह है कि लोकगाथाओं का कोई मूल, प्रामाणिक तथा विशुद्ध पाठ नही होता।

(३) संगीत तथा नृत्य का अभिन्न साहचर्य

संगीत और गाथा का अभिन्न साहचर्य है। सच तो यह है कि संगीत के बिना गाथा को सुनने मे आनन्द ही नही आता। यह पहिले लिखा जा चुका है कि अंगरेजी बैलेड शब्द की उत्पत्ति लैटिन 'बेलारे' से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है। अतः बैलेड का मूल अभिप्राय उस गीत से था जो नाच कर

---

१. कविता-कौमुदी, भाग ५ (ग्राम गीत)

२. ज० ए० सो० बं० (भाग LIV), सन् १८८५, भाग १, प० ३५

गाया जाता था। इसे जन समुदाय समवेत स्वर—कोरस से गान करता था। उत्तेजनाजनक तथा पुनरावृत्तिमूलक संगीत के बिना गाथा अधूरी ही हैं[1] क्योंकि यही इसका प्राण है, इसकी आत्मा है।

यूरोपीय देशों में चारणों के द्वारा—जिन्हें 'मिन्स्ट्रल्स' कहते थे—ढोल अथवा सितार बजा कर लोक-गाथाओं को गाने का उल्लेख मिलता है।[2] डा० चाइल्ड और विशाप पर्सी ने ऐसे चारणों का विशेष रूप से वर्णन किया है। चाइल्ड ने तो इन चारणों के द्वारा गाये जाने के कारण से ही कुछ गाथाओं को 'मिन्स्ट्रल्स' 'बैलेड' के नाम से अभिहित किया है। विशाप पर्सी ने लिखा है कि इन चारणों का अनेक शताब्दियों तक एक पृथक् सम्प्रदाय था जो धनी-मानी व्यक्तियों के यहाँ गीतों को गा-गा कर अपनी जीविका उपार्जन करता था।[3]

गूमर का मत है कि कुछ विशिष्ट प्रकार के गीत बड़े प्रेम से बहुत देर तक गाये जाते थे। मध्यकाल में मृत्यु के अवसर पर नृत्य प्रचलित था जो स्वभावतः धीरे-धीरे होता था।[4]

भारतवर्ष में भी गाथा और संगीत का अभिन्न सम्बन्ध दिखायी पड़ता है। वर्षा के दिनों में 'आल्हा' गाने की बड़ी प्रथा है। अलहैत आल्हा गाते समय अपने गले में ढोल बाँध लेता है और उसे पीट-पीट कर अपने भावावेश की सूचना श्रोताओं को देता है। 'आल्हा' के गाने की गति ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है ढोल बजाने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है। गोरखपन्थी साधू—जो जोगी के नाम से प्रसिद्ध हैं—गोपीचंद तथा भरथरी के गीत सारंगी को

---

1. The ballad is incomplete without an exciting and repetitive music,
   राबर्ट ग्रेम्स : दि इङ्गलिश बैलेड, पृ० १७

२. **चाइल्ड : इ० स्का० पा० बैं० भूमिका**

3. But the minstrels continued a distinct order of men for many ages after the Norman conquest and got their livelihood by singing verses to the harp at the houses of the great.
   रेलिक्स आफ एन्शेण्ट इङ्गलिश पोइट्री—भाग, १ भूमिका, पृ० २५

4. True, certain of the Border songs were sung lustily enough and at prodigious length. XXX Dances were common at Mediaeval funerals, naturally to a slow measure.
   एफ० बी० गूमर : दि पापुलर बैलेड, पृ० २४५

बजा कर गाते फिरते है। सारंगी उनके गायन का अनन्य सहायक है। सम्भवतः इसके बिना उनकी स्वर लहरी में कम्पन ही नहीं उत्पन्न होता।[1]

जो बात लोक-गाथाओं पर लागू है वही लोक-गीतों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। होली का गाना भोजपुरी प्रदेश मे बड़ा प्रसिद्ध है। इसे गायक लोग ढोल और 'झाल' बजा बजा कर बड़े प्रेम से गाते हैं। चैता के गीत भी झाल बजाकर गाये जाते है। अतः इनका नाम ही "झलकुटिया चैता" पड़ गया है। भिक्षुक गण भजन तथा 'निर्गुन' को गाते समय कठताल का प्रयोग करते हैं। गोंड़ जाति के लोग अपने गीतों को गाते हुए एक विशेष प्रकार का बाजा बजाते है जिसे 'हुड़का' कहते हैं। सन्थाली लोग नगाड़े की आकृति का बाजा बजाते हुए गीत गाते हैं।

गीत और संगीत का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि देहातों में जहां कोई भी वाद्य यंत्र उपलब्ध नहीं होता वहाँ स्त्रियाँ काठ के कठौते को उलटा करके, लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगड़ती हैं। इससे एक विचित्र प्रकार की संगीतमयी ध्वनि उत्पन्न होती है। इस संगीत के साथ वे गीत गाती जाती है। जहाँ यह भी उपलब्ध नहीं है वहाँ वे ताली बजाकर ही संगीत के अभाव की पूर्ति करती हैं। झूमर के गीत प्रायः ताली बजाकर ही गाये जाते हैं। लोकगीत सामूहिक रूप से गाये जाने पर विशेष आनन्द देते हैं। यह बात भी उनकी संगीतात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। इस प्रकार लोकगीतों और गाथाओं का संगीत से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

४. स्थानीयता का प्रचुर पुट

लोक-गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। इनमें भले ही राजा, महाराजा, रईस और उमरावों का वर्णन हो फिर भी स्थानीय रंग इनमें गहरा होता है। यही कारण है कि जिस देश या प्रान्त में जो गीत प्रचलित है उसमें वहाँ के सामान्य लोगों की रहन-सहन, रीति रिवाज, खानपान और आचार-व्यवहार का सजीव चित्रण रहता है। कहीं-कहीं स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख पाया जाता है। एक भोजपुरी झूमर मे 'पनिया ना पिये हरदेया का राजा' का बार बार उल्लेख पाया जाता है। बिहार राज्य मे प्रचलित अनेक गीतों में बाबू कुँवर सिंह का वर्णन हुआ है। मारवाड़ में यातायात का साधन ऊँट है। "ढोला मारू रा दूहा" में मारवणी ऊँट की सवारी करती हुई दिखायी पड़ती है। उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जिलों में सर्दी अधिक पड़ती है। अतः वहाँ के

---

१. डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन

लोगों के लिए थोड़ी भी गर्मी असह्य होती है। कोई पर्वतीय बाला अपने पिता से प्रार्थना करती है आप मेरा विवाह छाना बिलौरी नामक स्थान में—जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है—मत कीजिएगा क्योंकि पसीने के मारे मैं परेशान हो जाऊँगी। इसी प्रकार मैथिली लोक-गीतों में वहाँ की स्थानीय प्रथाओं की झाँकी मिलती है।

(५) मौखिक प्रवृत्ति

लोक-गाथाएँ चिरकाल से मौखिक परम्परा के रूप में चली आ रही हैं। प्राचीन काल में वेदों की परम्परा भी मौखिक थी। गुरु अपने शिष्य को वेद की शिक्षा मौखिक रूप से ही देता था और शिष्य अपने शिष्य को इसी विधि से वेद पढ़ाता था। लोक-गाथाएँ इसी रूप में आज भी सुरक्षित है। लोक-कवि भिखारी ठाकुर का सुप्रसिद्ध 'बिदेसिया' नामक गीत उसके शिष्यों द्वारा प्रचलित किया गया है। बुलाकीदास के द्वारा रचित चैता के अनेक गीतों को उनके भक्तों ने गा-गाकर काल-कवलित होने से बचा रखा है। लोक-गाथा तभी तक सुरक्षित रहती है जब तक उसकी परम्परा मौखिक होती है। लिपिबद्ध करते ही उसकी गति और प्रगति रुक जाती है। उसकी बाढ़ मारी जाती है। इस विषय में सिजविक का कथन नितान्त सत्य है कि यदि किसी गाथा को आपने लिख लिया तो निश्चय समझिये कि आपने उसकी हत्या करने में योग-प्रदान किया है। जब तक यह मौखिक है तभी तक इसमें जीवन है, अन्यथा नहीं।[1] गूमर ने लिखा है कि मौखिक परम्परा किसी गाथा की प्रधान उपलब्ध कसौटी है।[2]

जब किसी गाथा को लिपि के शिकन्जों में बाँध लिया जाता है तब उसकी वृद्धि रुक जाती है। उसका पाठ निश्चित हो जाने के कारण उसमें अन्य गायकों द्वारा परिवर्तन तथा संवर्धन की गुंजाइश ही नहीं रहती है। परन्तु मौखिक रूप में रहने पर जिस प्रदेश में इनका प्रचार होता है वहाँ के गायक उसमें दो-चार अपनी

---

1. "In the act of writing each one (ballad) down, you must remember that you are helping to kill that ballad. Virum Volitare per ora" is the life of a ballad. it lives only while it remains what the french with a charming confusion of ideas, call oral literature

सिजविक : दि बैलेड पृ० ०३६

2. These are the cordinal virtues of the ballad; with respect to its conditions, critics unite in regarding oral transmission as its chief available test.

ओल्ड इंगलिश बैलेड्स, भूमिका पृ० २६

कड़ियाँ जोड़ देते हैं। इस प्रकार इनके विभिन्न पाठ हो जाते हैं। 'आल्हा' के भिन्न-भिन्न पाठों का यही रहस्य है।

(६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव

लोक-गाथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है। जिस प्रकार संस्कृत मे 'नीतिशतक' और हिन्दी में नीति के दोहे मिलते हैं उसी प्रकार नीति के वचन गाथाओं मे उपलब्ध नही होते। इन गाथाओं की प्रवृत्ति कथानक को गति प्रदान करने की है न कि उपदेश-कथन की। राबर्ट ग्रेम्स ने ठीक ही कहा है कि गाथा नीति या सदाचार की शिक्षा नही देती और न पृथकत्व की भावना का प्रचार करती है। यदि गाथा में यह बात पायी जाय तो यह समझना चाहिए कि चारण अपने को समुदाय से बाहर समझता है।[1]

लोरकी, विजयमल, सोरठी और आल्हा आदि में देशभक्ति, माता की आज्ञा का पालन, साहस, शौर्य और प्रेम के अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनमे उपदेश या शिक्षा ली जा सकती है। कुमुमा देवी और भगवती देवी के गीतों से उनके अलौकिक सतीत्व तथा आदर्श आचरण की शिक्षा मिलती है, परन्तु उनमें उपदेश देने की प्रवृत्ति नही पायी जाती।

(७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता तथा स्वाभाविक प्रवाह

लोक-गाथा कलात्मक या अलंकृत काव्य से सर्वथा भिन्न है। अलंकृत कविता किसी कलाकार द्वारा लिखी जाती है जो अपनी रचना को सुन्दरतम बनाने के लिए विभिन्न अलंकार, छन्द, रस, रीति और गुणों की अवतारणा करता है। वह अपनी कृति में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की योजना कर, उसे किसी विशिष्ट छन्द के साँचे मे ढालने के लिए उसमे काँट-छाँट भी करता है। वह विभाव, अनुभाव और संचारी का विधान कर विभिन्न रसों को अपने काव्य में स्थान देता है। ऐसे काव्य को अलंकृत काव्य (Poetry of art) कहा जाता है। इसकी रचना कलाकार के प्रयास द्वारा होती है। परन्तु लोक-गाथाएँ जो जनता की कविता (Poetry of the Folk) कही जाती है इससे बिल्कुल पृथक् हैं। इनमें अलंकार विधान, गुण-

1. The ballad proper does not moralize or preach or express any strong partisan bias. XXX XXX Moralizing or preaching in a balladl is a sign that the bard is definitely outside the group and is in touch with culture. A partisan bias is incompatible with group action.

दि इंगलिश बैलेड, पृ० ८१

योजना आदि का प्रायः अभाव होता है। यदि कहीं अलंकारों की स्थिति दीख पड़ती है तो वे अनायास उपस्थित होते हैं, प्रयासपूर्वक नहीं।

लोक-गाथाएँ 'टेक्नीक' की दृष्टि से बहुत समृद्ध नहीं होती। 'टेक्नीक' का अर्थ कठिन छन्द-विधान, अलंकारों का प्रयोग, काव्यमय विचारों का प्रस्तुतीकरण और सुगठित शैली समझना चाहिए।[1]

पिंगल शास्त्र के नियमानुसार इनको नाप तौलकर रखने की भी आवश्यकता नहीं। यही कारण है कि लोक-गाथाओं में छन्द शास्त्र के नियमों की बड़ी शिथिलता के साथ पालन किया गया है। कहीं-कहीं तो इसका नितान्त अभाव ही है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लोक गीतों का अलंकृत कविता से पार्थक्य बतलाते हुए लिखा है कि :—

"ग्राम गीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्राम-गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम गीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्य निर्मित।"[2] एक दूसरे स्थान पर वे कहते हैं :—"ग्राम-गीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है; छन्द नहीं केवल लय है; लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।[3]

(८) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव

अलंकृत कविता में लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित रहता है। ऐसा कहा जाता है कि शैली ही व्यक्ति है। अतः कलात्मक रचना पर उसके रचयिता के व्यक्तित्व की छाप होना सुतरां आवश्यक है। एक कवि का व्यक्तित्व उसे दूसरों की कृतियों से पृथक् करता है। परन्तु लोक-गाथाओं में लेखक के व्यक्तित्व का अभाव होता है। इन गाथाओं का कोई एक रचयिता नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में उनके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना संभव नहीं। गाथाओं के कवियों का कोई महत्व नहीं होता, न तो वे वर्तमान में उपस्थित रहते हैं और भूतकाल में उनकी सत्ता थी या नहीं, इस विषय में भी हम सन्देह की दोला पर दोलायमान होते हैं।[4]

---

1. It has been noted that the ballad proper is not highly advanced in technique. By 'advanced technique' is meant complicated verse forms, the ingenious use of metaphor and allegory, and a presentation of ideas which is poetical before it is poetic, 'artistic' before it is imagenative, 'musical' before it is intended for singing.

राबर्ट ग्रेम्स : दि इंगलिश बैलेड, भूमिका पृ० २०

२. कविता कौमुदी, भाग ५ (ग्राम गीतों का परिचय) पृ० ६

३. वही, भाग ५, पृ० १

4 In the ballad it is not so. There the author is of no account. He is not even present. We do not feel sure that he ever existed.

कीट्रिज : इ० स्का० पा० बैं० भूमिका, पृ० ११

जहाँ तक श्रोताओं पर प्रभाव उत्पन्न करने का प्रश्न है, गाथाओं का रचयिता केवल अदृश्य ही नहीं बल्कि उसका अस्तित्व ही नहीं होता। कथा के कहने वालों का कथा में कुछ भाग ही नहीं होता। अन्य गीतों की भाँति गायक की भावनाओं तथा विचारों की इनमें झाँकी नहीं दिखायी पड़ती। इनमें उत्तम पुरुष का प्रयोग नहीं होता। गाथाओं का गायक (रचयिता) न तो कोई निजी विचार प्रकट करता है और न किसी वस्तु की आलोचना ही करता है। नाटक के पात्रों में वह किसी के पक्ष या विपक्ष को नहीं ग्रहण करता। यदि किसी ऐसी कथा की कल्पना की जा सकती जो वक्ता के बिना स्वतः अपनी कथा कहे तो ऐसी कथा लोक-गाथा ही हो सकती है।[१]

सिजविक ने लिखा है कि किसी भी भाषा की लोक-गाथा का सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ गुण या लक्षण उसकी व्यक्तित्वहीनता है। परन्तु हमको झट से इस नतीजे पर नहीं पहुँचना चाहिए कि लेखक कोई व्यक्ति था ही नहीं। ऐसा संभव है कि अनेक कलात्मक रचनाएँ मौखिक परम्परा की प्रक्रिया में व्यक्तित्व को खो बैठें।[२] कीट्रिज ने बैलेड की परिभाषा बतलाते हुए 'व्यक्तित्वहीनता' उसकी प्रधान विशेषता बतलायी है।

गूमर ने बैलेड की विशेषताओं की चर्चा करते हुए लिखा है कि परम्परा, विषय-प्रधानता तथा व्यक्तित्वहीनता से युक्त इन गाथाओं में कथानक भी होता

1. Not only is the author of a ballad invisible but practically non-existant. The teller of the tale has no role in it unlike othe songs, it does not purport to give utterence to the feeling or the mood of the singer. The first person does not occur at all.— —There are no Comments or reflections by the narrator. He does not take sides for or against any of the dramatist personal.— — The story exists for its own sake. If it were possible to conceive a tale as telling itself, without the instrumentality of a conscious speaker, the ballad would be such a tale.

कीट्रिज : वही० भूमिका, पृ० १०

2. The first and the foremost quality of the ballad in any language. is not its personality. but its impersonality. There can be disagreement about that. But we need not at once jump no the conclusion that the author was no-person. It is conceivable that an artistic composition might acquire, in the process of oral tradition, a similar impersonality.

सिजविक : वि बैलेड, पृ० ११

है[1] अर्थात् इनमें मौखिक परम्परा के साथ ही विषय या वस्तु वर्णन की प्रधानता होती है, जिसमें लेखक के व्यक्तित्व का पता नहीं चलता।

हिन्दी, मराठी, गुजराती, पंजाबी तथा राजस्थानी में जितनी गाथाएँ प्रचलित हैं उनके अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि उनमें उनके रचयिताओं की छाप नहीं है। गाथा में कथा की प्रधानता होती है। इस कथा-प्रवाह में लेखक का व्यक्तित्व बह जाता है।

(९) लम्बा कथानक

लोक-गाथाओं की अन्य विशेषता है उनकी कथा-वस्तु की दीर्घता। गाथाओं का आख्यान बड़ा लम्बा होता है। कोई कोई तो काव्योत्कर्ष में न सही—परन्तु लम्बाई में तो महाकाव्यों की स्पर्धा करते हैं। भोजपुरी आल्हा बड़े साइज़ के ६२० पृष्ठों में छपकर प्रकाशित हुआ है जिसके प्रत्येक पृष्ठ में २८ पंक्तियाँ हैं। ढोला-मारू की कथा भी कुछ कम बड़ी नहीं है। 'ढोला-मारू रा दूहा' नामक पुस्तक की आकृति ही इसका प्रमाण है।[2] विजयमल, लोरकी, सोरठी, गोपीचंद तथा भरथरी के गीत भी छोटे नहीं हैं। डा० ग्रियर्सन ने लगभग ८०० पंक्तियों में विजयमल की अपूर्ण कथा को प्रकाशित किया है।[3] कुँवर विजयी सैकड़ों पृष्ठों में छपकर भोजपुरी में प्रकाशित हुई है।

अंग्रेजी में छोटे-बड़े दोनों प्रकार के बैलेड पाये जाते हैं। परन्तु राबिन हुड सम्बन्धी बैलेड्स बहुत लम्बे हैं। A Gest of Robin Hood नामक गाथा सात सर्ग तथा ४५६ पद्यों में लिखी गई है। प्रत्येक पद में चार पंक्तियाँ हैं। इसी प्रकार में Robin Hood and Ten Monk की गाथा ९० पद्यों में तथा Robin Hood's Death की कथा ७० पद्यों में गायी गई है।[4]

(१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति

लोक-गाथाओं की सर्वप्रधान विशेषता टेक पदों की पुनरावृत्ति है। गीतों को जितनी बार दुहराया जाय उतना ही उनका आनन्द बढ़ता है। गीत तथा संगीत

1. Traditional, objective, impersonal, as they are, ballads must also tell a definite tale,

   दि पापुलर बैलेड, पृ० ६६

२. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित

३. ज० ए० सो० बं० जिल्द LIII (१८८४ ई०) भाग ३, पृ० ९४

४. गूमर—ओल्ड इङ्गलिश बैलेड्स, पृ० १-९३

के अभिन्न साहचर्य का उल्लेख पहिले किया जा चुका है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक हो जाते हैं और श्रोताओं को आनन्द प्रदान करते हैं। सिजविक के मतानुसार टेक पद गाथाओं की एक दूसरी विशेषता है जिससे पता चलता है कि ये गीत सामूहिक रूप से पहिले गाये जाते थे। गवैया जब गीत की एक कड़ी गाता है तब समुदाय के अन्य लोग मिलकर टेक पदों की आवृत्ति करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान काल में समवेत स्वर से गाने की प्रवृत्ति इसी आदत को सूचित करती है।[1]

गूमर ने लिखा है कि टेक पद लोक-गाथाओं का सब से महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।'[2] फिंडिनेण्ड उल्फ के विचार में टेक पद उतना ही प्राचीन है जितना कि जनता की कविता। पूजा, भोज, नृत्य, खेल तथा अन्य आदिम संस्कारों के अवसर पर समस्त जनता के द्वारा गाये जाते हुए गीतों में इनकी उत्पत्ति हुई है। श्रेष्ठ कवियों ने अपने काव्यों में इन पदों का अनुकरण किया है।[3] कीट्रिज ने भी इन्हें लोक गीतों तथा गाथाओं की प्रधान विशेषता स्वीकार की है।[4]

महत्त्व

इन टेक पदों का प्रधान उद्देश्य गीतों में जीवन प्रदान कर श्रोताओं के ऊपर प्रभाव उत्पन्न करना है। इन पदों की आवृत्ति का बड़ा महत्व है। लोक-गाथाएँ सामूहिक रूप (कोरस) से गाने की वस्तु हैं। प्राचीन काल में इन गीतों को दल का नेता—गायक—पहिले गाता था और बाद में साधारण जनता उसका अनुगमन करती थी। प्रारम्भ में नेता एक पद को गाता था और जनता गीत के टेक पद या पदों को दुहराती थी। इससे गवैया की नीरसता दूर हो जाती थी क्योंकि श्रोताओं के द्वारा दुहराये जाने से उस गाथा में नवीन जीवन का संचार बारम्बार होता था।[5]

---

1. The refrain is another peculiarity of the popular ballad that establishes its derivation from the choral song. 'The rest shall bear this burden.' The singers monotone is regularly relieved by the audience joining in with a repeated phrase.

दि बैलड, पृ० २७

२. ओल्ड इंगलिश बैलेड्स पृ० LXXXIII

३. गूमर : ओल्ड इंगलिश बैलेडस भूमिका पृ० ,LXXXIII

4. What is meant is, rather that there is abundant evidence for regarding the refrain in general as a characteristic feature of ballad poetry.

इ० स्का० पा० बै० भूमिका, पृ० २१

५. सिजविक : दि बैलेड, पृ० २७

आजकल भी होली और चैता के गीतों को गाते समय गवैयों के दो दल हो जाते हैं। पहिला दल किसी गीत की एक पंक्ति को गाता है, तो दूसरा दल उसके टेक पद की आवृत्ति करता है। जैसे होली के गीत में एक दल गायेगा :—

"बन बोलेला मोर हरि हो
का संग होली खेलों री।" टेक

तो दूसरा दल कहेगा—

आम के डाढ़ कोइलिया, बन बोलेला मोर

फिर पहिला दल कहेगा—

का संग होली खेलों री।

इस प्रकार यह गाने की प्रक्रिया गीत के अन्त तक चलती रहती है। इससे गीत की एकरसता भंग या नष्ट हो जाती है और दूसरा लाभ यह होता है कि गवैया को थोड़ा अवकाश मिल जाता है। इस आवृत्ति का तीसरा उपयोग श्रोताओं के ऊपर प्रभाव उत्पन्न करना भी है। यदि कोई गीत एक ही बार में सीधे सादे ढंग से गाया जाय तो उसका जनता के हृदय पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु उसी गीत की जब बार बार आवृत्ति होती है तो उसका प्रभाव अत्यधिक मात्रा में पड़ता है और वह स्थायी होता है। यही कारण है कि सुघर तथा सुन्दर कविता को लोग बार बार सुनना चाहते हैं। लोक-गाथाओं को जितनी ही अधिक बार पढ़ा या गाया जाय उतनी ही अधिक उनकी मनोरमता बढ़ती जाती है। फुटबाल के मैच में जब दर्शक गण प्रसन्न होकर 'हुर्रे' 'हुर्रे' कहते हैं तब उनका अभिप्राय खेल में अधिक प्रभाव उत्पन्न करना ही होता है।[1] रस्साकशी और कबड्डी के खेल में 'ले लिया' 'ले लिया' और 'शाबाश' 'शाबाश' जोर से चिल्लाने वाली जनता, खेल में जोश और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ही ऐसा करती है।

बर्डेन, रिफ्रेन और कोरस में अन्तर

लोक-गाथाओं में टेक पदों की आवृत्ति कई प्रकार से की जाती है। अंगरेजी

1. A moments reflection should suffice to convince any person of the real popularity of repitetion as a means of securing effectiveness, The local wit in the village taproom, finds that the oftener he says it, the more it is appreciated. The spectator of the football match who said 'hooray "hooray" was using incremental repetion for the sake of effect.

सिजविक : दी बैलेड, पृ० ६०

बैलेड्स में आवृत्यात्मक पदावली तीन प्रकार की उपलब्ध होती है जिसे बर्डेन, (Burden), रिफ्रेन (Refrain) और कोरस (chorus) कहते है। हिन्दी भाषा में इनके लिये उपयुक्त शब्दों के अभाव मे उपर्युक्त पदों का ही प्रयोग वर्तमान लेखक ने किया है। बर्डेन और रिफ्रेन मे बहुत थोड़ा अन्तर है। कोरस इन दोनों से भिन्न है। गाथाओ मे 'बर्डेन' उस मूलभूत अंग या चरण को कहते है जो गाथा की प्रत्येक पंक्ति के बाद गाया जाता है। यह गाथा के केवल अन्त में ही नही गाया जाता।[1] इस प्रकार बर्डेन समस्त गीत मे ओत-प्रोत रहता है। डा० मरे ने आक्सफोर्ड मे प्रकाशित 'न्यू इङ्गलिश डिक्शनरी' मे बर्डेन का अर्थ बतलाते हुए इसे किसी गीत का टेक पद या समवेत स्वर से गेय पद (कोरस) कहा है। यह वह शब्द समूह या पदावली है जो प्रत्येक पद्य (verse) के बाद गाया जाता है।[2] श्री गेस्ट के मतानुसार गीत की प्रत्येक पंक्ति के पश्चात् एक ही प्रकार के शब्दों का बार-बार आना या दुहराया जाना 'बर्डेन' कहा गया है।[3]

लोक गाथाओं मे कुछ पदों की आवृत्ति 'बर्डेन' की भाँति प्रत्येक पंक्ति के पश्चात् नही होती बल्कि थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् निश्चित रूप मे कुछ पद्यों के बाद होती है। इसे 'रिफ्रेन' कहते है। गूमर ने इसकी परिभाषा बतलाते हुए लिखा है कि निश्चित पदावली की निश्चित समय या स्थान के पश्चात् पुनरावृत्ति को 'रिफ्रेन' कहते है। इससे प्रत्येक पद्य को अलग-अलग समझने में सहायता मिलती है।[4] गाथाओ मे 'रिफ्रेन' निःसन्देह बारबार आनेवाला वह पद्य (verse) है जिसे जन-समुदाय बड़े प्रेम से गाता है। मूल गीत को गाने का कार्य तो समुदाय का नेता या गायक करता है। परन्तु साधारण जनता इन्ही आवृत्तिमूलक पद्यों को गाती है। 'बर्डेन'

---

1. Burden is sometimes used in its stricter sense, as defined by Chaphel; "The burden of a song, in the old acceptation of the word, was the foot base or under-song. It was sung, through out, and not merely at the end of the verse.

गूमर : ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० L X X X IV पाद टिप्पणी,नं० ५

2. "The refrain or chorus of a song, a set of words recurring at the end of each verse," **न्यू० इ० डि०**

3. Guest defines burden as the return of the same words at the close of each stave. "English Rhythms II **पृ०** 290.

4. "The refrain is the repetition of a certain passage at regular intervals. and is thus of service in marking of a stanza."

गुमर : ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० L X X X V पाद-टिप्पणी

और 'रिफ्रेन' के सम्बन्ध को निश्चित रूप से बतलाना कठिन है। बहुत सम्भव है कि रिफ्रेन' भी 'बर्डन' की ही भाँति रहे हों और वे जनता द्वारा गीत के साथ लगातार गाये जाते रहे हों। रिफ्रेन में एक ही पद या पदावली की बार-बार आवृत्ति होती है। इसको गूमर ने 'वृद्धि-परक आवृत्ति (Incremental Repetition) का नाम दिया है। रिफ्रेन की उत्पत्ति के विषय में गूमर का विचार है कि नृत्य, खेल और श्रम करते समय जनसाधारण के गान से इनका प्रादुर्भाव हुआ है। यह सभी प्रकार की कविता—चाहे वह अलंकृत काव्य हो अथवा जनकाव्य—का आवश्यक मूलभूत तत्त्व है। लोक-साहित्य की मौखिक परम्परा में इसकी स्थिति आवश्यक है।[1] कोरस उस पूर्ण पद्य (Whole stanza) को कहते हैं जो लोक-गाथा के प्रत्येक नये पद्य के बाद गाया जाता है।[2]

इन तीनों के उदाहरण

(१) **'बर्डेन'** वह टेक पद है जो किसी गीत की प्रत्येक पंक्ति के बाद में आता है। अवधी में ऐसी अनेक लोक गाथाएं पायी जाती हैं जिनमें यह विशेषता उपलब्ध होती है। नीचे का यह गीत—

'बिरना झीनी झीनी पतिया अमिलि भइ
बिरना डोभई बरियवा के पूत।
बलैया लेउँ बीरन'

बहुत लम्बा है। इसकी प्रत्येक पंक्ति के बाद 'बलैया लेउँ बीरन' पदों की

---

1. The refrain is contestably sprung from singing of the people at dance, play, work going back to that choral repetition which seems to have been the protoplasm of all Poetry. Refrains, of course, hold fast in oral tradition.

2. The chorus was a whole stanza sung after each new stanza of the ballad.

गूमर ओ० इ० बं० पृ० L X X X V भूमिका, (पाद-टिप्पणी)

३. त्रिपाठी: ग्रामगीत

४. उपाध्याय: भो० लो० गी०, भाग २, पृ० ८१

आवृत्ति हुई है। भोजपुरी के एक झूमर में पूरी पंक्ति की आवृत्ति प्रत्येक बार हुई है; जैसे—

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके;
धनि बारी उमरिया नइहर तरसे ॥१॥ मोरी०
सोने के थारी में जेवना परसिलो;
मोरे जेवनवाला विदेस तरसे ॥२॥ मोरी०
झझरे गेडुववा गंगाजल पानी,
मोर घूंटनवा विदेस तरसे ॥३॥ मोरी०
लँवग इलायची के बीड़ा लगवली,
मोर कूंचनवाला विदेस तरसे ॥४॥ मोरी०
कलिया चुनि चुनि सेजिया डसवली
मोर सूतनवाला विदेस तरसे ॥५॥ मोरी०

कहीं-कहीं ये टेक पद गीत की प्रत्येक पंक्ति के साथ ही जुड़े रहते हैं। ये गीत के अंगभूत हो जाते हैं। जैसे अवधी के इस गीत की—

"कञ्चिनि सिकिआ क मोरी सींक सिकोलिआ हो ना।
सिकिआ मउनिया केन मउरा हो ना।
खाऊँ न बहुअरि तोर भइया भतीजवा हो ना।
काहे क गरिआइउ सासु भइया भतीजवा हो ना।"[1]

प्रत्येक पंक्ति में 'हो ना' की आवृत्ति हुई है। भोजपुरी चैता की प्रत्येक पंक्ति के प्रारम्भ में 'रामा' या 'आहो रामा' और अन्त में 'हो रामा' बार-बार गाया जाता है; जैसे—

"रामा ननदी भउजिया दुनो पनिहारिन हो रामा
मिलि जुलि, सागर पानी भरे चलली हो रामा ॥१॥
रामा भरि घाट पनिया घरिलवो ना डूबे हो रामा
कवन रसिकवा, घरिला जुठिअवले हो रामा ॥२॥

निर्गुन के गीतों में 'किया हो मोरे रामा' की आवृत्ति प्रत्येक पंक्ति में पायी जाती है।

मैथिली लोक-कवि भी 'चैतावर' के गीतों में 'रामा' को नहीं भूलता। कोई

---

१. उपाध्याय : अवधी लोक गीत (अप्रकाशित)
२. वही, पृ० ४३५

तिरहुतिया विरहिणी कहती है कि जब चैत बीत जायगा तब मेरा प्रियतम आकर क्या करेगा ?

चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ ?
डारे पाते भेल मतवलवा हो रामा
चैत बीति जयतइ हो रामा ।।[1]

अंग्रेजी साहित्य से उदाहरण

अंग्रेजी की कुछ गाथाओं में निश्चित समय पर एक ही पदावली को बार-बार गाया जाता है। अंग्रेजी के निर्दयी भाई (Cruel Brother) नामक बैलेड में 'वृद्धिपरक आवृत्ति' (Incremental Repetition) उपलब्ध होती है। किसी निर्दयी भाई ने अपने बहन को किसी कारण छूरा मार दिया। मरते समय बहन विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न वस्तु वसीयत के रूप में देती या छोड़ जाती है। गीत की कुछ आवश्यक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं[2] :—

"O what will you leave to your father dear ?
The silver shod steed that brought me here.
"What will you leave to your mother dear ?
My velvet pall and my silken gear.
"What will you leave to your sister Anne ?
My silken scarf and my golden fan.
"What will you leave to your sister Grace ?
My bloodly cloths to wash and dress.
"What will you leave to your brother John ?
The gallows-tree to hang him on.
"What will you leave to your brother John's wife ?
The wilderness to end her-life"

उपर्युक्त बैलेड में प्रथम पंक्ति थोड़े परिवर्तन के साथ बार-बार दुहरायी गई है। एक दूसरे बैलेड—The Maid Freed from the Gallows —में प्रत्येक पद्य (Stanza) में कभी पहली और कभी प्रथम दो पंक्तियों की

१. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० २८४
२. सिजविक : दि बैलेड, पृ० ३०

आवृत्ति हुई है। कोई स्त्री, किसी कारण से, फांसी के तख्ते से लटकायी जाने वाली है। वह अपने पिता, भाई-बहन, सब से शासन के अधिकारियों को धन देकर मुक्ति की प्रार्थना करती है परन्तु सब अस्वीकार कर देते हैं। अन्त में उसका प्रियतम उसे मुक्त करता है। इस पर दुःखी तथा क्रुद्ध होकर वह अपने सम्बन्धियों से घर लौट जाने को कहती है।[1]

"O the briary bush, the bush
That pricked my heart so sore !
But now I am out of this briary bush,
Oh ! I shall go in no more.
"Gae hame, gae hame, my father" she says
Gae hame and saw your seed;
And I wish not a pickle of it may grow
But the thistle and the weed.
"Gae hame, gae hame, gae, hame, mother !
Gae hame and brew yer yill;
And I wish the girds may loup off,
And the Deil it a' may spill.
"Gae hame, gae hame, gae hame brother
Gae hame and kiss your wife;
And I wish that the first news I may hear
Is that she has tane your life.
"Gae hame, gae hame, my sister" she says
Gae hame and sew yer seam;
I wish that the needle point may break
And the craws pyke out yer eer"

इस बैलेड के प्रत्येक पद्य (Stanza) में प्रथम पंक्ति बार-बार आती है।

गुजराती उदाहरण

झवेरचन्द मेघाणी ने 'वृद्धिपरक आवृत्ति' के विषय में लिखा है कि इसके द्वारा

१. राबर्ट ग्रेव्स : दि इंगलिश बैलेड, पृ० ४०

एक कड़ी में थोड़ा हेर-फेर करके वार्ता आगे बढ़ती है। उदाहरण रूप में इस गीत को उन्होंने उद्धृत किया है।[1]

"आड़ो आव्यो रे सोनल दादा नो देश जो
सोनले जाण्यु जे दादो छोड़ावशे।
× × ×
आड़ो आव्यो रे सोनल दादा नो देश जो
सोनले जाण्युं जे काको छोड़ावशे

(रढ़ियाली रात, भाग १)

टेक पद (बर्डेन) के विषय में उनका मत है कि यह बार-बार समुदाय के बीच गाने जाने वाली वह पद या पदावली है जो प्रत्येक पंक्ति के साथ दुहराई जाती है।[2]

"आवशे रे कांई चोमासा न दा' डा
रे मेहुला तमने भीजवे रे लोल।
साथे लेशुं मीणी अपने कांई माफा
रे मेहुला अपने शुं करे रे लोल।
आवशे रे कांई शियालाना दा' डा
रे टाठडियुं तमने लागशे रे लोल
आवेशे रे कांई उनालाना दाडा
रे उनाला तमने बालशे रे लोल।

(रढ़ियाली रात भाग ३, पृ० २४)

इस गीत में 'आवशे रे कांई' और 'रे लोल, की आवृत्ति बार-बार हुई है।

भोजपुरी के झूमर के गीतों में निश्चित समय तथा स्थान पर पद या पदों की आवृत्ति पायी जाती है। नीचे लिखे गीत में प्रत्येक दो पंक्तियों के पश्चात् टेक पदों की आवृत्ति हुई है।[3]

आजु के गइल भँवरा कहिया ले फवटबऽऽ कतेक दिनवाँ
हम जोहबि तोहरी बटिया, कतेक दिनवाँ ।।टेक।।
गनत गनत मोर अँगुरी भइल खियानी, चितवते दिनवाँ
नैना से ढरे लोरवा, चितवते दिनवा ।।१।।

---

१. मेघाणी : लोक साहित्य भाग १, पृ० ६७
२. मेघाणी : लोक-साहित्य भाग १, पृ० ६७
३. उपाध्याय : भो० प्रा० गी० भाग २, पृ० ८८

आजु के गइल भवरा कहियाले लवटब कतेक दिनवा ।
हम जोहबि तोहरी बटिया, कतेक दिनवाँ ।।टेक
एक बने गइलीं दूसरे बन गइलीं तीसरे बनवा ।
मिलल गोरू चरवहवा तीसर बनवाँ ।।२।।
आज के गइल भवराँ कहिया ले लवटब कतेक दिनवाँ
हम जोहबि तोहरी बटिया, कतेक दिनवाँ ।।टेक
गोरू चरवहवा तुहीं मोर भइया कतहुँ देखऽऽ ना ।
मोर भँवरा परदेसिया कतहुँ देखल ना ।।३।।
आजु के गइल भवँरा कहिया ले लवटब, कतेक दिनवाँ ।
हम जोहबि तोहरी बटिया कतेक दिनवाँ ।।टेक।।

मैथिली 'जट-जटिन' के गीतों में पाँच-पाँच पंक्तियों के पश्चात् थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ एक ही पदावली बार-बार दोहरायी गई है।[1]

राजस्थानी 'कुवो' नामक गीतों में प्रत्येक तीन पंक्तियों के पश्चात् 'म्हा रो मानो कह्यो' और 'मेहड़ो हुवण है' की आवृत्ति नियमित रूप से हुई है जिससे गीत बड़ा सरल तथा प्रभावोत्पादक बन गया है।[2]

कोरस

कोरस में प्रत्येक नये पद्य (Stanza) के बाद एक पूरे पद्य की आवृत्ति होती है। अंग्रेजी में सामूहिक गान सम्बन्धी बैलेड्स बहुत पाये जाते हैं। दो जादूगर (The Two magicians) इसका अच्छा उदाहरण है[3] :—

" Then she became a turtle dow,
To fly up in the air
And she became another dow,
And they flew pair and pair.
O bide, lady, bide,
And aye he bade her bide;
The rusty smith your lemon shall be,
For a' your muckle Pride.

---

१. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० ३५५
२. पारीक : रा ० लो० गी० भाग १ उत्तरार्ध, पृ० ५०२-५
३. कीट्रीज : इ० स्का० पा० बै०, पृ० ७८

She turned hersef into a hare,
To run upon a hill,
And he became a good grey hound,
And boldly he did feel.
O bide, lady, bide,
And aye he bade her bide
The rusty smith your lemoan shall be
For a' your mackle pride,

इसी प्रकार प्रत्येक पद्य के बाद O bide, lady, bide से प्रारम्भ होने वाली चार पंक्तियों (पूरे पद्य) को बार बार गाया जाता है।

राजस्थानी में ओलूं (लड़की की पीहर से बिदाई) के गीतों में यह लक्षण पाया जाता है। लड़की बिदा होते समय अपनी भावज से कहती है कि भाभी ! यह अपना घर लो। अब मैं प्रियतम के देश को जा रही हूँ।[1]

आला गीला बावल बाँस कटाया
तोरण थाँभ रोपाया।
ओ ल्यो भावज घर आपणो
मैं तो जाबूँ पियाजी रे देस ॥ १॥
पग पग बबाल चूंरी खुदायो
दीनी दोवड़ दात।
ओ ल्यो भावज घर आपणूं
मैं तो जाबूँ पियाजी रे देस ॥२॥
सारी जान जिमायी मेरे बावल
जिंदवाँ रा भात रँधाय।
ओ ल्यो भावज घर आपणूं
मैं तो जाबूँ पियाजी रे देस ॥३॥

टेक पदों का वर्गीकरण

टेक पदों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है (१) सार्थक, और (२) निरर्थक। सार्थक टेक पद वे हैं जिनका कुछ अर्थ होता है। जैसे 'मोरी धानी चुनरिया इतर गमके' या, 'जुगुति बताये जाँव कवन विधि रहबों राम'। निरर्थक पद

१. पारीक: रा० लो० गी० भाग १,(पूर्वार्द्ध) पृ० १९६

वे हैं जिनका कुछ शाब्दिक अर्थ नहीं होता, परन्तु गवैये गाने की सुविधा के लिए उनका प्रयोग करते हैं। इन निरर्थक टेकपदों के सम्बन्ध में मदरवेल (Mother well) नामक विद्वान् का मत है कि यद्यपि हमारे लिए इनका कुछ अभिप्राय नहीं है, परन्तु प्राचीन लोगों के लिए ये बड़े ही महत्वपूर्ण थे।[1]

भोजपुरी चैता में 'हो रामा' 'आहो रामा' 'हे रामा' विरहा में 'बाजर बोई' और निर्गुन में 'किया हो मोरे रामा' ऐसे ही पद हैं जिनका कोई अभिप्राय नहीं है। अंग्रेजी में विस्मयादिबोधक अव्यय O और Oh या A का प्रयोग बहुधा पाया जाता है जो निरर्थक हैं।[2]

The king he sits in Dumferling
Drinking the blue red wine : O
O where will I get a good sailor
That' I sail the ship O mine ? O

'सर पेट्रिक स्पेन्स' नामक उपर्युक्त बैलेडे के 'जी' पाठ ('G' version) में O और A दोनों का व्यवहार हुआ है। अर्ल ब्रैण्ड नामक बैलेड में सार्थक तथा निरर्थक दोनों प्रकार के टेक पदों का आवृत्ति हुई है। परन्तु निम्नांकित टेक पदों का कुछ भी अर्थ नहीं है।

Ay lilly o lilly lally
All i the night sae early.

अथवा

Gennifer gentle and rose maree.
As the dew flies over the mulberry tree,

हिन्दी में पालने के गीतों में बहुत सी ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है जो इसी कोटि में आती है। उनका अभिप्राय गीत में केवल सुस्वरता उत्पन्न करना है अन्यथा उनका कुछ भी महत्त्व नही है।[3]

---

1. Of most of these refrains, Motherwell remarks that they have meanings lost to our ears, but significant enough to men of older times.

२. कीट्रीजः इ० स्का० पा० बै०, पृ० १०४

३. इसके विशेष वर्णन के लिए देखिए—
ग्रीयर्सनः ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० LXXXIII–XCIV

अध्याय ८

लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

विभिन्न मत

लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मत-भेद है। विभिन्न यूरोपीय विद्वान् इस सम्बन्ध में अपना विभिन्न मत रखते हैं। कोई कहता है कि इनकी उत्पत्ति एक समुदाय के द्वारा साथ-साथ गाये जाने से हुई है; कोई इन्हें व्यक्ति-विशेष की रचना मानता है। दूसरों लोगों का मत यह है कि चूंकि ये गीत प्राचीन काल में चारणों के द्वारा गाये जाते थे। अतः इनकी रचना करने वाले यही लोग हैं। लोक-साहित्य के कुछ मर्मज्ञ जाति-विशेष को ही इसका कर्त्ता स्वीकार करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो प्रधान सिद्धान्त इस समय प्रसिद्ध है वे निम्नांकित है :—

१—ग्रिम का सिद्धान्त : समुदायवाद
२—श्लेगल का सिद्धान्त : व्यक्तिवाद
३—स्टेन्थल का सिद्धान्त : जातिवाद
४—विशप पर्सी का सिद्धान्त : चारणवाद
५—चाइल्ड का सिद्धान्त : व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद
६—उपाध्याय का सिद्धान्त : समन्वयवाद

इन सभी सिद्धान्तों की विवेचना इनके गुण तथा दोषों के वर्णन के साथ अगले पृष्ठों में प्रस्तुत की जायेगी।

(१) ग्रिम का सिद्धान्त—समुदायवाद

जर्मनी के जेकब ग्रिम का नाम बहुत प्रसिद्ध है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में इनके द्वारा प्रतिपादित 'ग्रिम-नियम' (Grimm's Law) महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इन्होंने जर्मन लोक-कहानियों का भी संग्रह किया है जो 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' के नाम से प्रकाशित हुई हैं। लोक गाथाओं के सम्बन्ध में इनका अनुसन्धान अत्यन्त मौलिक है। इन गाथाओं की उत्पत्ति के विषय में इनका एक विशिष्ट सिद्धान्त है जिसे 'समुदाय-

वाद' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। ग्रिम का यह मत है कि लोक-काव्य का निर्माण आप से आप होता है। इनके निर्माण के पीछे किसी विशिष्ट कवि या रचयिता का हाथ नहीं होता, समस्त जनता के द्वारा इनकी उत्पत्ति होती है।[1] इनका निष्पादन स्वतः संभूत है।[2] ग्रिम का कहना है कि किसी लोक-काव्य की रचना के विषय में सोचना असङ्गत है क्योंकि इनका निर्माण स्वतः होता है। ये किसी कवि के द्वारा नहीं लिखे जाते।[3]

ग्रिम ने इस सिद्धान्त को बड़ा महत्त्व प्रदान किया है। उनके मतानुसार लोक-गाथाओं की उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की काव्य-प्रतिभा से नहीं हुई है, बल्कि इसके निर्माण का श्रेय एक समुदाय (Community) को है। जैसे किसी व्यक्ति विशेष के हृदय में हर्ष-विषाद, सुख-दुःख आदि की भावना जागृत होती है, उसी प्रकार किसी विशेष समुदाय के लोग भी विशेष अवसरों पर इन्हीं भावनाओं का अनुभव करते हैं। किसी उत्सव के समय, किसी मेला के अवसर पर अथवा किसी धार्मिक पर्व पर लोगों का समुदाय एकत्र होता है। हर्ष और प्रसन्नता के उमंग में इन्हीं समुदाय के लोगों ने एक साथ मिलकर इन गाथाओं की रचना की होगी। ग्रिम के सिद्धान्त का संक्षेप में आशय यह है—मान लीजिए कि किसी सामाजिक अवसर पर कुछ व्यक्ति एकत्र हैं। सभी आनन्दमग्न हैं। उनमें से किसी एक ने गीत की कोई कड़ी बनाकर गायी। दूसरे ने उसमें दूसरी कड़ी जोड़ दी और तीसरे व्यक्ति ने तीसरी कड़ी का निर्माण किया। इस प्रकार कुछ देर के पश्चात् सामूहिक रूप से एक गीत तैयार हो गया। यद्यपि इस गाथा के निर्माण में सभी व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त है, परन्तु इसे किसी व्यक्ति विशेष की रचना नहीं कह सकते। यह पूरे समुदाय की कृति मानी जायेगी न कि किसी विशिष्ट कवि या गवैया की।

आजकल भी हम देखते हैं कि कजली गाने वाले लोग दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। प्रत्येक दल में आठ-दस आदमी होते हैं। पहिले एक दल का एक व्यक्ति कजली की किसी कड़ी को तत्काल बनाकर सुनाता है। फिर दूसरे दल का व्यक्ति

---

1. He maintained the poetry of the people "sings itself" has no individual poet behind it and is the product of the whole folk.

   गूमर : ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० ४६-५०

2. Spontaneous generation of the ballad.

3. "It is inconsistent" he says "to think of composing an epoc, for every epoc must compose itself, must make itelf, and can be written by no poet.

   गूमर : वही भूमिका, पृ० ५०

उसके उत्तर में एक नयी कड़ी बनाकर तुरन्त तैयार कर गाता है। फिर प्रथम दल का व्यक्ति तीसरी कड़ी बनाता है। पुनः दूसरे दल का कोई गवैया चौथी कड़ी जोड़ देता है। इस प्रकार यह सामूहिक गान का क्रम घंटों—और कभी-कभी रात रात भर—चलता रहता है। इस प्रकार कजली के अनेक गीत बनकर तैयार हो जाते हैं। परन्तु अमुक कजली को अमुक व्यक्ति ने बनाया यह कहना असङ्गत होगा क्योंकि इसका निर्माण समस्त समुदाय के सहयोग से हुआ है।[1]

ग्रिम के मतानुसार जिस प्रकार इतिहास का निर्माण नहीं किया जा सकता उसी प्रकार महाकाव्य का भी निर्माण नहीं हो सकता। सर्वसाधारण जनता ही प्राचीन घटनाओं पर काव्य की धारा प्रवाहित करती है और इस प्रकार काव्य की निष्पत्ति होती है। ग्रिम ने बार-बार अपने इसी मत का प्रतिपादन अनेक स्थानों पर किया है।[2] एक दूसरे स्थान पर ग्रिम ने लिखा है कि महाकाव्य किसी विशिष्ट व्यक्ति या प्रसिद्ध कवि के द्वारा नहीं बनाया जाता बल्कि इसका प्रादुर्भाव स्वतः होता है और जनता में इसका प्रचार आप-से-आप होता जाता है।[3] ग्रिम के मत

---

१. नैनीताल तथा अलमोड़े जिले में नन्दाष्टमी के अवसर पर नन्दा देवी के मन्दिर के पास जो मेला लगता है, उसमें पहाड़ी गीतों के गवैये दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। पहिला दल गीत बनाकर प्रश्न पूछता है और दूसरे दल का व्यक्ति गीत में ही इसका उत्तर देता है। यह क्रम सारा दिन चलता रहता है। यह सामुदायिक लोकगाथा-निर्माण का उदाहरण है। कजली के गीतों के दंगल सावन के महीने में काशी और मिर्जापुर में देखे जा सकते हैं, जहाँ श्रोताओं की बड़ी भीड़ जमा होती है। यहाँ भी कजली का निर्माण इसी सामुदायिक पद्धति से होता है।

2. Epic poetry" he declares can no more be made than history can be made. It is the folk which pours its own flood of poetry over faroff events and so bring about the epos."

गूमर : वही भूमिका, पृ० ५१

3. "Epic poetry" he says "is not produced by particular and recognized poets but rather springs up and spreads a long time among the people themselves, in the mouth of the people.

गूमर : वही भूमिका, पृ० ५१

का सिद्धान्त वाक्य है "जनता लोक-काव्य की रचना करती है।"[1] अतः लोक-गाथाओं की परिभाषा बतलाते हुए उन्होंने लिखा है कि गाथा जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता की कविता है।[2] इससे उनके सिद्धान्त पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

ग्रिम के मत का खण्डन

ग्रिम के मत का गत पृष्ठों में जो विवेचन किया गया है। उसमें सत्य का अंश बहुत कुछ है। परन्तु सभी गीतों और गाथाओं के सम्बन्ध में इस साधारण सिद्धान्त का प्रतिपादन करना कि इनकी रचना व्यक्तियों के द्वारा नहीं बल्कि समुदाय (Community) से हुई है, समीचीन नहीं प्रतीत होता।

(२) श्लेगल का सिद्धान्त : व्यक्तिवाद

ए० डब्लू० श्लेगल (A. W. Schlegel) ने ग्रिम के मत का बड़े जोरों से खण्डन किया है। लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इनके मत को 'व्यक्ति-वाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। श्लेगल के मतानुसार किसी कविता का रचयिता कोई न कोई व्यक्ति अवश्य होता है। जिस प्रकार कला की कोई कृति कलाकार की अपेक्षा रखती है उसी प्रकार कविता भी किसी कवि की सृष्टि होती है। गगनचुम्बी अट्टालिकाएं, अभ्रंलिह प्रासाद तथा आकाश में विजेता की कीर्ति-पताका को फहराने वाले विजय स्तम्भ, किसी श्रेष्ठ कलाकार के परिश्रम के परिणाम होते हैं। पाषाण पर उत्कीर्ण प्रतिमाएँ किसी मूर्त्तिकला-विशारद की कुशलता को प्रमाणित करती है तथा मनोहर रंगों से रँगे चित्र किसी 'चतुर चितेरे' की तूलिका की विशेषता प्रकट करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्रासाद तथा अट्टालिकाओं के निर्माण में अनेक व्यक्तियों का सहयोग रहता है फिर भी उस प्रासाद की निर्मिति में विशिष्ट कलाकार के व्यक्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लोक-कविता के सम्बन्ध में भी यहीं बात समझनी चाहिए। लोक-गाथा की सृष्टि में अनेक लोक कवियों का हाथ अवश्य होता है परन्तु वह किसी विशिष्ट कवि की ही रचना होती है। समस्त काव्य प्रकृति और कला के ऊपर आश्रित होता है। अति प्राचीन आदिम

---

1. "Das volk dischtet;'
2. The poetry of the people, by the people for the people.

कविता का भी कोई उद्देश्य होता है, उसमे भी कोई योजना होती है। अतः उसका सम्बन्ध किसी विशिष्ट कलाकार से ही होता है।[1]

(३) स्टेन्थल का सिद्धान्त : जातिवाद

लोक-गाथाओं की रचना के सम्बन्ध में स्टेन्थल का मत 'जातिवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। इनका मत ग्रिम के मत से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। ग्रिम के कथनानुसार कुछ व्यक्तियों के समुदाय (Community) के द्वारा लोक-गाथाओं की रचना हुई होगी। परन्तु स्टेन्थल का सिद्धान्त है कि किसी जाति (Race) के समस्त व्यक्ति मिलकर इनकी रचना करते हैं। इनके मत से व्यक्ति सभ्यता तथा युग युग के विकास की परिणति है। परन्तु आदिम जातियों में व्यक्ति के स्थान पर समष्टि की प्रधानता पायी जाती है। असभ्य जातियों में भावना, एषणा और मूल प्रवृत्तियाँ एक समान ही उपलब्ध होती हैं। जिस वस्तु का अनुभव कोई एक व्यक्ति करता है समष्टि भी उसी का अनुभव करती है। इस परिस्थिति में सामान्य सृजनात्मक भावना के द्वारा भाषा और कविता का निर्माण होता है। इस प्रकार लोक-गाथा किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न होकर सम्पूर्ण जाति की धरोहर होती है।[2]

लोक (folk) के निर्माण में समान वंश या जाति का होना जितना आवश्यक है उतना समान भाषा का होना नहीं। यही एकता, जातीयता की यही भावना

---

1. A poem implies always a poet, a work of art, as every poem must be, whether good or bad, implies an artist, and for poems of any reach or grace, we must assume an artist of the highest class. Legend, epoc and song might well belong to the people as their property, but the making of this verse was never a communal process. A stately tower or any building of beauty means, it is true, that a host of workmen have carried stones from the quarry and reared the walls; but behind them is the shaping thought of the architect. All poetry rests upon a union of nature and art; even the earlist poetry has a purpose and a plan, and therefore belongs to an artist.

   गूमर : ओ० इ० बैं० भूमिका, पृ० LIV

2. Steinthal tried to set forth doctrine that a whole race can make poems. The individual, he maintained, is the outcome of culture and long ages of development; while primitive races show simply an aggregate of men. Sensation, impulse and sentiment must be quite uniform in the uncivilized community—what one feels, all feel. A common creative sentiment throws out the word and makes language,—throws out the song and makes poetry. No one owns a word, a law, a story, a custom. No one owns a song.

   गूमर : ओ० इ० बैं० भूमिका, पृ० XXXVI–VII

प्रथम भाषा में प्रकट होती है, पश्चात् कथाओं में, इसके पश्चात् धार्मिक विधि विधानों में, फिर काव्य-कला और सामाजिक रीति-रिवाजों में प्रकाशित होती है। दूसरे शब्दों में जन या लोक-काव्य का निर्माण उन्हीं सूक्ष्म विधियों से निष्पन्न होता है जिनमें भाषा, कानून और समाज के नियमों की रचना होती है।१

छोटे-छोटे देशों में अनेक ऐसी असभ्य या अर्धसभ्य जातियाँ है जिनके सम्पूर्ण सदस्य एक स्थान पर एकत्र होकर कोई उत्सव मनाते हैं। मेले अथवा अन्य सार्वजनिक उत्सवों के अवसर पर वे लोग एकत्र होकर अपना मनोरंजन करते हैं। इस समय पर वे गीत बनाते और गाते जाते हैं। इस प्रकार समस्त जाति के द्वारा गीतों का निर्माण होता है।

आलोचना

स्टेन्थल का यह सिद्धान्त किसी छोटी जाति के विषय में तो समीचीन हो सकता है परन्तु किसी बड़े देश के सम्बन्ध में लागू नहीं हो सकता। यद्यपि इस मत में भी ग्रिम की भाँति सत्य का अंश विद्यमान है, परन्तु इसे पूर्ण रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस मत के खण्डन में भी वही बातें कही जा सकती हैं जो ग्रिम के सिद्धान्त के सम्बन्ध में कहीं गई हैं। 'समस्त जाति लोक-गाथाओं की रचना करती हैं' यह उक्ति उतनी ही हास्यास्पद है जितना 'सारी जाति शासन करती है' यह कथन। जिस प्रकार शासन का संचालन कुछ चुने हुए व्यक्ति किया करते हैं उसी प्रकार लोक-गाथाओं की रचना कुछ विशिष्ट लोक कवियों का ही कार्य है।

(४) विशप पर्सी का सिद्धान्त : चारणवाद

विशप पर्सी इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध गीत-संग्रहकर्त्ता थे। उन्होंने गाथाओं का सुन्दर संग्रह प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि लोक-गाथाओं की रचना चारण या भाटों के द्वारा हुई है। ये चारण लोग प्राचीन काल में इङ्गलैण्ड में ढोल या सारंगी-हार्प—पर गाना गाते हुए भिक्षा की याचना किया करते थे। इसके साथ ही वे गीतों की रचना भी करते जाते थे। ऐसे गीतों को 'मिन्स्ट्रल बैलेड' कहा जाता था क्योंकि इनकी रचना चारणों—जिन्हें मिन्स्ट्रल कहते हैं—के द्वारा की जाती थी। ये चारण धनी मानी व्यक्तियों के यहाँ जीविकोपार्जन के लिए जाया करते थे, जहाँ

1. This unity, this spirit of the race, manifests itself first in speech, then in myth, then in custom; after long tradition custom gives birth to law. In other words, poetry of the people is made by any given race through the same mysterious process which forms speech. cult, myth, custom or law.

गूमर : वही भूमिका, पृ० XXXVI

इनका बड़ा सम्मान होता था। इङ्गलैण्ड में कवि और चारण दो पृथक् व्यक्ति हो गये थे। काव्य-कला की समृद्धि विद्वानों और कवियों के द्वारा होती थी और लोक-गाथाओं की रचना चारण लोग करते थे।[१]

विशप पर्सी ने अपने संग्रह में संकलित गाथाओं की रचना के सम्बन्ध में लिखा है कि इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अधिकांश प्राचीन वीरगाथाओं का निर्माण चारणों के द्वारा हुआ होगा। यह संभव है कि बड़े-बड़े छन्दोबद्ध गाथाओं की रचना साधु-सन्तों की प्रतिभा के परिणाम हों, परन्तु छोटे-छोटे वर्णनात्मक गीतों की सृष्टि चारणों द्वारा हुई होगी जो इन्हें बनाकर गाया करते थे।[२] जोसेफ रितसन (Joseph Ritson) का भी यही मत है। उन्होंने अंग्रेजी गाथाओं की उत्पत्ति रानी एलिज़ाबेथ प्रथम के समय में माना है। अंग्रेजी भाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट भी पर्सी के मत का समर्थन करते हैं। उनकी सम्मति में चारण लोग गाथाओं के बनाने में बड़े दक्ष थे। उनका कहना है कि प्रारम्भ में गाथाओं की रचना चारणों ने ही की होगी जो कविता और संगीत दोनों की जानकारी का दावा रखते थे। अथवा इनका सामयिक उद्गार किसी स्वयंभू चारण के द्वारा हुआ होगा।[३] प्रोफेसर पाल का मत है कि मौखिक परम्परा के काल में चारण गीतों की रचना करते हैं और जीविका की प्राप्ति या उदर की पूर्ति के लिए इसे गाँवों में गाते फिरते हैं।

---

1. Thus, the Poet and the Minstreal, early with us, became two persons. Poetry was cultivated by men or letters.×××××But the minstrel continued a distinct order of men for many ages after the Norman Conquest, and got their livlihood by singing verses to the harp at the houses of the great.

विशप पर्सी : रेलिक्स आव् एन्शेन्ट इंगलिश पोइट्री, पृ० XXIV

2. I have no doubt that most of the old heroic ballads in this collection were composed by this order of men for although some of the larger metrical romances might come from the pen of the monks or authors. yet the smaller narratives were probably composed by the minstrels who sang them.

विशप पर्सी : रेलिक्स आव् एन्शेण्ट इंगलिश पोइट्री भूमिका, पृ० XXIV

3. In his (Sir Walter Scott) eyes, the minstrel was quite sufficient to account for minstrely, whether of the border or elsewhere, Ballads, he remarks may be originally the work of minstrels "professing the joint arts of poetry and music" or they may be "the occasional effusions of some self taught bard"

गूमर : ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० LIX

भारत में भी चारणों के द्वारा अनेक गाथाओं की रचना हुई है। आल्ह खण्ड का मूल लेखक जगनिक राजा परमार्दिदेव के दरबार में चारण था। सुप्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज की अमरकीर्ति को 'रासों' की रचना कर अमर बनाने वाला चन्द-बरदायी भाट था। आज भी गोरख-पन्थी साधु—जिन्हें साँई कहते हैं—सारंगी बजाकर गीत बनाते और गाते फिरते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में निवास करने वाले भाट या चारण लोग बारातों में तत्काल काव्य की रचना करते जाते हैं। परन्तु सभी गाथाओं को चारणों के द्वारा निर्मित मानना समीचीन नहीं है।

(५) चाइल्ड का सिद्धान्त : व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद

प्रोफेसर चाइल्ड लोक-साहित्य के अधिकारी विद्वान् थे। इनके द्वारा संगृहीत तथा सम्पादित 'इंगलिश ऐण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स' नामक ग्रन्थ इनकी अमर कृति है जिससे इनकी अगाध विद्वत्ता तथा भगीरथ प्रयत्न का पता चलता है। लोक-गाथाओं की रचना के सम्बन्ध मे प्रोफेसर चाइल्ड का मत है कि जिस प्रकार किसी काव्य का लेखक होता है उसी प्रकार इन गाथाओं की रचना भी किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा ही हुई है, परन्तु उसके व्यक्तित्व का विशेष महत्त्व नही है।[२] व्यक्ति विशेष की कृति होने पर भी, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के द्वारा गाये जाने के कारण, इन गाथाथों में परिवर्तन तथा परिवर्धन होता रहता है। अतः इन गाथाओं में मूल लेखक का व्यक्तित्व नष्ट या तिरोहित हो जाता है और ये गाथाएँ जन-सामान्य की सम्पत्ति बन जाती हैं। प्रो० चाइल्ड का मत श्लेगल के सिद्धान्त के समान ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि प्रो० चाइल्ड लेखक के व्यक्तित्व को महत्त्व प्रदान नहीं करते। प्रो० स्टीनस्ट्रप—जो डेनमार्क के लोक-साहित्य के सम्बन्ध में प्रमाणभूत माने जाते हैं—का भी यही मत है। उन्होंने लोक-गाथाओं के निर्माण में किसी कवि के व्यक्तित्व का जोरदार शब्दों में खण्डन किया है।[२]

लोक-गाथाओं की प्रधान विशेषताओं का वर्णन करते हुए गत पृष्ठों में यह दिखलाया गया है कि इनकी रचना में कवि के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव होता

---

1. "Though they (ballads) do not write themselves as William Grimm has said, though a man and not a people has composed them, still the author counts for nothing, and it is not by mere accident but with the best reason, that they have come down to us anonymous.

जानसन : साइक्लोपीडिया, १८९३ ई०

1. Vore Folkeviser Fra Middelalderen
(Copenhagen, 1891)

है। बहुत-सी गाथाओं के रचयिता का पता नही चलता। जिन गाथाओं के लेखक ज्ञात है उनमे भी विभिन्न गवैयों द्वारा इतना परिवर्तन कर दिया जाता है कि उसके मूल लेखक का व्यक्तित्व छिप जाता है। प्रोफेसर चाइल्ड के मत का यही आशय है।

(६) उपाध्याय का सिद्धान्त : समन्वयवाद

लोक-गाथाओ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जिन पांच सिद्धान्तों की अभी चर्चा की गई है उन सब में कुछ न कुछ सत्य का अंश विद्यमान है। विभिन्न दृष्टियों से ये सभी मत आशिक रूप मे ठीक है। परन्तु किसी एक सिद्धान्त को ही सच्चा और प्रामाणिक नही कहा जा सकता।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार, लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जिन पाँच सिद्धांतों का उल्लेख किया जा चुका है वे सभी कारणभूत है। इन सभी का सहयोग इन गाथाओं के निर्माण का कारण है। कुछ गीत या गाथाएँ ऐसी है जो व्यक्ति विशेष की रचनाएँ हैं। भोजपुरी चैता या घाँटों के गीतों में बुलाकीदास का नाम बार-बार आता है जिससे ज्ञात होता है कि इनकी रचना उन्ही के द्वारा की गई है। इसी प्रकार खेती, कृषि, वर्षा आदि की अनेक सूक्तियाँ घाघ और भड्डरी के नाम से प्रसिद्ध है। भोजपुरी कवि भिखारी ठाकुर का बिदेसिया नाटक और गीत प्रसिद्ध हैं। बुन्देलखण्ड में ईसुरी की फागो का जनता मे बड़ा प्रचार है। ब्रज में मदारी और सनेही राय के गीत बड़े प्रेम से गाये जाते है। इससे स्पष्टतया प्रतीत होता है कि लोक-साहित्य के निर्माण मे व्यक्ति विशेष—चाहे वह कवि हो, नाटककार हो या कथाकार हो—का सहयोग अवश्य कारणभूत है।

गाथाओं की रचना में समुदाय (Community) का भी योगदान होता है। अनेक गीत ऐसे पाये जाते हैं जिनका प्रचार किसी जाति विशेष के लोगों मे विशेष रूप से उपलब्ध होता है; जैसे अहीर जाति के लोग विरहा गाते हैं और दुःसाध (एक अस्पृश्य जाति) लोग पचरा। अहीरों की बारात मे विरहा गाने की प्रथा है। इस अवसर पर अच्छे-अच्छे गवैये जुटते है। दो दलो के बीच विरहा गाने की प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाती है। एक दल का व्यक्ति तत्काल विरहा बनाकर गाता और प्रश्न करता है। दूसरे दल वाले इसी प्रकार से विरहा की तत्काल रचना कर उत्तर देते हैं। इस प्रकार जिन विरहों की रचना होती है उनका रचयिता अहीरों का समुदाय (समष्टि) होता है न कि कोई व्यक्ति विशेष (व्यष्टि)। झूमर के

गीतों को स्त्रियों का समुदाय बनाता जाता है और साथ ही उसे गाता जाता है। 'गोड़ऊ' गीतों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

आदिम जातियों (Primitive Tribes) में यह प्रथा थी कि उस जाति के सभी व्यक्ति एक स्थान पर एकत्र होकर अपना मनोरंजन किया करते थे। कोई व्यक्ति गीत की एक कड़ी बनाता था तो कोई दूसरा व्यक्ति दूसरी कड़ी। तीसरा व्यक्ति तीसरी कड़ी जोड़ता था और इस प्रकार एक पूरा गीत तैयार हो जाता था। इस विधि से निर्मित गीतों में किसी विशेष कवि या गायक का हाथ न होकर पूरी जाति का सहयोग होता था। ये गीत समस्त जाति की सम्पत्ति होते थे।

चारणों द्वारा भी अनेक गीतों या गाथाओं की रचना हुई है। जगनिक और चन्दबरदायी की कृतियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। राजस्थान में तो चारणों के द्वारा गीत या काव्य रचने की परम्परा ही चल पड़ी थी। अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में गीतों की रचना करना इन चारणों का प्रधान कार्य था। इङ्गलैण्ड में भी राजा, अमीर, उमरा के दरबार में चारणों की भीड़ लगी रहती थी जो अपनी पेट-पूजा के लिए ही अपने स्वामी का गुणगान करते थे।

अधिकांश लोक-गाथाओं के रचयिता अज्ञातनामा हैं। अतः उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व का अभाव स्वाभाविक ही है।

अतः लोक-गीतों तथा गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूर्वोक्त सभी (पाँचों) सिद्धान्तों का समन्वय अपेक्षित है। सभी पाँचों सिद्धान्त मिल कर इन गाथाओं की उत्पत्ति के कारण है न कि पृथक्-पृथक्। अतः लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० उपाध्याय का सिद्धांत-समन्वयवाद—ही अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

———

अध्याय ६

लोक-गाथाओं के प्रकार

लोक-गाथाओं के अनेक भेद पाये जाते है। इनका वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया जा सकता है। (१) आकार की दृष्टि से (२) विषय की दृष्टि से। आकार की दृष्टि से विचार करने से गाथाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं (१) लघु और (२) वृहत्। लघ् गाथाएँ वे हैं जिनका आकार छोटा है, जैसे भगवती देवी और कुसुमा देवी की गाथाएँ। वृहत् गाथाएँ प्रबन्धात्मक काव्य के समान है जिनको लिपिबद्ध करने में सैकड़ों पृष्ठ काले किये जा सकते है। हीर राँझा, ढोला-मारू, राजा-रसालू और आल्हा-ऊदल की गाथा बड़ी विस्तृत है जिनकी तुलना किसी भी प्रबन्ध काव्य से की जा सकती है।

१. डा० उपाध्याय का वर्गीकरण

परन्तु लोक-गाथाओं का वास्तविक वर्गीकरण विषय की दृष्टि से ही किया जा सकता है। इन गाथाओं में जिन विषयों का वर्णन किया गया है उन्हीं के आधार पर इनका विभाजन समुचित है। इस दृष्टि से लोकगाथाओं का विभाजन डा० कृष्णदेव उपाध्याय के मत के अनुसार प्रधानतया तीन भागों में किया जा सकता है :—

(१) प्रेम-कथात्मक गाथाएँ (Love ballads)
(२) वीर-कथात्मक गाथाएँ (Heroic ballads)
(३) रोमांच-कथात्मक गाथाएँ (Supernatural ballads)

(१) प्रेम मानव जीवन का प्राण है। अतः इन गाथाओं में प्रेम का वर्णन होना अथवा प्रेम सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख होना स्वाभाविक है। यह प्रेम साधारण परिस्थिति में उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत विषम वातावरण में पैदा होता है तथा उसी में पलता है। फलस्वरूप इसमें संघर्ष भी पाया जाता है। भोजपुरी की कुसुमा देवी, भगवती देवी और लचिया की गाथाएँ ऐसी ही है जिनमें प्रेम एक ही ओर पलता है और उसका परिणाम बड़ा विषम होता है। विहुला की कथा प्रेम का प्रबन्ध काव्य है। इस गाथा में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि विहुला के अप्रतिम रूप को जो भी देखता था वह उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर मूर्छित हो जाता

था। उसके अलौकिक लावण्य पर मोहित होकर अनेक युवकों ने उसके पाणिग्रहण के लिए हाथ फैलाया परन्तु वे सफलीभूत नहीं हो सके। अन्त में एक चतुर मनुष्य—जिसका नाम बाला लखन्दर था—ने विहुला के प्रेम को जीतने में सफलता प्राप्त की। 'शोभा नयकवा बनजारा' भी एक दूसरा प्रणय-आख्यान है जिसमें पति-पत्नी का प्रेम, संयोग एवं वियोग का वर्णन बड़ी ही रोचक तथा मर्मस्पर्शी भाषा में किया गया है। 'भरथरी चरित' में राजा भरथरी का अपने गुरु के उपदेश से घर छोड़कर जंगल में चले जाने का वर्णन है। उनके विरह में उनकी वियोग-विधुरा पत्नी का जो चित्र खीचा गया है वह बड़ा ही हृदय-स्पर्शी है। राजस्थान में प्रचलित ढोला-मारू की गाथा प्रेम का वह अजस्र स्रोत है जिसमें अवगाहन कर पाठकों को अत्यन्त आनन्द आता है। मारवणी का प्रेम अनन्य एवं अलौकिक है। पंजाब में प्रसिद्ध हीर-राँझा की प्रेम-गाथा किस सरस व्यक्ति के हृदय को रस-मग्न नहीं कर देती? सोहिनी और महीवाल की गुजराती गाथा शुद्ध प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण है जिसमें प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही प्रेम की धधकती आग में अपने प्राणों की आहुति कर देते हैं। कहने का आशय यह है कि अधिकांश गाथाओं का वर्ण्य विषय प्रेम है जिसका चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है।[1]

अंग्रेजी साहित्य में भी प्रेम-गाथाओं की प्रचुरता पायी जाती है जिससे वहाँ की सामाजिक परिस्थिति का पता चलता है। निर्दयी भाई (क्रूयल ब्रदर) नामक एक ऐसी ही गाथा है जिसमें कोई बहन अपने प्रेमी से; भाई की बिना आज्ञा के, विवाह कर लेती है। फलस्वरूप उसका भाई उसे जान से मार डालता है।

(२) दूसरी प्रकार की गाथाएं वीर-कथात्मक हैं जिनमें किसी वीर के साहस-पूर्ण और शौर्य-सम्पन्न कार्य का वर्णन होता है। इन कथानकों में यह वीर पुरुष आपदग्रस्त किसी अबला का उद्धार करता हुआ दिखायी पड़ता है अथवा वीरता से अपने शत्रुओं का सामना कर, न्याय पक्ष की विजय के लिए लड़ाई में जूझता हुआ हमारे सामने उपस्थित होता है। अलौकिक वीरता का वर्णन करना ही इन गाथाओं का चरम लक्ष्य है। कहीं पर किसी युवती का पाणिग्रहण करने के लिए भीषण संग्राम का वर्णन उपलब्ध होता है तो कहीं मातृभूमि के उद्धार के लिए शत्रुओं से लड़ने का विवरण पाया जाता है। वीर गाथाओं में 'आल्हा' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। दोनों वीर भाइयों—आल्हा और ऊदल—ने किस प्रकार अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए महाप्रतापी राजा पृथ्वीराज से भीषण युद्ध किया, यह बात

---

१. परशुराम चतुर्वेदी : भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

इतिहास के पाठकों से छिपी नहीं है। 'लोरिकायन' नामक गाथा में लोरकी की जीवन-कथा, उसका विवाह और वीरता का मनोरम चित्रण उपस्थित किया गया है। कुँवर विजयी—जिसको विजयमल भी कहते हैं—की गाथा भोजपुरी प्रदेश में प्रसिद्ध है। यह अपने समय का वीर-बाकुड़ा था जिसके सामने शत्रुगण रण-क्षेत्र में कभी टिक नहीं पाते थे। इसके साहस-पूर्ण कार्यों की गाथा भोजपुरी प्रदेश में बड़े चाव से गायी और सुनी जाती है।

(३) तीसरे प्रकार की गाथाएँ वे हैं जिनमें रोमाञ्च या रोमान्स पाया जाता है। इसके अन्तर्गत सोरठी की सुप्रसिद्ध गाथा आती है। सोरठी एक साधारण घर की लड़की थी जो अपनी माता के विवाह के पहिले पैदा हो जाने के कारण लोक-लाज के हेतु, माता-पिता द्वारा परित्यक्त कर दी गई। उसकी माता ने उसे पालने में सुलाकर नदी में प्रवाहित कर दिया। परन्तु "जाको राखै साइयाँ मारि न सकिहैं कोय।" सोरठी पालने पर पड़ी हुई नदी में बहती हुई चली जा रही थी। एक मल्लाह ने उसे वेगवती नदी में बहती हुई देखा। नदी की धारा में से निकाल कर, घर लाकर उसे पालने-पोसने लगा। धीरे-धीरे सोरठी बड़ी हुई और उसका विवाह हो गया। सोरठी की कथा इतनी अलौकिक और रोचक है कि पढ़ते समय यही मालूम पड़ता है कि कोई 'रोमान्स' पढ़ रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार की अनेक गाथाएँ हैं जिनमें रोमान्स का अत्यधिक पुट पाया जाता है।

२—प्रो० कीट्रीज का वर्गीकरण

प्रोफेसर कीट्रीज ने लोक गाथाओं को दो भागों में विभक्त किया है :—

(१) चारण गाथाएँ (Minstrel ballads)

(२) परम्परागत गाथाएँ (Traditional ballads)

मध्यकालीन यूरोप में चारण लोग राजदरबारों में जाकर गाथाओं को गाया करते थे और इस प्रकार अपनी जीविका चलाते थे। इन चारणों के द्वारा बनाये तथा गाये जाने के कारण ही इनका नाम 'चारण-गाथाएँ' पड़ गया है। विशप पर्सी ने अपने ग्रन्थ में चारणों के द्वारा लोक-गाथाओं की उत्पत्ति की विवेचना बड़े विस्तार के साथ की है।[1] परम्परागत गाथाओं से प्रोफेसर कीट्रीज का अभिप्राय उन से हैं जो चिरकाल से चली आ रही है, तथा जिनका प्रचार और प्रभाव आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है। १७वीं शताब्दी में प्रकाशित हुई गाथाओं की बड़ी माँग थी। अनेक व्यवसायी लोग इन गाथाओं को एकत्र कर तत्कालीन एक पृष्ठ के पत्रों में

१. रेलिक्स ऑव् एन्शेण्ट इंग्लिश पोइट्री—भूमिका

प्रकाशित करवाते थे।[1] ये ही गाथाएँ कालान्तर में परम्परागत गाथाओं के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

३. प्रो० गूमर का वर्गीकरण

फ्रान्सिस गूमर ने लोक-गाथाओं का वर्गीकरण निम्नांकित प्रधान छह श्रेणियों में किया है[2] :—

(१) प्राचीनतम गाथाएँ (Oldest ballads)

(२) कौटुम्बिक गाथाएँ (Ballads of Kinship)

(३) अलौकिक गाथाएँ (Coronach and ballads of the Supernatural)

(४) पौराणिक गाथाएँ (Legendary ballads)

(५) सीमान्त गाथाएँ (Border ballads)

(६) आरण्यक गाथाएँ (Greenwood ballads)

प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत अनेक प्रकार की गाथाएँ पायी जाती हैं जिनका वर्णन उपर्युक्त क्रम से उपस्थित किया जाता है।

(१) प्राचीनतम गाथाओं में समस्यामूलक गाथाओं (Riddle ballads) का स्थान सर्व प्रथम है। ये अनन्त काल से चली आ रही हैं। इनकी उत्पत्ति सम्भवतः ग्रीस देश से मानी जाती है। ये गाथाएँ आकाश, पृथ्वी और ऋतुओं से सम्बद्ध रहती है। प्राचीन काल में ये समस्यामूलक गाथाएँ सामूहिक रूप से गायी जाती थीं और इनका उत्तर भी गीतों में ही दिया जाता था। कोई अपरिचित व्यक्ति किसी विधवा स्त्री की तीसरी लड़की से—जो सबसे अधिक सुन्दर थी—यह पहेली पूछता है :—

"What is heigher nor the tree
And what is deeper nor the see ?"

दूसरे प्रकार के गीत घरेलू जीवन से सम्बद्ध हैं जिनमें किसी प्रेयसी का हरण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इनमें रोमान्स का प्रचुर पुट होता है। 'गिल ब्रेन्टन' की गाथा इसका उदाहरण है। स्काटलैण्ड में ऐसे बहुत से गीत उपलब्ध होते हैं, लोकिनवार (Lochinvar) की गाथा इस सम्बन्ध में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन गीतों

---

१. इ० स्का० पा० बै०, पृ० २७ (भूमिका भाग)

२. दि पापुलर बैलेड, पृ० १३५-२८७

में शुद्ध दाम्पत्य प्रेम की प्रचुर अभिव्यक्ति हुई है। परन्तु कुछ ऐसे भी गीत पाये जाते है जहाँ प्रेमी या प्रेमिका विश्वास के पात्र सिद्ध नहीं होते। गे गोशवक (Gay Goshawk) गीत में कोई पक्षी किसी स्काटलैण्ड निवासी प्रेमी का पत्र उसकी अंग्रेजी प्रियतमा के पास पहुँचाता है जिसमें यह लिखा है कि वह अपनी प्रेयसी के प्रेम की प्रतीक्षा अब अधिक देर तक नहीं कर सकता। इस पर उसकी प्रेमिका उत्तर देती है कि :—[1]

"Bid him bake his bridal bread
And brew his bridal ale"

अवध में कुसुमादेवी और भगवती देवी के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं जिनमें उन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा में बड़ा साहसिक प्रयास किया है। अत्याचारी मुगलों के द्वारा वे पकड़ ली जाती हैं, परन्तु वे अपने प्राणों की आहुति देकर अपने सतीत्व में आँच नहीं लगने देती।

(२) कौटुम्बिक गाथाएँ

इनमें परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार का चित्रण किया गया है। बहन और भाई, सास और बहू, ननद और भावज के सम्बन्ध की सुन्दर झाँकी हमें देखने को मिलती है। यूरोपीय गीतों में भाई और बहन का प्रेम बहुत उच्च कोटि का नहीं है। 'निर्दयी भाई' वाली गाथा में—जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है—क्रूरकर्मा भाई अपनी बहन के पेट मे छुरा भोंक देता है। इस प्रकार उसके बहन की मृत्यु हो जाती है। परन्तु भारतीय गाथाओं में इन दोनों का प्रेम बड़ा पवित्र, शुद्ध और सात्विक दिखलाया गया है। अवध प्रान्त का कोई भाई अपने बहन के कष्ट को सुनकर व्याकुल हो उठता है।

सास और बहू का सम्बन्ध गीतों में अवांछनीय रूप में चित्रित है। इसी प्रकार ननद और भावज में पारस्परिक प्रेम का नितान्त अभाव पाया जाता है। ननद सदा भावज की शिकायत करने पर तुली दिखायी पड़ती है।

सास और बहू में विषम सम्बन्ध का चित्रण 'पपइयों' नामक लोक गाथा में पाया जाता है। यह गाथा राजस्थानी है[2]। पुत्र कमाने के लिए परदेस गया हुआ है। इसी बीच उसकी माता अपनी पुत्र-बधू की हत्या कर देती है। पुत्र परदेस से आकर अपनी स्त्री के बारे में जब माता से पूछता है तब उसकी माता टाल-मटोल

---

१. गूमर : दि पापुलर बैलेड

२. पारीक : राजस्थानी लोकगीत पृ० ८१-८२

करने लगती है। प्रियतमा की खून से सनी हुई साडी को देखकर पुत्र सारी बातें समझ जाता है और अन्त मे बड़ा दुःखी होता है। गुजराती में ऐसी ही गाथा 'नो दीठी' के नाम से संगृहीत है।[1]

अंग्रेजी में ऐसी बहुत सी गाथाएँ उपलब्ध होती हैं जिनमें पर-पुरुष के द्वारा बलात्कार करने या व्यभिचार का वर्णन उपलब्ध है। विशप पर्सी के संकलन में ऐसे अनेक गीत उपलब्ध है परन्तु हिन्दी में ऐसी कोई गाथा नही मिलती। वस्ती सिंह अवश्य ही अपने बड़े भाई को मारकर अपनी भावज से विवाह करना चाहता है परन्तु वह सती हो जाती है और इस प्रकार अपने सतीत्व को बचा लेती है।[2]

कुछ गीतो मे स्त्री के सतीत्व की जाँच के लिए अनेक प्रकार के दिव्यों का विधान पाया जाता है। यह प्रथा अन्य देशों में भी प्रचलित थी।

(३) अलौकिक गाथाएँ

इसके अन्तर्गत मृत्यु गीत, जादू के द्वारा शरीर का बदल जाना और अन्ध-विश्वास पर आश्रित अनेक गीत आते है। मृत्यु-गीतों की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। यहाँ पर एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। 'बोनी जेम्स केम्पबेल' नामक गाथा में मृत पुरुष की विधवा पत्नी बड़े ही करुण शब्दों मे विलाप करती है जिसका एक पद्य इस प्रकार है[3] :—

"My meadow lies green
And my corn is unshorn.
My barn is to build
And my babe is unborn"

अंग्रेजी के कुछ गीतों में परियों से प्रेम की कथा भी पायी जाती है। टामस राइमर (Thomas Rymer) नामक गाथा में कोई व्यक्ति परियों के प्रेम-जाल मे फँस जाता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह 'परीस्तान' की यात्रा भी करता है। एक गीत में कोई माता स्वर्ग से लौटे हुये अपने तीन पुत्रों का विधिवत् स्वागत करती है।

परन्तु अलौकिकता की यह भावना, परियों और अप्सराओं से प्रेम की कथा,

---

१. मेघाणी : रढ़ियाली रात भाग १ (गीत-१८) पृ० २७
२. त्रिपाठी : कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत)
३. क्रीटीज : इ० स्का० पा० बै०

शुद्ध भारतीय गाथाओं में प्रायः नहीं पायी जाती। इसी प्रकार मे भूत-दूत या प्रेत मे आविष्ट होने की चर्चा भी नही के बराबर है।

(४) पौराणिक गाथाएँ

इनसे अभिप्राय उन गाथाओं से हैं जो किसी प्राचीन पौराणिक कथा या किम्वदन्ती को लेकर जनता मे प्रचलित है। शेटलेण्ड में 'ओरफ़िन्स' की कहानी गीतों में प्रचलित है जो चिरकाल से मौखिक रूप मे चली आती है। एक गीत में किसी किसान का उल्लेख पाया जाता है जो अपना खेत बो रहा है। उसी रास्ते से जोसेफ, मेरी और क्राइस्ट के जाने का वर्णन भी गीत में किया गया है। भोजपुरी में राजा ढोलन की गाथा प्रचलित है। ऐसा कहा जाता है कि ढोलन नल और दमयन्ती के पुत्र थे। इनकी कथा ही इस गाथा का प्रतिपाद्य विषय है। नल और दमयन्ती की कहानी महाभारत तथा पुराणों में पायी जाती है।

कुछ गाथाओं में हास्य रस का पुट अधिक पाया जाता है। अंग्रेजी में 'हमारा अच्छा आदमी' (Our good man) तथा 'प्रसन्न भिखमङ्गा' (Jolley begger) ऐसे गीत हैं जिनमें हास्य की मात्रा प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध होती है। 'धनि धनि रे पुरुष तोर भागि करकमा नारि मिली' शीर्षक अवधी गीत हास्य रस का उत्कृष्ट उदाहरण है।[१]

(५) सीमान्त गाथाएँ

इङ्गलैंड तथा स्काटलैण्ड के सीमान्त भागों में प्रचलित होने के कारण उपर्युक्त गीतों का नामकरण हुआ है। इन गाथाओ मे सीमान्त पर होने वाले युद्धों का वर्णन हुआ है। परन्तु यह कुछ कम आश्चर्य की बात नही है कि इन गाथाओं में महान् युद्धों की अपेक्षा छोटी छोटी लड़ाइयों की चर्चा ही विशेष रूप से पायी जाती है।

इनमें कुछ ऐसी भी गाथाएँ हैं जो स्थानीय इतिहास से सम्बद्ध है। सन् १८५७ ई० के भारतीय-स्वतन्त्रता संग्राम मे भाग लेने वाले वीर कुँवर सिंह का पँवारा इसी कोटि मे आता है। राजस्थान में प्रचलित जगदेव की वीर गाथा इस दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। बारहवीं शताब्दी में सिद्धराज जयसिंह सोलंकी अनहिलवाड़ा (पाटण) में राज्य करता था। इसके यहाँ जगदेव पँवार एक बड़ा स्वामिभक्त क्षत्रिय नौकर था जिसका नाम आदर्श वीरों में प्रसिद्ध है। स्वयं जयसिंह सोलंकी से स्पर्धा हो जाने पर इनमे अपने हाथ से अपना मस्तक काट कर चामुंडा की उपासिका

१. त्रिपाठी : कविता कौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत)

—कंकौली—को दे दिया था। इसी वीरता का वर्णन एक गाथा का वर्ण्य विषय है। अवधी में ऐसे अनेक गीत प्रचलित है जिनमें सन् १८५७ ई० के 'विद्रोह' की चर्चा बड़े ही मार्मिक शब्द में की गई है। उपर्युक्त सभी गीत ऐतिहासिक गाथाओं (Chronical ballads) की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

(६) आरण्यक गाथाएँ

इङ्गलैण्ड में राबिनहुड नामक साहसिक व्यक्ति हो गया है जो ग्रीनउड नामक जगल में रहता था। वह राजकीय शासन की अवहेलना कर धनिकों को लूट-खसोट कर गरीब और निःसहायों की उस धन से रक्षा करता था। शासन के नियमों के भंग करने के कारण वह लुटेरा (Out-law) माना जाता था। इस राबिन हुड से संबंधित बीसियों गाथायें अंग्रेजी में प्रचलित हैं। ग्रीनउड में उसके निवास करने के कारण उससे संबंधित गाथाओं का नाम ही 'ग्रीनउड बैलेड्स' पड़ गया। इसीलिए इन्हें 'आरण्यक गाथाओं' की संज्ञा प्रदान की गई है। राबिनहुड की गाथाओं की श्रेणी में 'The Gest of Robin Hood' सबसे बड़ी गाथा है जो महाकाव्य के समकक्ष मानी जा सकती है। इन गाथाओं में राबिन हुड का जो चरित्र चित्रण किया गया है वह एक लुटेरे के रूप में नहीं है, बल्कि गरीब और दुःखियों के रक्षक, त्राता के रूप में चित्रित है। उसका चरित्र नितान्त उदात्त, शुद्ध तथा दिव्य दिखलाया गया है। यह एक राष्ट्रीय वीर (National Hero) के रूप में हमारे संमुख उपस्थित होता है। राबिन हुड सम्बन्धी गाथाएँ इतनी अधिक है कि उनकी एक पृथक् श्रेणी ही बन गई है जो 'ग्रीनउड' या 'आउट ला बैलेड्स' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में सुल्ताना नामक डाकू का नाम बड़ा सुप्रसिद्ध था। परन्तु उसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि वह धनी व्यक्तियों को ही लूटता था और उस धन से गरीबों की सहायता करता था। बिजनौर तथा सहारनपुर के जिलों में उसकी लोकप्रियता का संभवतः यही कारण था। सुल्ताना के सम्बन्ध में अनेक गाथाएँ उसके जीवन काल में ही प्रसिद्ध हो गई थीं जो आज भी बड़े प्रेम से सुनी और गाई जाती हैं। सुप्रसिद्ध डाकू मानसिंह —जो अभी कुछ ही वर्ष हुए पुलिस की गोलियों का शिकार बन गया—के विषय में भी ये ही बातें कही जाती हैं। बहुत संभव है कि ग्वालियर और आगरे के आस-पास इसकी वीरता के गीत गाये जाते हों।

राजस्थान में इसी शताब्दी में जोर सिंह या जोरावर सिंह (जोरजी) नाम

एक प्रसिद्ध डकैत हो गया है जिसकी बहादुरी के कई गीत प्रचलित हैं।[1] जोर सिंह को उसके साथियों ने धोखा देकर मार डाला था। जिस दिन उसे मारा गया था उससे पहिली रात को उसकी पत्नी को बुरा स्वप्न हुआ जिससे उसने अपने पति तथा उसके साथियों को पहिले से ही आगाह कर दिया था। परन्तु जोर सिंह वीर और उदार था। अन्त में अपने साथियों के षडयन्त्र में पड़ कर वह मारा गया। मरते समय अपनी पत्नी की सीख उसे याद आई। यहाँ तक का वृत्त तो एक गीत का विषय है। आगे जोर सिंह के वीर सुपुत्र ने किस प्रकार अपने पिता के खून का बदला लिया यह दूसरे गीत में वर्णित है।[2]

किनकेड ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक [3] में काठियावाड़ के लुटेरों या डकैतों (Out-laws) का बड़ा ही रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है जिससे पता चलता है इन लोगों ने समाज में कितनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी। इनकी वीरता और उदारता के गीत आज भी काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में बड़े चाव से गाये जाते हैं। उपर्युक्त ये सभी गाथाएँ 'ग्रीनउड बैलेड्स' की श्रेणी मे रखी जा सकती हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रो० गूमर द्वारा प्रतिपादित गाथाओं का उपर्युक्त वर्गीकरण बड़ा ही व्यापक और विस्तृत है। इसमें सभी प्रकार की गाथाएँ अन्तर्भुक्त हो जाती हैं।

---

१ पारीक : रा० लो० गी० पृ० ८३

२ वही

३ Kincaid : the Out-laws of Kathiawad

अध्याय १०

लोक-कथाओं का विश्लेषण

लोक-सहित्य के अध्ययन में लोक-कथाओं का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। व्यापकता और प्रचुरता की दृष्टि से इनका मूल्य अत्यधिक है। भारतीय लोक-साहित्य में लोक-कथाओं की संख्या अनन्त है। केवल हिन्दी की ही विभिन्न बोलियों में प्रचलित कथाओं का संग्रह किया जाय तो कई वृहत् संकलन-ग्रंथ तैयार हो सकते है। जिस प्रकार आदि काव्य का जन्म इस देश में हुआ था उसी प्रकार सबसे प्राचीन कथाओं की उपलब्धि भी इसी पुण्य भूमि में हुई थी। भारतीय कथा-साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका प्रभाव संसार के प्रायः सभी देशों के कथा-साहित्य पर प्रचुर रूपेण पड़ा है। इन कथाओं के यूरोपीय देशों में प्रचार की कहानी बड़ी लम्बी है। सर्वप्रथम इन कहानियों का अनुवाद अरबी और पहलवी भाषाओं में हुआ और इसके पश्चात् यूरोप की विभिन्न भाषाओं में इनके अनुवाद प्रस्तुत किये गये। यूरोप में प्रचलित 'इसाप्स फेबुल्स' (ईसप की कहानियो) मे भारतीय प्रभाव स्पष्ट गोचर होता है।

(क) लोक-कथाओं की प्राचीन परम्परा

लोक-कथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सर्वप्रथम वैदिक संहिताओं में हमें कथाओं का उद्गम दिखायी पड़ता है। ऋग्वेद में बहुत से ऐसे सूक्त उपलब्ध होते है जिनमे दो या तीन पात्रों में कथनोपकथन पाया जाता है। इन सूक्तों को सवाद सूक्त कहते है। ऋग्वेद मे ऋषि शुनःशेप का प्रसिद्ध आख्यान उपलब्ध होता है।[1] अपाला आत्रेयी के आदर्श नारी चरित्र का चित्रण हमें सर्वप्रथम इसी वेद मे देखने को मिलता है।[2] च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा भी बड़ी सुन्दर रीति मे इसमें वर्णित है।[3]

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। शतपथ ब्राह्मण में

---

१. ऋ० वे०—१।२४।३०

२. वही, ८।९।१

३. वही, १०।३९।४

पुरुरवा और उर्वशी की कथा नितान्त प्रसिद्ध है।[१] इसी कथा को लेकर महाकवि कालिदास ने 'विक्रमोर्वशी' नाटक की रचना की है। तांड्यब्राह्मण में भी च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा उपलब्ध होती है।[२] ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप का आख्यान वर्णित है।[३] शाट्यायन ब्राह्मण में महर्षि वृश नामक पुरोहित के वैदिककालीन महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।[४] इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में दध्यङ् आथर्वण की कथा का वर्णन है जिसका लोकप्रिय पौराणिक नाम ऋषि दधीचि है। इन्ही की हड्डी को लेकर वज्र का निर्माण किया गया था जिससे इन्द्र ने वृत्र का बध किया था।

ब्राह्मण ग्रन्थो के पश्चात् उपनिषदो मे भी अनेक कथाओं का उल्लेख पाया जाता है। नचिकेता की सुप्रसिद्ध कथा कठोपनिषद् का प्रधान वर्ण्य विषय है जिसने अपनी विलक्षण प्रतिभा के द्वारा यम से अमर बनने का साधन पूछा था। अग्नि और यक्ष की कथा का केनोपनिषद् मे वर्णन पाया जाता है। वैदिक संहिता एवं उपनिषदो मे जिन कथाओं की केवल सूचना मात्र मिलती है उनका विस्तृत वर्णन 'वृहद्देवता' मे और षड्गुरुशिष्य रचित 'कात्यायन सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थ दीपिका' टीका में किया गया है।

(१) वृहत्कथा

संस्कृत में लोक कथाओं का सबसे प्राचीन संग्रह 'वृहत्कथा' है जिसके लेखक गुणाढ्य थे। यह ग्रन्थ पैशाची भाषा मे लिखा गया था जो आज उपलब्ध नहीं होता। डा० ब्यूलर के अनुसार इसकी रचना ईसा की दूसरी शताब्दी मे हुई थी। वृहत्कथा संस्कृत नाटककारों के लिए उपजीव्य ग्रन्थ रहा है। महाकवि भास, शूद्रक और हर्ष ने अपने नाटकों की कथावस्तु इस ग्रन्थ से प्राप्त की है। आजकल वृहत्कथा के तीन अनुवाद संस्कृत में उपलब्ध होते है :—

(१) वृहत्कथा-श्लोक-संग्रह
(२) वृहत्कथा-मंजरी
(३) कथा-सरित्सागर

वृहत्कथा-श्लोक-संग्रह के रचयिता बुधस्वामी है। ये नैपाल के रहने वाले थे। इनका समय आठवीं या नवीं शताब्दी माना जाता है। बुधस्वामी की यह कृति

---

१. श० ब्रा० ११।५।१
२. ता० ब्रा० १४।६।११
३. ऐ० ब्रा० ७।३
४. शा० ब्रा० ५।२

सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं होती। परन्तु जितना ग्रन्थ प्राप्त हो सका है उसमें २८ सर्ग है और ४५३९ श्लोक पाये जाते हैं।[1]

वृहत्कथा मंजरी—इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य क्षेमेन्द्र हैं जो संस्कृत साहित्य में अपनी प्रभूत रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। ये काश्मीर के राजा अनन्त के आश्रित कवि थे। इनका समय ११ वीं शताब्दी है। इस ग्रन्थ में समस्त श्लोकों की संख्या ७५०० है।

कथा-सरित-सागर—इसके रचयिता सोमदेव है जो काश्मीर के राजा अनन्त और महाकवि क्षेमेन्द्र के समकालीनथे। वृहत्कथा का यह सबसे प्रसिद्ध अनुवाद है जिसमें कुल श्लोकों की संख्या २४,००० है। इस ग्रन्थ की रचना सन् १०६३ ई० से लेकर सन् १०८१ के बीच में हुई थी। इस ग्रन्थ का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद टानी ने किया है और पेञ्जर ने इसका सुन्दर सम्पादन कर इसे दस भागों में 'ओशन आफ स्टोरी' के नाम से प्रकाशित किया है।

(२) पंचतंत्र

संस्कृत कथा-साहित्य में पंचतंत्र का स्थान अद्वितीय है। इसका अनुवाद यूरोप की अनेक भाषाओ में हो चुका है तथा इसकी कहानियों ने यूरोपीय कथा-साहित्य को प्रचुर रूपेण प्रभावित किया है। पंचतंत्र भारतीय कहानियों का सबसे मौलिक और प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। इसमें पाँच भाग या तंत्र है। अतः इसका नाम पंचतंत्र है। इस ग्रन्थ के लेखक विष्णु शर्मा है जिन्होंने राजकुमारों को नीति-शास्त्र का उपदेश देने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की थी। भिन्न-भिन्न शताब्दियों में तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तों में पंचतंत्र के अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए। इनमें सबसे प्राचीन 'तन्त्राख्यायिका' के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) हितोपदेश

नीति सम्बन्धी कथाओं मे पंचतंत्र के बाद 'हितोपदेश' का स्थान है। इसके लेखक नारायण पण्डित थे जो बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आश्रय मे रहते थे। इस ग्रन्थ की रचना १४ वीं शताब्दी के आस-पास हुई। ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा है कि इसका मूल आधार पंचतंत्र ही है। हितोपदेश की अधिकांश कथाएँ पंचतंत्र से ही ली गई हैं। यह बड़ा ही लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसे संस्कृत साहित्य में प्रवेश प्राप्त करने के इच्छुक छात्र बड़े प्रेम मे पढ़ते हैं।

---

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास

(४) वैताल पंचविंशतिका

इस ग्रन्थ की रचना शिवदास नामक किसी विद्वान् ने की है। इस ग्रन्थ में राजा विक्रम से सम्बद्ध पचीस रोचक कहानियाँ सरल संस्कृत में कही गई हैं। प्रत्येक कथा में राजा की व्यावहारिक बुद्धि का पर्याप्त परिचय मिलता है। ये कहानियाँ बहुत प्राचीन हैं क्योंकि वृहत्कथा-मंजरी तथा कथासरित्सागर में इनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। 'बैताल पचीसी' के नाम से इस ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में अनुवाद हो चुका है।

(५) सिंहासन द्वात्रिंशिका

इसका अनुवाद हिन्दी में 'सिंहासन बत्तीसी' के नाम से हुआ है। इसकी कहानियाँ मनोरञ्जन की दृष्टि से नितान्त उपादेय हैं।

(६) शुकसप्तति

इसमें ७० कहानियों का संग्रह किया गया है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि का अनुमान केवल इसी बात से किया जा सकता है कि ईसा की १४ वी शताब्दी में इसका अनुवाद 'तूतीनामा' नाम से किया गया था। भट्ट विद्याधर के शिष्य आनन्द ने 'माधवानल' कथा' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें श्लोकों की रचना संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में की गई है। शिवदास का 'कथार्णव' केवल ३५ कहानियों का संग्रह मात्र है जिसमें मूर्खों और चोरों की कथा कही गई है। मैथिल कोकिल विद्यापति ने 'पुरुष-परीक्षा' नामक ग्रन्थ में ४४ कथाओं की रचना की है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य मे कथाओं का अक्षय भाण्डार उपलब्ध होता है।

(७) जातक

जातकों की चर्चा के बिना संभवतः यह अध्याय अपूर्ण ही रह जायेगा। जातकों में उन कहानियों का संग्रह किया गया है जिनका सम्बन्ध बुद्ध के पूर्व जन्मों से है। जातकों की कुल संख्या ५५० है। इनकी भाषा पाली है। इतनी अधिक कथाओं का एकत्र संकलन बड़े महत्त्व की वस्तु है। भाषा-शास्त्र, समाज-शास्त्र और पुराण-शास्त्र की दृष्टि मे इन जातकों का बड़ा महत्त्व है। अनेक बौद्ध पण्डितों मे जातक की कहानियों को संस्कृत भाषा में लिखा है। 'दिव्यावदान' और 'अवदान शतक' ऐसी ही रचनाएँ हैं। आर्यशूर द्वारा रचित 'जातकमाला' में ये कथाएँ पद्य रूप में निबद्ध हैं।

(ख) लोक-कथाओं का वर्गीकरण

जन-मन के अनुरंजन में लोक-कथाओं का प्रधान स्थान रहा है। यही कारण

है कि ये कथाएँ चिर काल से हमारे जीवन का अंग बन गई है। पिछले अध्याय में कहानियों की प्राचीनता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है और यह दिखलाया गया है कि वैदिक काल से लेकर आज तक इनकी धारा अक्षुण्ण रीति से प्रवाहित होती आ रही है।

प्राचीन वर्गीकरण

प्राचीन आचार्यों ने कथा को दो भागों मे विभक्त किया है (१) कथा और (२) आख्यायिका। कथा उस कहानी को कहते है जो कवि कल्पना से प्रसूत होती है जैसे वाणभट्ट की कादम्बरी और दण्डी का दशकुमारचरित। परन्तु आख्यायिका का आधार ऐतिहासिक इतिवृत्त होता है। यह किसी इतिहास सम्बन्धी सत्य घटना को लेकर लिखी जाती है। जहाँ वाण की कादम्बरी कथा का उदाहरण है वहाँ उनके द्वारा लिखित 'हर्षचरित' आख्यायिका का आदर्श है। आनन्दवर्धनाचार्य ने कथा के तीन भेदों का उल्लेख किया है (१) परि कथा (२) सकल कथा, और (३) खण्ड कथा। परिकथा वह कथा है जिसमें केवल इतिवृत्त मात्र हो, रस परिपाक के लिए उसमें विशेष स्थान न हो। अभिनव गुप्त ने परिकथा मे ऐसे वृत्तान्तों का समावेश आवश्यक माना है जिसमें वर्णन की विचित्रता पायी जाती है। सकल कथा मे बीज (प्रारम्भ) से फल पर्यन्त समस्त कथा का सन्निवेश उपलब्ध होता है। हेमचन्द्र ने इस कथा को चरित का नाम दिया है और उदाहरण के रूप में 'समरादित्य कथा' का उल्लेख किया है। खण्ड कथा एक देश प्रधान होती है।

हरिभद्राचार्य ने कथाओं का एक नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जिसमे मौलिकता पायी जाती है। इनके अनुसार कथाओं के निम्नांकित चार भेद है :—

(१) अर्थ कथा
(२) काम कथा
(३) धर्म कथा
(४) संकीर्ण कथा

अर्थ कथा का विषय अर्थ की प्राप्ति है। काम-कथा में प्रेम का वर्णन अपनी प्रधानता रखता है। इस प्रकार की कथाओं की संख्या अत्यधिक है। धर्म कथा धार्मिक आख्यानों से सम्बन्ध रखती है। इस कथा की अभिलाषा करने वाले श्रेष्ठ तथा धार्मिक मनुष्य बतलाये गये हैं।

"मोक्षकांक्षैकतानेन चेतसाभिलषन्ति ये।
शुद्धां धर्मकथामेव सात्विकास्ते नरोत्तमाः" ॥

परन्तु दोनों लोकों की इच्छा रखने वाले संकीर्ण कथा के प्रेमी मध्यम कहे गये हैं।

"ये लोकद्वयसापेक्षाः किञ्चित्सत्त्वयुताः नराः।
कथामिच्छन्ति संकीर्णा ज्ञेयास्ते वरमध्यमाः॥"

(१) डा० उपाध्याय का वर्गीकरण

लोक-कथाओं के वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इनका विभाजन डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने निम्नांकित छः वर्गों में किया है।

(१) उपदेश-कथा
(२) व्रत-कथा
(३) प्रेम-कथा
(४) मनोरंजन-कथा
(५) सामाजिक-कथा
(६) पौराणिक-कथा

(१) लोक-साहित्य में जो कथाएँ उपलब्ध होती है उनमें अधिकांश प्रथम वर्ग से ही सम्बन्ध रखती है। लोक-कथाओं का प्रधान उद्देश्य उपदेशात्मक होता है। उपदेश की इस प्रवृत्ति को इन कथाओं की आत्मा समझनी चाहिये। पंचतंत्र तथा हितोपदेश की समस्त कथाएँ इसी कोटि के अन्तर्गत आती है। 'हितोपदेश' नाम से ही यह ज्ञात होता है इन कहानियों में कल्याणकारी उपदेश भरा पड़ा है। संभवतः इस ग्रन्थ की रचना भी इसी लक्ष्य को सामने रखकर की गई थी। "कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते" इस पंक्ति को लिख कर लेखक ने ग्रन्थ-रचना के अभिप्राय को स्पष्ट भी कर दिया है। पंचतंत्र तथा हितोपदेश में जानवरों तथा पक्षियों के मुख से कहानियाँ कहलवायी गई हैं। उन सब में नीति या उपदेश अन्तर्निहित है। लोक कहानियों के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिये। 'तिरिया चरित्तर' नामक कथा—जो भोजपुरी प्रदेश में बहुत प्रसिद्ध है—इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती है। किस प्रकार मायावी स्त्रियाँ सीधे-सादे पतियों को परेशान करती हैं और उन्हें चक्कर में डाल देती हैं, यही इस कथा का प्रधान उद्देश्य है। इस कहानी के द्वारा लोक-कथाकार ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि ऐसी दुष्टा स्त्रियों से पुरुषों को सावधान रहना चाहिए।

(२) धर्म हमारे जीवन का अंग है। धार्मिक कृत्यों एवं विधि-विधानों से हमारा जीवन ओत-प्रोत है। अतः हमारे धार्मिक क्रिया-कलापों में व्रतों का महत्त्व-

पूर्ण स्थान होना स्वाभाविक है। इन व्रतों के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। व्रज मण्डल में सत्यनारायण तथा गणेश जी की कथा का बड़ा प्रचार है। इसी प्रकार भोजपुरी प्रदेश में सत्यनारायण तथा त्रिलोकी नाथ की कथा का घर घर में प्रसार पाया जाता है। भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को 'अनन्त चतुर्दशी' कहते हैं। इस दिन अनन्त भगवान् की कथा कही जाती है। स्त्रियों के व्रतों में पिड़िया प्रसिद्ध है। भोजपुरी लड़कियाँ पिड़िया का व्रत करते समय सबेरे और शाम, नित्य प्रति, इस कथा को सुनती हैं। इसी प्रकार 'बहुरा' व्रत की कथा भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त जीवित्पुत्रिका, करवा चौथ, अहोई आठें, गनगौर आदि व्रतो के अवसर पर भी कथाएँ कही जाती हैं।

(३) तीसरी प्रकार की कथाएँ प्रेमात्मक हैं। इन कहानियों में प्रेम की कथायें बड़ी सुन्दर रीति से कही गई हैं। माता का पुत्र के प्रति प्रेम कितना वात्सल्यपूर्ण होता है, पत्नी का पति-प्रेम कितना दृढ़ और स्वाभाविक होता है; बहिन का भाई के प्रति प्रेम कितना अकृत्रिम होता है इसकी झाँकी इन कथाओं में देखने को मिलती है। स्त्रियों के प्रति प्रेम का जो उत्कृष्ट एवं अलौकिक आदर्श यहाँ पाया जाता है, उसके दर्शन अन्यत्र कहाँ? यह बतला देना आवश्यक है कि लोक-कथाओं में जो दाम्पत्य प्रेम उपलब्ध होता है वह नितान्त पवित्र और शुद्ध है, काम-वासना की उसमें गंध भी नहीं पायी जाती।

(४) कुछ कथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन मात्र है। ऐसी कथाओ को बालक गण बड़े चाव से सुनते हैं। ढेला-पत्ती की कहानी ऐसी ही है जो बालकों के मनोरंजन को लक्ष्य में रखकर लिखी जान पड़ती है। इस कथा का अन्त इस प्रकार से किया है कि मिट्टी का ढेला गल गया, पत्ती हवा में उड़ गई और इस प्रकार कथा समाप्त हो गयी :—

"ढेला गइले भिहिलाई
पतई गइले उड़ियाई
अवरू कथा गइले ओराई।"

(५) सामाजिक कथाएँ वे हैं जिनमें समाज का वर्णन पाया जाता है। बहुत सी ऐसी कहानियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें राजा के न्याय की कथा, अर्थाभाव के कारण जनता को कष्ट, बहु विवाह तथा बाल विवाह का उल्लेख पाया जाता है। इन कथाओं को सामाजिक कहानियों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

(६) लोक-साहित्य में पौराणिक कथाओं का भी अभाव नहीं है। शिवि,

दधीचि, सत्य हरिश्चन्द्र तथा नल-दमयन्ती की कथा लोग बड़े चाव से सुनते हैं। गोपीचन्द, राजा भरथरी तथा सरवन (श्रवण कुमार) की कथा भी कुछ कम प्रसिद्ध नहीं है। सारंगा-सदाबृज की कहानी लोगों में बड़ी लोकप्रिय है। जहाँ पहिली (शिवि आदि) कहानियाँ पौराणिक हैं वहाँ दूसरी कथाएँ (गोपीचन्द्र, भरथरी) पौराणिक न होते हुए भी पौराणिकता के पुट से युक्त हैं। इस प्रकार से लोक-कथाओं को प्रधानतया इन्हीं उपर्युक्त छः श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। अन्य प्रकार की कहानियों का भी इन्हीं श्रेणियों में अन्तर्भाव हो सकता है।

(२) डा० सत्येन्द्र का वर्गीकरण

डा० सत्येन्द्र ने ब्रज की लोक-कथाओं को निम्नांकित आठ श्रेणियों में विभाजित किया है[1]—(१) गाथाएँ (२) पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएँ (३) परी की कथाएँ (४) विक्रम की कहानियाँ (५) बुझौवल सम्बन्धी कहानियाँ (६) निरीक्षण गर्भित कहानियाँ (७) साधु-पीरों की कहानियाँ (८) कारण निर्देशक कहानियाँ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन श्रेणियों का अन्तर्भाव पूर्वोक्त वर्गीकरण में ही हो जाता है।

(३) डा० सेन का वर्गीकरण

डा० दिनेशचन्द्र सेन ने बंगाल की लोककहानियों को चार भागों में विभक्त किया है।[2]

(१) रूप कथा (Supernatural tales)
(२) हास्य कथा (Humurous tales)
(३) व्रत कथा (Religious tales)
(४) गीत कथा (Nursery tales)

डा० सेन के मतानुसार रूप कथाएँ वे हैं जिनमें किसी अमानवीय एवं अप्राकृतिक, अद्भुत वस्तु का वर्णन हो। इसके अन्तर्गत भूत-दूत, प्रेत, देवता तथा दानव आदि की कहानियाँ आती हैं। कहानियों में अलौकिकता का पुट एक आवश्यक अंग माना जाता है। इस प्रकार की अमानवीय कहानियाँ प्रायः सभी प्रान्तों में पायी जाती हैं। दूसरी प्रकार की वे कथाएँ हैं जिनको सुनकर श्रोताओं के हृदय में हास्य रस की उत्पत्ति होती है। ऐसी कथाओं को बालक बहुत पसन्द करते हैं। व्रत कथा

१. डा० सत्येन्द्र : ब्र० लो० सा० अ० पृ० ८३
२. डा० सेन : फोक लिट्रेचर आफ् बंगाल

किसी विशेष पर्व या त्यौहार के दिन कही जाती है। अन्तिम श्रेणी की कथाएँ वे हैं जिन्हें बच्चों को पालने में झुलाते समय कहा जाता है। इन्हें अंगरेजी में क्रेडेल टेल्स (Cradle tales) या नरसरी टेल्स (Nursery tales) कहते हैं। गाँव की बूढ़ी स्त्रियाँ अपने बच्चों को पालने अथवा गोद में ले कर अनेक कहानियाँ सुनाती है। डा० सेन की इन गीत-कथाओं का अन्तर्भाव उपदेशात्मक या मनोरंजनात्मक कथाओं के भीतर मानना चाहिए।

(ग) लोक-कथाओं की विशेषताएँ

लोक-कथाओं का सम्यक् अनुसन्धान करने पर उनकी अनेक विशेषताओं का पता चलता है। इन विशिष्टताओं को निम्नांकित आठ भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) प्रेम का अभिन्न पुट।
(२) अश्लील शृङ्गार का अभाव।
(३) मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य।
(४) मङ्गल-कामना की भावना।
(५) संयोग में कथाओं का अन्त।
(६) रहस्य, रोमाञ्च एवं अलौकिकता की प्रधानता।
(७) उत्सुकता की भावना।
(८) वर्णन की स्वाभाविकता।

१. प्रेम का अभिन्न पुट

अधिकांश लोक-कथाओं मे प्रेम का अभिन्न पुट पाया जाता है। मानव जीवन से सम्बन्ध रखनी वाली इन कहानियों में प्रेम का वर्णन होना नितान्त स्वाभाविक है। इनमें कही तो भाई और बहन का विशुद्ध प्रेम पाया जाता है तो कही माता का अपनी पुत्री के प्रति अकृत्रिम वात्सल्य प्रेम। किस प्रकार माँ अपने प्यारे पुत्र को प्राणों से भी अधिक प्यार करती है, गरीबी में अपने दिनों को काटते हुए भी अपने लाड़ले को कष्ट नहीं होने देती और उसे कभी भी अपनी आँखों से ओझल नही करती इत्यादि अनेक प्रकार के चित्र इन कहानियों में देखने को मिलते है। पत्नी का अपने पति के प्रति जिस पवित्र और दिव्य प्रेम का वर्णन इन कथाओं मे मिलता है वह सचमुच ही अलौकिक और आदर्श है। हिन्दी के प्रेम-मार्गी कवियों ने जिन आख्यानों को लेकर अपने काव्यों की रचना की है वे प्रायः सभी प्रेम की आधारशिला पर निर्मित हैं।

(२) अश्लीलता का अभाव

लोक-कथाओं में प्रेम का पुट प्रचुर परिमाण में होने पर भी इनमें अश्लीलता का अभाव पाया जाता है। कुत्सित प्रेम—जो आधुनिक कहानियों का प्रधान वर्ण्य विषय बन गया है—इनमें कहीं भी दृष्टि गोचर नहीं होता। काम-वासना या सौन्दर्य-लोभ से जनित प्रेम विशुद्ध कहलाने का अधिकारी नही है। यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि ग्रामीणों द्वारा गढ़ी गई इन कहानियों में कहीं ग्राम्यता नहीं आने पायी है। प्रेम का भद्दा प्रदर्शन आधुनिक कहानियों की विशेषता भले ही हो परन्तु लोक-कथाओं की नहीं है।

(३) मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य

इन कथाओं में मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य स्थापित किया गया है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से हमारा अभिप्राय उन वस्तुओं से है जो मानव के जीवन में अन्वय-व्यतिरेक से अनुस्यूत हैं। सुख-दुःख, आशा-निराशा, काम, क्रोध, मद, लोभ, एषणा आदि ऐसी ही प्रवृत्तियाँ है जो सदा से बनी रही हैं और सदा बनी रहेंगी। इन्हीं मूल प्रवृत्तियों का वर्णन इन कहानियों में उपलब्ध होता है। आज कल की अनेक कहानियाँ किसी क्षणिक घटना को लक्षित कर लिखी जाती हैं। अतएव उनका स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु अधिकांश लोक कहानियाँ किसी विशेष घटना या पात्र को लेकर नहीं लिखी गई होती हैं। इनकी रचना जीवन की मूलभूत प्रवृत्तियों को लेकर की जाती है। इनमें जिन घटनाओं का वर्णन होता है वे शाश्वतिक सत्य की प्रतीक होती हैं। 'मानिक चन्द' की कथा ऐसी ही है जिसमें भाग्य परिवर्तन के सत्य को बड़ी ही सुन्दर रीति से दर्शाया गया है।

(४) मङ्गल-कामना की भावना

मङ्गल-कामना की भावना इन कहानियों की प्रधान विशेषता है। ग्रामीण कथाकार संसार का कल्याण चाहता है। विश्व के मङ्गल की इच्छा करता है। उसकी यही उत्कट अभिलाषा रहती है कि संसार में सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो। लोक-कथाओं में—

"सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्॥"

की भावना सर्वत्र व्याप्त दिखायी देती है। कहानीकार यह चाहता है संसार में सब की भलाई हो और कोई भी व्यक्ति दुःखी न रहे।

(५) सुख और संयोग में कथाओं का अन्त

लोक-कथाओं का पर्यवसान दुःख में नहीं प्रत्युत सुख में होता है, वियोग में नहीं बल्कि संयोग में होता है। जन-जीवन सम्बन्धी कहानियों में दुःख, निराशा, हानि और विपत्तियों के प्रसंग न आये हों ऐसी बात नहीं है। ये प्रसंग आये हैं और अधिक संख्या में ऐसी कहानियाँ पायी भी जाती हैं। परन्तु कहानी के अन्त में दुःख-सुख के रूप में परिणत हो जाता है, निराशा आशा में बदल जाती है और हानि के स्थान पर लाभ दीखने लगता है। कथा के नायक के मार्ग से आपदाएँ आप से आप हटती दिखायी पड़ती हैं और अन्त में उसका पथ प्रशस्त बन जाता है। भारतीय मनीषा दुःख में जीवन के पर्यवसान की कल्पना नहीं कर सकती। इस लिए भारतीय नाटकों की भाँति भारतीय लोक-कहानियाँ भी सुखान्त हैं, दुःखान्त नहीं। इनके अन्त में 'भरत- वाक्य' के रूप में यह वाक्य सदा उपलब्ध होता है कि :—

भगवान् ने जैसे अमुक व्यक्ति के सुख के दिनों को लौटाया उसी प्रकार सभी लोगों के सुख के दिन लौटें।"

(६) अलौकिकता की प्रधानता

कुछ कहानियों में अलौकिकता का अंश भी उपलब्ध होता है। रहस्य-रोमांच, भूत-प्रेत पिशाच, दानव, परी आदि से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का वर्णन भी कहानियों का वर्ण्य विषय होता है। इनमें अद्भुत रस की प्रधानता रहती है। इनको सुनने में श्रोताओं की रोचकता बनी रहती है। राजाओं और वीरों के अलौकिक पराक्रम की कहानियाँ भी इसके अन्तर्गत आती हैं। राजा चन्द्रभानु की कथा इसका सुन्दर उदाहरण है। इनके सात लड़कों ने विभिन्न देशों में जाकर वीरता तथा पराक्रम के अद्भुत कार्यों को कर दिखाया था। साधारण जन ऐसी कथाओं को बड़े चाव से सुनते हैं।

(७) उत्सुकता की भावना

कहानी का सब से बड़ा गुण उत्सुकता की भावना को बनाये रखना है। जिस कहानी को सुनने के लिए श्रोतागण उत्सुक न दिखायी पड़ें तो यह समझ लेना चाहिए उस कथा में कुछ आकर्षण नहीं है। इस कसौटी पर कसने पर लोक-कथाएँ खरी उतरती हैं। इनको सुनते समय कथानक के आगे वाले अंश को सुनने की लालसा बनी रहती है। यह बात विशेष कर रूप-कथाओं के विषय में पायी जाती है। श्रोताओं को ऐसी कथाओं को सुनने की उत्कण्ठा इतनी अधिक होती है कि बार-बार वे यही पूछते रहते हैं कि "इसके बाद क्या हुआ ?"

(८) वर्णन की स्वाभाविकता

वर्णन की स्वाभाविकता कहानी-कला की एक प्रधान विशेषता है जो ग्रामीण कथाओं में अधिक पायी जाती है। जो घटना जैसी है उसका उसी रूप में वर्णन लोक-कथाओं का प्रधान लक्षण है। इनमें अतिशयोक्ति का पुट प्रायः नहीं उपलब्ध होता। इसीलिये इनमें भारतीय संस्कृति का सच्चा चित्रण सुरक्षित है। आधुनिक कहानियों में अतिरंजना की जो प्रवृत्ति लक्षित होती है उनका इन कथाओं में प्रायः अभाव है। 'तिरिया चरित्तर' शीर्षक कहानी में स्वाभाविकता कूट-कूटकर भरी हुई है।

शैली

लोक-कथाओं की शैली बड़ी सरल तथा सीधी सादी होती है। इनमें जिन वाक्यों का प्रयोग किया जाता है वे बड़े छोटे होते हैं। साधारण वाक्य को छोड़कर संयुक्त या मिश्र वाक्यों का इनमें अभाव होता है। जैसे "एक था राजा। उसके सात लड़के थे। सातों बड़े वीर थे।" इत्यादि। लोक-कथाओं की भाषा में शब्दाडम्बर नहीं पाया जाता। कथाकार के सम्मुख अनायास जो शब्द उपस्थित हो जाते हैं उन्हीं से वह उनकी रचना करता है। अनमेल, बेजोड़ या भोंड़े शब्दों की योजना इनमें नहीं मिलती। इन कथाओं की कथावस्तु जितनी स्वाभाविक है इनकी भाषा भी उतनी ही अकृत्रिम है। ये कथाएँ अबाध गति से प्रवहमान सरिताओं की भाँति हैं जिनमें अवगाहन कर जन का मानस आनन्द लेता है। जिनका जल निर्मल तथा शीतल होने के कारण पान करने वालों को संजीवनी शक्ति प्रदान करता है।

लोक-कथाएँ प्रधानतया गद्य में ही पायी जाती हैं परन्तु बीच-बीच इनमें पद्यों का भी प्रयोग किया गया है। चम्पू काव्य की परिभाषा बतलाते हुए संस्कृत के आचार्यों ने इसे पद्य-गद्यमय काव्य कहा है। इस प्रकार इन कथाओं में चम्पू शैली का प्रयोग उपलब्ध होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि श्रोताओं पर स्थायी प्रभाव जमाने के लिए कथा के बीच-बीच में पद्य की अवतारणा की गई है। कुछ कहानियों में तो पद्यों की संख्या बहुत अधिक है। 'मानिकचन्द' तथा 'लछटकही' की भोजपुरी कथाओं में हृदय के मार्मिक उद्‌गार पद्य के रूप में प्रकट हुए हैं। गद्य-पद्य की इस गंगा-जमुनी ने कथाओं के महत्त्व तथा उनकी प्रभावोत्पादकता को बहुत अधिक बढ़ा दिया है।

वेदों में पुरुरवा और उर्वशी, विश्वामित्र और नदियाँ तथा यम-यमी के प्राचीन उपाख्यान पाये जाते हैं जिन्हें हम लोक कहानियों का पूर्व रूप कह सकते हैं। ये

उपाख्यान भी कथोपकथन की शैली में लिखे गये हैं तथा इनकी रचना में गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग किया गया है। लोक-कथाओं के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। इस प्रकार इन कथाओं की शैली का बीज वैदिक उपाख्यानों में उपलब्ध होता है।

लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों में अन्तर

प्राचीन लोक कथाओं और आधुनिक कहानियों में बड़ा अन्तर है; जिसे (१) रूपगत, और (२) विषयगत इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कोई कोई आधुनिक कहानी बड़ी लम्बी पायी जाती है जैसे प्रेमचन्द की 'पिसनहारी का कुँआ' शीर्षक कहानी। परन्तु लोक-कथाओं की कथावस्तु प्रायः छोटी होती है। वास्तविक बात तो यह है कि लोक-कहानी जितनी छोटी होगी वह उतनी ही सुन्दर और मनोरंजक होगी।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की कथाओं के विषयगत भेद पर ध्यान देते ही यह स्पष्ट दिखायी पड़ता है कि आजकल की कहानियों में सामाजिक वैषम्य, राजनीतिक कोहाहल और आर्थिक शोषण का चित्रण है। प्रेम का अश्लील और भद्दा प्रदर्शन भी कुछ कहानियों में पाया जाता है। परन्तु लोक-कथाओं में न तो सामाजिक वैषम्य का वर्णन है और न आर्थिक शोषण का। राजनीतिक चहल-पहल भी इन कथाओं में नहीं मिलती। इन प्राचीन लोक-कहानियों में जिस समाज का वर्णन है वह सुखी है। इसमें न तो रोटी के लिए संघर्ष की आवाज सुनायी पड़ती है और न मजदूर की वाणी। इस प्रकार लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों का अन्तर स्पष्टतया प्रतीत होता है।)

(घ) लोककथा सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली

लोक-कथाओं से सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जिनका प्रयोग प्रचुरता से किया जाता है जैसे लीजेण्ड और मिथ। हिन्दी में अभी इनके लिए उपयुक्त शब्द उपलब्ध नहीं हैं। अतः अगले पृष्ठों में अंग्रेजी के मूल शब्दों को ही देकर उनकी व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। इन पारिभाषिक शब्दों की संख्या अधिक है परन्तु स्थानाभाव के कारण कुछ प्रसिद्ध शब्दों का ही यहाँ विवेचन किया जाता है।

१—फेबुल (Fable)

जानवरों से सम्बन्ध रखने वाली उस कथा को फेबुल कहते हैं जिसमें कोई

उपदेश दिया गया रहता है। इन कथाओं में पशु-पक्षी पात्रों के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। जानवरों की विशेषताओं को रखते हुए भी ये पात्र मनुष्य के समान बातचीत तथा अभिनय करते हुए पाये जाते हैं। इस प्रकार की लोक-कथाओं का प्रधान उद्देश्य नैतिक शिक्षा देना या उपदेश की प्रवृत्ति होती है। फेबुल के दो भाग होते हैं—(१) कथा का वह भाग जिसमे नैतिक शिक्षा को उदाहरण देकर समझाया जाता है, और (२) उपदेश-कथन जो किसी लोकोक्ति के रूप में होता है। उदाहरण के लिए हितोपदेश की 'व्याघ्र-ब्राह्मण' कथा में कथानक का अंश प्रथम कोटि में आयेगा तथा निम्नांकित उपदेश द्वितीय कोटि में :—

कंकणस्य तु लोभेन, मग्नः पंके सुदुस्तरे।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः, दुर्बलः पथिको यथा॥

फेबुल को लोक-कथाओं का सबसे प्रारम्भिक रूप समझना चाहिये। पशु-पक्षी संबंधी कथाओं मे जानवरों की विशेषताओं का प्रतिपादन नहीं पाया जाता प्रत्युत उनमें मानव को शिक्षा-देने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। अथवा मनुष्य के जीवन के किसी अंश को लेकर उस पर व्यङ्ग्योक्ति कही जाती है। फलस्वरूप हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उपर्युक्त प्रकार की कथायें लोक-सामान्य की रचनायें नहीं हैं प्रत्युत ये सभ्य तथा संस्कृत व्यक्तियों द्वारा निर्मित हैं; अन्यथा इनमें उच्च कोटि की बहुमूल्य नैतिक शिक्षा का इतना प्राचुर्य नहीं होता। यह संभव है कि शिक्षित पुरुषों के द्वारा इन कथाओं का निर्माण हो जाने पर जनता ने इन्हें अपना लिया हो और इस प्रकार ये इनकी मौखिक सम्पत्ति बन गये हों।

भारतवर्ष में प्राचीनतम फेबुल्स पाये जाते हैं। कथा-सरित्सागर, पंचतन्त्र तथा हितोपदेश पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाओं का अनन्त भाण्डार हैं। "शुक-सप्ततिः" नामक ग्रन्थ केवल शुक (सुग्गा) से सम्बन्धित ७० कहानियों का संग्रह है। पश्चिमी देशों में 'इसाप्स फेबुल्स' के नाम से अनेक कहानियाँ प्रचलित है। इसाप (Aesop) ईसापूर्व ६०० ई० में उत्पन्न हुआ था। परन्तु लोक-कथाओं के क्षेत्र में भारत ही संसार का गुरु रहा है। इसी देश की कहानियाँ अरब से होती हुई यूरोप में फैलीं। पचतंत्र की कुछ कहानियों का संग्रह मध्य युग में यूरोप में 'Fables of Bidpai' के नाम से किया गया था। इस ग्रन्थ में संग्रहीत कहानियों का प्रभाव इसाप की कहानियों में भी परिलक्षित होता है। लोक-कथाओं में पशु-पक्षी सम्बन्धी अनेक कहानियाँ उपलब्ध होती हैं। उन सब को 'फेबुल्स' की श्रेणी में रखा जा सकता है।

अंग्रेजी में चासर, हेनरीसन, ड्राइडन तथा गे ने इस प्रकार की कथायें लिखीं

हैं। फ्रान्स में ला फान्तेन (La Fontaine) आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ लोक-कथाकार है। जर्मनी में लेसिंग (Lessing) ने 'फेबुल्स' का सुन्दर संग्रह प्रस्तुत करने के अतिरिक्त इनके इतिहास तथा साहित्यिक महत्त्व का गंभीर विवेचन भी किया है।

२—फेबलियो (Fabliau)

यह पद्यमयी वह गाथा है जिसमें हास्य तथा व्यंग्य की प्रधानता होती है। इसकी रचना सरल तथा सरस शैली में की जाती है। फ्रान्स देश में १२ वीं से १४ वी शताब्दी तक इस प्रकार की रचनाओं की प्रधानता थी। फ्रान्स से इनका प्रचार यूरोप के अन्य देशों में हुआ। चासर की 'केन्टरबरी टेल्स' में इस प्रकार की पद्यमयी गाथायें उपलब्ध होती हैं। अंग्रेजी लोक-गाथाओं (Ballads) में भी ऐसी रचनाएँ परिलक्षित होती हैं।

फेबलियो में जो व्यङ्ग-उक्ति पायी जाती है वह प्रधानतया किसी स्त्री, पादड़ी तथा विवाह की ओर लक्ष्य करती है। इन गाथाओं की रचना उन लेखकों के द्वारा की जाती है जो वर्तमान जन-जीवन तथा प्रथाओं को लेकर अपना कथानक चुनते हैं।

फेबलियो की रचना प्रधानतया जन-मन के अनुरंजन के लिए की जाती है। इनका प्रधान वर्ण्य-विषय चालाक पति, अविश्वासपात्र पत्नी तथा धोखा देने वाला प्रेमी होता है। इसका उदाहरण 'The Dog in the Closet' नामक गाथा है। हिन्दी में इस प्रकार की रचनाएँ प्रायः नहीं पायी जातीं।

३—फेयरी (Fairy)

यह शब्द उन अमानवीय (Supernatural) जीवों को बोधित करता है जो प्रायः अदृश्य होते हैं। ये कहीं तो उपकार करने वाले तथा सहायक के रूप में दिखायी पड़ते हैं और कहीं दुष्ट, खतरनाक, बदमाश तथा चिड़चिड़े स्वभाव वाले चित्रित किये गये हैं। इनका निवास स्थान यही धरती है जहाँ ये मनुष्यों के सम्पर्क में आते रहते हैं। फेयरी शब्द लैटिन के फेटुम (Fatum) से बना हुआ है जिसका अर्थ जादू या इन्द्रजाल होता है। इसका दूसरा अर्थ वह स्थान है जहाँ ऐन्द्रजालिक या मोह लेने वाले जीव निवास करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के समुदाय के लिए भी इस (फेयरी) शब्द का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में इस अन्तिम अर्थ में ही इसका सर्वाधिक प्रयोग होता है। 'फेयरी लैण्ड' उस स्थान को कहते हैं जहाँ 'फेयरी' निवास करते हैं। हिन्दी में फेयरी के लिए 'अप्सरा' या 'गन्धर्व' और

'फेयरी लैण्ड' के लिए अप्सरा-लोक या 'गन्धर्वपुरी' का व्यवहार किया जा सकता है। यूरोपीय देशों में 'फेयरी' की कल्पना पुल्लिग के रूप में की गई है परन्तु भारत में अप्सरा स्त्री के रूप में चित्रित की गई है।

पश्चिमी देशों में 'फेयरी' की कल्पना छोटे, बौने के रूप में की गई है। वह अपनी इच्छानुसार अदृश्य हो सकता है; वह पृथ्वी के नीचे या पहाड़ की कन्दरा में अथवा पत्थरों के ढेर के बीच में रहता है। वह प्रायः हरे कपड़े पहिनता है। कभी-कभी उसकी त्वचा तथा बाल भी हरे दिखायी पड़ते हैं। फेयरी कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता। जब कभी वह बच्चों को चुरा ले जाता है उस समय भी उनको वह क्षति नहीं पहुँचाता। यदि उसके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है तब वह घर में आग लगाकर अथवा खेतों में खड़े अन्न को नष्ट कर इसका बदला चुकाता है। वह खेतों में गाय का दूध दुह लेता है, कपड़ों को गन्दा कर देता है तथा दूध को दही के रूप में परिणत कर देता है। परन्तु वह गरीबों को धन-धान्य देकर तथा बच्चों को खिलौना देकर सहायता भी करता है।

फेयरीज़ को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। (१) अप्सरा-लोक में समुदाय रूप में निवास करने वाले (२) व्यक्तिगत रूप में किसी स्थान, घर या पेशा से सम्बद्ध। दूसरे प्रकार के फेयरीज़ अनेक प्रकार से मनुष्य की सहायता करते हैं।

भारतवर्ष में अप्सरा की कल्पना अलौकिक, दिव्य तथा अमानवीय व्यक्ति के रूप में की गई है। इनमें अलौकिक सुन्दरता होती है जिसे देखकर लोग मोहित हो जाते हैं। ये अप्सरालोक में निवास करती हैं जो आकाश में कहीं स्थित है। अप्सराओं का कार्य अपने अद्वितीय सौन्दर्य से लोगों को मोहित कर उन्हें अपने वश में करना है। इनमें मेनका का नाम बड़ा प्रसिद्ध है जिसने विश्वामित्र जैसे ऋषि को अपने मोह-जाल में फँसा लिया था।

फेयरी को साधारण बोलचाल की भाषा में 'परी' कहा जाता है तथा इनके निवास स्थान को 'परीस्तान'। भारत, अरब, तथा यूरोप में इन परियों की कथायें बड़ी प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हैं।

४. फेयरी टेल (Fairy Tale) (परी कथा)

जिन लोक-कथाओं में परियों, अप्सराओं तथा अमानवीय व्यक्तियों की कथा कही गई रहती है उन्हें 'फेयरी टेल' कहते हैं। जर्मन भाषा में इन्हें मार्चेन (Marchen) तथा स्वेडिस भाषा में सागा (Saga) कहते हैं। हिन्दी में इनको 'परियों

की कथा' मे अभिहित किया जा सकता है। इन कहानियों को निम्नांकित छह श्रेणियों (Types) में विभक्त किया जा सकता है।

(१) परियों द्वारा मनुष्यों की सहायता।
(२) परियों द्वारा मनुष्यों को क्षति पहुँचाना।
(३) परियों द्वारा मनुष्यों का अपहरण।
(४) परियों द्वारा कृत्रिम पुत्र को देना।
(५) मनुष्यों द्वारा परीस्तान की यात्रा।
(६) प्रेमिका या प्रेमी के रूप में परी।

परियों द्वारा मनुष्यों के उपकार करने की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। जिन व्यक्तियों पर इनकी कृपा होती है उनको ये धन-धान्य से परिपूर्ण कर देती है। एक फ्रान्सीसी कथा में परियों द्वारा किसी अबला की कारागार से मुक्ति का उल्लेख पाया जाता है जिसके पति ने उसे जेल में डाल दिया था। भारत में परियों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं जिनमे वे व्यक्ति विशेष की आर्थिक सहायता करती हैं, रोगी को रोग-मुक्त कर देती है तथा भूखे को भोजन देती हैं। परन्तु वृद्ध होने पर ये परियाँ मनुष्यों को क्षति भी पहुँचाती है। भोजपुरी प्रदेश में चुड़ैल की कथाएँ प्रसिद्ध हैं जो रात में सोये हुए व्यक्तियों के शरीर में विष्ठा लगाकर चुपके से चली जाती हैं।

परियों द्वारा मनुष्यों का अपहरण भी होता है। कभी वे मनुष्यों का अपहरण कर परीस्तान में ले जाती है अथवा वहाँ आने के लिए उन्हें लालच देती हैं। प्रधानतया वे बच्चों को ही चुराती हैं। कालिदास ने 'शकुन्तला' में मेनका नामक अप्सरा द्वारा शकुन्तला को उड़ाकर ले जाने का उल्लेख किया है। कुछ कथाओं में मनुष्यों द्वारा परीस्तान की यात्रा का वर्णन भी उपलब्ध होता है। परन्तु सबसे रोचक वे कहानियाँ है जिनमें कोई परी प्रेमिका के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। परियों से विवाह करने की भी कथाएँ पायी जाती हैं जिनमें प्रेमी कुछ दिनों तक परीस्तान में रहने के पश्चात् पृथ्वी पर आने की अपनी इच्छा प्रकट करता है। कुछ कथाओं में असली बच्चों को चुराकर परियों के बच्चों को उनके स्थान पर रखने का वर्णन हुआ है।

जर्मन भाषा में 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' प्रसिद्ध हैं। ग्रिम सुप्रसिद्ध भाषा-विज्ञान-वेत्ता थे जिन्होंने जर्मन भाषा में परियों की कथाओं का संग्रह तथा सम्पादन बड़े परिश्रम से किया है। इन्होंने लोक-कहानियों के सम्बन्ध में मौलिक गवेषणा भी की है। इनकी पुस्तक का अनुवाद यूरोप की अनेक भाषाओं में हो चुका है।

भारतीय लोक-कथाओं में परियों की कथाएं प्रचुर परिमाण में पायी जाती हैं। इन कथाओं में आश्चर्य, रोमांच तथा रोमान्स की मात्रा अधिक होती है। इनमें अलौकिकता का पुट पर्याप्त होता है तथा अद्भुत रस पाया जाता है।

५—लीजेण्ड (Legend)

इस शब्द का मूल अर्थ उस वस्तु से था जो धार्मिक पूजा-पाठ के अवसर पर पढ़ी जाती थी। यह प्रधानतया किसी साधु पुरुष का जीवनचरित अथवा धर्म के नाम पर बलिदान होने वाले वीरों की गाथा होती थी। जैसे 'Golden legend os Jacobus de Voragine' जिसमें सन्तों की जीवनियों का संकलन उपलब्ध होता है। कालक्रम के पश्चात् 'लीजेण्ड' उन कथाओं को कहा जाने लगा जो किसी तथ्य के ऊपर आश्रित हुआ करती थी। किसी व्यक्ति या स्थान के विषय में कही गई इन कहानियों में मौखिक परम्परागत सामग्री का भी मिश्रण होता है। अतः लीजेण्ड लोक-कथाओं का वह प्रकार है जिसके कथानक में तथ्य घटना (Facts) तथा परम्परा (Tradition) दोनों का समन्वय पाया जाता है। लीजेण्ड तथा मिथ (Myth) का पार्थक्य विशेष स्पष्ट नहीं है। मिथ में देवतागण प्रधान पात्रों के रूप में प्रस्तुत होते हैं तथा इसका उद्देश्य स्पष्टीकरण होता है। यूरोपीय-देशों में हरकुलीज़ (Hercules) की कथा में मिथ तथा लीजेण्ड दोनों का अंश दिखायी पड़ता है। लीजेण्ड सत्य घटना के रूप में कही जाती है परन्तु मिथ की सचाई उसके श्रोताओं के देवता में विश्वास के ऊपर आश्रित होती है। राजा विक्रमादित्य की कथा 'लीजेण्ड' की श्रेणी में आती है परन्तु भगवान् वामन के द्वारा बलि के छले जाने की कहानी 'मिथ' कही जा सकती है। स्विनर्टन ने पंजाबी कथाओं का संग्रह 'लीजेण्ड्स आफ दि पंजाब' में किया है।

६—मिथ (Myth)

यह वह कथा है जिसको किसी प्राचीन काल में घटित दिखलाया गया हो। इन कथाओं में किसी देश के धार्मिक विश्वास, प्राचीन वीर, देवी-देवता तथा स्थानीय जनता के अलौकिक परम्पराओं का वर्णन होता है। जी० एल० गोमे (Gomme) ने लिखा है कि मिथ के द्वारा विज्ञान-पूर्व युग की घटनाओं का वैज्ञानिक रीति से स्पष्टीकरण किया जाता है। इन कथाओं को हिन्दी में 'पौराणिक कथा' कह सकते हैं। ये कथाएं पृथ्वी तथा मनुष्य की सृष्टि कथा (जैसे मनुष्य की उत्पत्ति कैसे हुई, पृथ्वी कैसे बनी आदि) जीव-जन्तुओं की कहानी (जैसे उल्लू को दिन में क्यों नहीं दिखायी पड़ता, कौवे की एक ही आँख क्यों है ?) को कहती है। अमुक प्राकृतिक

दृश्य ऐसा क्यों हैं ? (चन्द्रमा में कालिमा कहाँ से आ गई तथा सूर्य के सात घोड़े आकाश में कैसे चलते हैं), विभिन्न धार्मिक विधि-विधान किस प्रकार प्रारम्भ हुए, इनका भी वर्णन इन पौराणिक कथाओं में पाया जाता है। मिथ की प्रधान विशेषताएँ निम्नांकित हैं :—

(१) इनकी पृष्ठ-भूमि प्रायः धार्मिक होती है।
(२) इनमें प्रधान पात्र देवी तथा देवता होते हैं।
(३) एक कथा का दूसरी कथा से संबंध होता है।

कोई पौराणिक कथा तभी तक 'मिथ' कही जा सकती हैं जब तक उसके पात्र देवी-देवता हैं अथवा उन पात्रों में देवत्व की भावना बनी रहती है। परन्तु जब ये पात्र देवत्व की कोटि से नीचे उतर कर मनुष्यत्व की श्रेणी में आ जाते हैं तब उस कथा को 'लीजेण्ड' कहने लगते हैं। भारतीय पुराणों की सृष्टि सम्बन्धी कथाएँ, देवासुर-संग्राम तथा समुद्र-मन्थन की कथा 'मिथ' कही जा सकती हैं। परन्तु भरथरी और गोपीचंद की गाथा 'लीजेण्ड' है। किसी साधारण-कथा को 'फोकटेल' कहा जाता है। 'मिथ' से सम्बद्ध शास्त्र को 'माइथोलोजी' (पुराणशास्त्र) कहते हैं जिसमें प्राचीन देवी-देवताओं, सृष्टि-कथा तथा अलौकिक घटनाओं का वर्णन होता है। वेदों तथा पुराणों में 'माइथोलोजी' की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। डा० मेकडानेल ने वेदों के सम्बन्ध में 'वेदिक माइथोलोजी' तथा डा० ए० बी० कीथ ने 'इण्डियन माइथोलोजी' नामक गम्भीर तथा विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों की रचना की है।

आदिम जातियों में प्रचलित अधिकांश कथाएँ 'मिथ' की श्रेणी में आती हैं। डा० एलविन ने मध्य-प्रदेश की पौराणिक कथाओं का संग्रह 'Myths of Middle India' नाम से किया है जो आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुआ है।

७—मोटिफ (Motif)

मोटिफ शब्द का अर्थ प्रधान 'अभिप्राय' या भाव होता है जिसका प्रभाव सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। स्टिथ टामसन के अनुसार 'मोटिफ' वह अंश है जिसमें फोकलोर के किसी भाग (Item) का विश्लेषण किया जा सके। लोक कला में डिजायन के मोटिफ होते हैं। लोक-संगीत में भी मोटिफ पाये जाते हैं परन्तु लोक-कथा के क्षेत्र में ही इनका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया गया है।

साधारणतया 'मोटिफ' शब्द का प्रयोग परम्परागत-कथाओं के किसी तत्त्व के लिए किया जाता है। परन्तु इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि परम्परा

का वास्तविक अंग बनने के लिए यह तत्त्व (Element) ऐसा प्रसिद्ध होना चाहिए कि इसे सर्व साधारण जनता स्मरण रख सके। अतएव यह तत्त्व साधारण न होकर असाधारण होना चाहिए। माता को मोटिफ नहीं कह सकते परन्तु निर्दयी माता या विमाता 'मोटिफ' की संज्ञा प्राप्त कर सकती है। हिन्दी लोक-गीतों में वर्णित 'दारुनिया सास' मोटिफ का अच्छा उदाहरण है। इसी विषय को इस प्रकार समझाया जा सकता हैं :—

राम कपड़ों को पहन कर शहर को गया। इसमें कोई उल्लेख योग्य मोटिफ नही है। परन्तु यह कहा जाय कि "मोहन दिखायी न पड़ने वाली (अदृश्य) पगड़ी सिर पर बाँधकर, जादू के घोड़े पर सवार होकर, उस देश को गया जो सूर्य के पूर्व और चन्द्रमा के पश्चिम था।" तो इसमें चार मोटिफ हैं (१) अदृश्य पगड़ी (२) जादू का घोड़ा (३) आकाश मार्ग से यात्रा, और (४) अद्‌भुत देश।

भारतीय लोक-कथाओं में शृगाल या शशक को बड़ा चालाक, धूर्त तथा 'काइयाँ' जानवर के रूप में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार से गधा मूर्ख, भारवाही पशु के रूप में दिखायी पड़ता है। ये दोनों ही इस प्रकार की कथाओं के 'मोटिफ' है। लोक-कथाओं में हीरामन तोते का मनुष्य की बोली में बोलना, लिलही घोड़ी पर चढ़ कर किसी व्यक्ति का भगना तथा विशेष प्रकार के पक्षियों (कौवा, तोता आदि) द्वारा सन्देश भिजवाना मोटिफ के अन्तर्गत आता है।

'मोटिफ' तथा 'टेल-टाइप' (Tale Type-कथाओं के प्रकार) में थोड़ा अन्तर है। मोटिफ का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। यह अन्तर्राष्ट्रीय है। अनेक देशों की लोक-कथाओं में एक ही प्रकार के मोटिफ मिल सकते हैं तथा मिलते भी हैं परन्तु 'टाइप' का क्षेत्र किसी देश-विदेश की भौगोलिक सीमा के भीतर ही होता है।

विद्वानों ने 'मोटिफ' तथा 'टाइप' इन दोनों विषयों का बड़ा गंभीर अध्ययन किया है। स्टिथ टामसन ने अपने 'Motif-Index of Folk-literature' भाग १—६ नामक विशालकाय ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। दूसरा ग्रन्थ आर्ने तथा टामसन रचित Types of the Folk Tale है जिसमें लोक-कथाओं के विभिन्न प्रकारों की प्रगाढ़ मीमांसा की गई है। इस सम्बन्ध में ये दोनों ही ग्रन्थ पठनीय हैं।

८—टाइप (Type)

लोक साहित्य के विद्वान इस शब्द का प्रयोग उन कथाओं के लिए करते हैं जो मौखिक परम्परा में अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखने में समर्थ हैं। कोई कथा जो स्वतन्त्र कहानी के रूप मे कही जाती है 'टाइप' समझी जा सकती है।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अपनी कुछ विशेषताओं (Characteristics) के कारण कोई कथा का वर्ग दूसरी कथाओं से पृथक् होता है। इस वर्ग को 'टाइप' कहते हैं। लोक-कथाओं के शोधी विद्वान् कथाओं के 'टाइप' का अनुसंधान करने के लिए पहले उनके विभिन्न भेदों(Variants) को खोज निकालते हैं। जब अनुसन्धानकर्ता इन विभिन्न भेदों में किन्हीं विशेष समानताओं को पाता है तब वह इनको एक श्रेणी (Category) में रख देता है। फिर वह इन समान गुणों का अध्ययन करता है और उनको नोट कर लेता है। पुनः वह इन सामान्य गुणों को रखने वाली सभी कथाओं को एकत्र करता है। इस प्रकार सामान्य-गुण-समन्वित इन कथाओं का एक पृथक् 'टाइप' बन जाता है।

यूरोप तथा पश्चिमी एशिया की लोक-कथाओं का वर्गीकरण विद्वानों ने बड़े परिश्रम से किया है। इस विषय में आर्ने तथा टामसन की Types of the Folktale नामक पुस्तक प्रामाणिक मानी जाती है। भारतीय लोक-कथाओं का वैज्ञानिक पद्धति से वर्गीकरण अभी नहीं हुआ है।

———

अध्याय ११

लोकनाट्य का विवेचन

लोकनाट्य की चर्चा

१. प्राचीनता

भारतीय नाटक का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। भरत मुनि (ई० पू० तीसरी शताब्दी) ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में इस विषय का विशद वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त धनंजयकृत 'दशरूपक' तथा विश्वनाथ कविराज लिखित 'साहित्य-दर्पण' में इसके संबंध में बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। परन्तु भरत के नाट्यशास्त्र का महत्व सबसे अधिक है। यह ग्रंथ नाट्यविद्या का मूल तथा स्रोत है।

नाटक की उत्पत्ति के संबंध में नाट्यशास्त्र में एक कथा दी गई है जिससे यह पता चलता है कि इंद्र तथा अन्य देवताओं ने सब लोगों के मनोरंजन के लिये ब्रह्मा से कोई मनोविनोद का साधन उत्पन्न करने की प्रार्थना की। वे ऐसा साधन चाहते थे जो श्रव्य तथा दृश्य दोनों ही हों तथा जिससे सभी वर्णों के लोग समान रूप से भाग ले सकें।[1] चूंकि वेदों के पठन-पाठन का अधिकार शूद्रों के लिये निषिद्ध था अतः पंचम वेद की रचना अत्यंत आवश्यक प्रतीत हुई। इस प्रकार सभी वर्णों के मनोरंजन के लिये ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर ब्रह्मा ने 'नाट्यवेद' की सृष्टि की।[2]

जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात् सामभ्योगीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसमाथर्वणादपि॥

उपर्युक्त कथा से दो बातें स्पष्टतया प्रतीत होती हैं: (१) नाट्यवेद का निर्माण सभी वर्णों के लिये किया गया था, (२) इसके निर्माण का प्रधान कारण जन-मन का अनुरंजन था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नाटक की अपील सार्वजनीन होती है तथा यह साधारण जनता के मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन है। महाकवि कालिदास ने इसी तथ्य का पुष्टीकरण करते हुए लिखा है

---

१. नाट्यशास्त्र, १/१७
२. वही, १/१७/१८

कि नाटक विभिन्न प्रकार की रुचि रखने वाले मनुष्यों के मनोरंजन का अद्वितीय साधन है।)

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।

वेदों में विभिन्न नाटकीय तत्त्वों के बीज उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में जो संवादात्मक ऋचाएँ पाई जाती हैं उन्हें नाटकीय संवादों का मूल रूप कहा जा सकता है। सामवेद के गीतों का नाटक के निर्माण में कुछ कम योगदान नहीं है। विभिन्न धार्मिक तथा सामाजिक अवसरों पर नृत्य की प्रथा जनता में प्रचलित थी। इस प्रकार गीत (संगीत) नृत्य तथा अभिनय की त्रिवेणी ने प्राचीन नाट्य को जन्म दिया। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में भूतपूर्व सरगुजा रियासत की पहाड़ी में अवस्थित 'सीताबेंगा' तथा 'जोगीमारा' की गुफाओं में पुराना प्रेक्षा-गृह बना हुआ है। पाणिनि ने नाटक खेलने वाले नटों का उल्लेख अपनी अष्टाध्यायी में किया है।[1] पतंजलि ने महाभाष्य में 'कंसबध' और 'बलिबंध नाटक' खेले जाने की चर्चा की है। पालि ग्रंथों में भिक्षुओं के लिये नाटक देखना निषिद्ध बतलाया गया है। एक स्थान पर ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि कीटागिरि की रंगशाला में नृत्य देखने के कारण दो भिक्षुओं को दंड दिया गया था क्योंकि यह कर्म उनके धर्म के विरुद्ध था। भास, अश्वघोष तथा कालिदास के नाटकों के पश्चात् तो संस्कृत साहित्य में नाटकों की रचना अबाध गति से होने लगी जिसकी परम्परा बाद में हजारों वर्षों तक अक्षुण्ण रूप से चलती रही।

इन समस्त उल्लेखों से स्पष्ट पता चलता है कि भारतीय नाट्य-साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन है।

२. लोकनाट्यों का विकास

इन देश में मुसलमानी शासन की प्रतिष्ठा हो जाने पर भारतवर्ष की राजनीतिक एकसूत्रता नष्ट हो गई। देश के विभिन्न भागों में छोटे-छोटे राजा राज्य करने लगे। मुसलमानी शासकों की प्रवृत्ति साहित्य तथा नाट्यकला की ओर शत्रुतापूर्ण थी। वे इन्हें नष्ट करने में ही अपनी वीरता समझते थे। फलतः इनके शासन में नाटक रचना तथा रंगशाला का घोर ह्रास हुआ। राजाश्रय का अभाव भी इनके पतन का कारण बना। संस्कृत साहित्य की नाट्य परंपरा, जो हजारों वर्षों से अबाध गति से चली आ रही थी, सदा के लिये नष्ट हो गई।

---

१. भिक्षुनटसूत्रयोः।

इसी समय उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन का प्रवर्तन हुआ जिसके प्रधान प्रतिष्टापक गोस्वामी वल्लभाचार्य जी थे। इन्होंने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। इनके अनुयायियों ने भागवत के दशम स्कंध की कथा को, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण का जीवनचरित वर्णित है, अभिनय के माध्यम से जनता के सामने सजीव रूप प्रदान किया। कृष्ण की बाललीलाओं का अभिनय मंदिरों, मठों तथा अन्य स्थानों में होने लगा जिनको देखने के लिये श्रद्धालु जनता की भीड़ जुटने लगी। श्रीकृष्ण की इसी प्रारंभिक लीला ने आगे चलकर 'रासलीला' का रूप धारण किया जो आज भी मथुरा तथा वृन्दावन में बड़े प्रेम से की जाती है।)

उत्तरी भारत में रामभक्ति के प्रचार का श्रेय स्वामी रामानन्द को प्राप्त है परन्तु रामभक्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा इनके शिष्य गोस्वामी तुलसीदास जी के द्वारा ही हुई। साधारण जनता में कृष्ण भक्ति के प्रचार का जो श्रेय महात्मा सूरदास को प्राप्त है, रामभक्ति के प्रचार का उससे भी कहीं अधिक श्रेय गोस्वामी जी को मिलना चाहिए।

जहाँ तक ज्ञात है, उत्तरी भारत में रामलीला का प्रचार गोस्वामी तुलसीदास जी की देन है। गोस्वामी जी ने सर्वप्रथम काशी में रामलीला करानी प्रारंभ की थी। उनके समय की 'लंका' जहाँ रावण निवास करता था, आज काशी का एक प्रसिद्ध मुहल्ला है। इस प्रकार से भक्ति आंदोलन के प्रभाव से उत्तरप्रदेश में दो लोकधर्मी नाट्य परम्परा का जन्म हुआ—(१) रासलीला, और (२) रामलीला।

इसी समय बंगाल में गौरांग महाप्रभु का आविर्भाव हुआ जिन्होंने उस प्रांत में कृष्णभक्ति का प्रचुर प्रचार किया। श्री चैतन्य भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति का गान करते करते बेसुध हो जाते थे। वे भगवान् की आराधना करते समय कीर्तन भी किया करते थे। बंगाल में आज कीर्तन का जो इतना अधिक प्रचार है है वह चैतन्य महाप्रभु की ही देन है। चैतन्य ने अनेक पवित्र स्थानों की तीर्थयात्रा की। वे काशी भी आए थे और प्रयाग को भी उन्होंने अपने चरण रज से पवित्र किया था। जगन्नाथपुरी की इनकी यात्रा तो प्रसिद्ध ही है। इनके साथ इनके भक्तों तथा शिष्यों की मंडली भी यात्रा करती थी। ये लोग गौरांग महाप्रभु के साथ यात्रा किया करते। यह यात्रा शुद्ध धार्मिक होती थी जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण का भजन तथा कीर्तन प्रधान कार्य होता था। धीरे-धीरे इन यात्राओं तथा कीर्तनों ने लोक-नाट्य का रूप धारण कर लिया जिसमें श्रीकृष्ण की लीलाएँ अभिनय के माध्यम से दिखलाई जाने लगीं। आज बंगाल में 'यात्रा' या 'जात्रा' तथा कीर्तन का प्रचुर प्रचार है। 'दशावतार' तथा 'यक्षगान' में भी 'यात्रा' का स्वरूप दृष्टि-

गोचर होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक-नाटचों का विकास धार्मिक आंदोलनों से प्रेरणा प्राप्त कर हुआ है।

३. लोकनाट्यों की विशेषताएँ

लोक-नाटच की विशेषता उसके लोक-धर्मी स्वरूप में निहित है। लोक जीवन से इनका अत्यंत घनिष्ट संबंध है। यही कारण है कि लोक से संबंधित उत्सवों, अवसरों तथा मांगलिक कार्यों के समय इनका अभिनय किया जाता है। विवाह के अवसर पर अनेक जातियों में स्त्रियाँ बरात बिदा हो जाने पर स्वांग का अभिनय करती है। चाँदनी रात में बालकगण परंपरागत अभिनय प्रस्तुत करते हैं।

४. भेद

लोक-नाटच को हम प्रधाननया दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) प्रहसनात्मक, (२) नृत्यनाटचात्मक (डांस ड्रामा)। प्रथम में जन मन के अनुरंजन के लिये किसी ऐसी घटना को अभिनय का विषय बनाया जाता है जिसे सुन तथा देखकर दर्शक हँसते हँसते लोटपोट हो जायँ। लखनऊ तथा बनारस के भांड़ ऐसे प्रहसनों के अभिनय में अत्यन्त प्रवीण समझे जाते हैं। इसमें नृत्य का अभाव रहता है। नट अपनी वाणी तथा अभिनय की मुद्रा से जनता के हृदय में हास्य रस का संचार करते है। दूसरे प्रकार के लोकनाटच वे हैं जो किसी सामाजिक अथवा पौराणिक घटना को लेकर अभिनीत किए जाते है। इनमें संगीत, नृत्य तथा अभिनय की त्रिवेणी प्रवाहित रहती है। भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित 'बिदेसिया' लोकनाटच इसका सुन्दर उदाहरण है। इसमें किसी विरहिणी स्त्री का चित्रण किया गया है जो अपना दुःखद समाचार किसी बटोही के द्वारा अपने परदेशी पति के पास भेजती है। इस नाटक को खेलनेवाले अभिनय के साथ-साथ नृत्य भी करते जाते हैं। संभाषण के बीच-बीच में गीत भी गाते हैं। इस प्रकार गीत, नृत्य तथा अभिनय सब मिलकर एक अजीब समाँ बाँध देते हैं। दर्शकगण इस लोकनाटच को रात भर देखते हैं फिर भी उनके मन की तृप्ति नहीं होती।

लोक-नाट्यों की विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा :

१) (क) भाषा—लोक नाटचों की भाषा बड़ी सरल तथा सीधी-सादी होती है जिसे कोई भी अनपढ़ व्यक्ति बड़ी आसानी से समझ सकता है। जिस प्रदेश या क्षेत्र में इन नाटकों का अभिनय होता है, नट लोग प्रायः वहाँ की ही क्षेत्रीय बोली (रीजनल डाइलेक्ट) का प्रयोग करते हैं। इससे अभिनय समस्त जनता के लिये बोधगम्य हो जाता है। इनकी भाषा में किसी प्रकार की सजावट या बनावट नहीं

होती। दैनिक क्रिया-कलाप में जिस भाषा का वे व्यवहार करते हैं उसी का प्रयोग अभिनय करते समय भी किया जाता है। ये प्रायः गद्य का ही उपयोग करते हैं परन्तु बीच-बीच में गीत भी गाते हैं।

(ख) संवाद—लोक-नाट्यों के संवाद बहुत छोटे तथा सरल होते हैं। कहीं-कहीं तो प्रश्न तथा उत्तर दो तीन शब्दों में ही सीमित रहता है। लम्बे कथोपकथनों का इनमें नितांत अभाव होता है। ग्रामीण जनता में लम्बे संवाद सुनने के लिये धैर्य नहीं होता। अतः नाटकीय पात्र अपने संवादों को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में ही प्रयोग में लाते हैं।

(ग) कथानक—लोक-नाट्यों का कथानक प्रायः ऐतिहासिक, पौराणिक या सामाजिक होता है। धार्मिक कथावस्तु को लेकर भी अनेक नाटक खेले जाते हैं। बंगाल की 'जात्रा' और 'कीर्तन' का स्रोत धार्मिक है। राजस्थान में अमरसिंह राठौर की ऐतिहासिक कथा का अभिनय किया जाता है। केरल प्रदेश में प्रचलित 'यक्षगान' नामक लोकनाट्य का कथानक प्रायः पौराणिक होता है। उत्तर प्रदेश की रामलीला तथा रासलीला भगवान् राम तथा कृष्ण की कथा से सम्बन्धित है। नौटंकी तथा स्वांग की कथावस्तु समाज से अधिक सम्बन्ध रखती है।

(घ) पात्र—लोक-नाट्यों में प्रायः पुरुष ही विभिन्न पात्रों का काम करते हैं। स्त्री पात्रों का कार्य भी पुरुष ही सम्पादित करते हैं। अब कुछ लोक-नाट्य मंडलियों ने साधारण जनता को आकर्षित करने तथा धन कमाने के लिये इन नाटकों में सुन्दरी लड़कियों का उपयोग प्रारम्भ कर दिया है। लोकनाट्यों के पात्र अपनी वेशभूषा की अपेक्षा अपने अभिनय द्वारा ही लोगों को आकृष्ट करने की चेष्टा करते हैं। जिन पात्रों की अवतारणा इन नाटकों में की जाती है वे समाज के चिरपरिचित व्यक्ति होते हैं—जैसे गाँव का मक्खीचूस बनिया, खूसट बुड्ढा, छैला युवक, दुष्टा सास, कुलटा स्त्री, शराबी पति, पाखंडी साधु, अत्याचारी अफसर आदि।

(ङ) चरित्र चित्रण—लोकनाट्यों में चरित्र-चित्रण बड़ा स्वाभाविक होता है। पात्रों के कथन से ही व्यक्ति के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। विदूषक अपने हाव-भाव तथा मुद्राओं से अपने चरित्र को सार्थक बनाने की चेष्टा करता है। स्त्रियों का चरित्र-चित्रण प्रायः पुरुष ही किया करते हैं। अतः उसमें सजीवता का अभाव रहता है।

(च) रूपयोजना—इन नाटकों में किसी विशेष प्रकार के प्रसाधन, अलंकार, बहुमूल्य वस्त्र आदि की आवश्यकता नहीं होती। कोयला, काजल, खड़िया आदि देशी प्रसाधनों से मुख को प्रसाधित कर तथा उपयुक्त वेशभूषा धारण कर पात्र मंच पर आते हैं।

(छ) रंगमंच—लोक नाट्य खुले हुये रंगमंच पर हुआ करते हैं। जनता मैदान में आकाश के नीचे बैठकर नाटक का अभिनय देखती है। किसी मंदिर के आगे ऊँचा चबूतरा या ऊँचा टीला ही रंगमंच का काम देता है। कहीं-कहीं काठ के ऊँचे तख्ते बिछाकर मंच तैयार कर लिया जाता है। इन रंगमंचों पर परदे नहीं होते। अतः दृश्य की समाप्ति पर कोई परदा नहीं गिरता। सारी कथा अविच्छिन्न रूप से अभिनीत की जाती है तथा दर्शक उसे बड़े धैर्य से देखते हैं। पात्रगण अपना प्रसाधन किसी पेड़ या दीवाल की आड़ में बैठकर करते हैं जो उनके लिये 'ग्रीनरूम' का काम करता है।

५. कुछ प्रसिद्ध लोकनाट्य

भारत के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोक नाट्य प्रचलित हैं। उत्तर भारत में प्रचलित रामलीला और रासलीला की चर्चा पहले की जा चुकी है। मध्य भारत (मालवा) में 'माच' नामक लोकनाट्य प्रसिद्ध है। माच शब्द 'मंच' का अपभ्रंश रूप है। मंच चारों ओर से खुला रहने के कारण इसमें नेपथ्य नहीं होता। दर्शकगण कहीं से भी बैठकर नाटक की सम्पूर्ण गतिविधि को देख सकते हैं। 'माच' की संवाद योजना, शब्द व्यंजना तथा अभिनय बहुत सुन्दर होता है। संगीत इसका प्राण है।

राजस्थान में माच 'ख्याल' के रूप में प्रचलित है। इसका प्रारम्भ १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। मालवा में माचों की परम्परा आरम्भ से ही अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में नौटंकी का बड़ा प्रचार है। हाथरस की नौटंकी बड़ी प्रसिद्ध है। नौटंकी जिसकी उत्पत्ति कुछ विद्वान् 'नाटकी' शब्द से बतलाते हैं, का इतिहास बहुत पुराना है। उत्तर प्रदेश में 'नौटंकी को 'स्वांग' या 'भगत' भी कहते हैं। स्वांग ठेठ ग्रामीण मनोरंजन है। इसमें अश्लीलता का पुट होता है। ब्रज मंडल में खुले रंगमंच पर नौटंकी के ढंग पर 'भगत' होती है। 'भगतों' में विविध प्रकार की लीलाएँ खेली जाती है। स्वांग का इनमें पूरी तरह से समावेश है।

गुजरात में 'भवाई' नामक लोकनाट्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका अभिनय करने के लिये किसी भी ऊँची भूमि, मंदिर अथवा घर के चबूतरे पर रंगमंच [illegible] रूप से तैयार किया जाता है। संस्कृत नाटकों की भांति न तो यह अंकबद्ध होता है और न इसमें कथावस्तु का व्यवस्थित रूप से तारतम्य ही पाया जाता है। भवाई की प्रसिद्धि उसकी वेशभूषा, दैनिक जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के अभिनय और

धार्मिक कथाओं के विश्वास पर आश्रित है। दो तीन व्यक्ति कपड़ा फैला (तान) कर खड़े हो जाते हैं तथा तबले, नगाड़े एवं अन्य तेज आवाज वाले वाद्यों के साथ कभी सम्मिलित स्वर में कभी स्वतन्त्र रूप से अभिनेता गा गाकर अभिनय करते हैं। इसमें भी स्त्रियों का अभिनय पुरुष ही करते हैं। भवाई लोक-नाट्य साधारण जनता के मनोरंजन का सबसे प्रधान साधन है। इसमें अश्लीलता का पुट अधिक होने के कारण आधुनिक शिक्षित लोगों की रुचि इससे हटती जा रही है।

बंगाल की 'जात्रा' का उल्लेख भी पहले किया जा चुका है। 'गम्भीरा' लोक-नाट्य का दूसरा रूप है। जो इस प्रदेश में प्रचलित है। यह शाक्त मतावलंबियों से सम्बन्धित है। शिव की लीलाएँ अभिनीत करने के लिये भक्तगण मुँह पर विभिन्न प्रकार के चेहरे लगाकर मंच पर आते हैं। ये लीलाएँ प्रायः रात्रि में की जाती हैं। शिव रूप अभिनेता जनता को प्रणाम कर ढाक (एक प्रकार का वाद्य) की आवाज पर नृत्य आरम्भ करता है। गायकों का मंडल उसके पीछे गाता है। नृत्य की गति आरम्भ में मंद और अंत में द्रुत हो जाती है।

महाराष्ट्र में तमाशा, ललित, गोंधल, बहुरूपिया, और दशावतार मराठी रंग-मंच के आधार हैं। 'तमाशा' महाराष्ट्र का प्राचीन लोक-नाट्य है। तमाशा करने वाली मंडली 'फड़' कहलाती है। 'फड़' का मुखिया सरदार कहलाता है। इस 'फड़' में ढोल-किया, सोंगरड़िया (विदूषक), नचिया, नर्तकी और 'सुरतिया' (स्वर भरने वाला) आदि होते हैं। नर्तकी तमाशा का प्राण होती है। नर्तकी अपनी भावभंगिमाओं तथा मधुर गीत से ग्रामीण जनता के हृदय को आकृष्ट कर लेती है।

'ललित' मध्ययुगीन धार्मिक नाट्य है। यह नवरात्र सम्बन्धी विशिष्ट कीर्तन है जिसमें भक्तों के स्वांग आदि दिखलाये जाते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि ललित में कीर्तन की मात्रा कम होती गई और कालांतर में स्वांग सम्बन्धी विशेषताएँ ही नाट-कीय रूप में प्रचलित हो गईं। कुछ विद्वानों का यह मत है कि गोंधल ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों को जन्म दिया है।

'गोंधल' धर्ममूलक लोकनाट्य है। महाराष्ट्र में इसका अनुष्ठानिक महत्व है। विवाहादि अवसर पर गोंधल की व्यवस्था की जाती है। मंडप के नीचे वस्त्र बिछा-कर आम्रपत्रों तथा कलश सहित अम्बा की प्रतिष्ठा करके गोंधल प्रारम्भ किया जाता है। ग्रामीण वाद्यों के साथ 'पवाड़े' आदि गाये जाते हैं। गोंधल का अभिनय बड़ा मनोरंजक होता है।

'यक्षगान' दक्षिण भारतीय लोकनाट्य का वह प्रकार है जो तामिल, तेलगु, तथा कन्नड़ भाषाभाषी क्षेत्र की ग्रामीण जनता में प्रचलित है। तेलगु में इसे 'विधि'

या 'विथि भागवतम्' कहते हैं। यक्षगान की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यह नृत्य नाट्य है जिसमें गीतबद्ध संवादों का प्रयोग होता है। लम्बे-लम्बे बोल पात्रों को सहज ही कंठस्थ रहते हैं। इनमें वर्णन का प्राधान्य होता है। यक्षगान नाटकों की कथा-वस्तु प्रायः रामायण, महाभारत, और भागवत से ली जाती है। परन्तु कहीं-कहीं कथानकों का आधार सामाजिक जीवन भी होता है।

'विथि नाटकम्' या 'विथि भागवतम्' तेलगु का लोकनाट्य है। यक्षगान की अनेक विशेषताएँ इसमें पाई जाती हैं। 'विथि नाटकम्' का शाब्दिक अर्थ है वह नाटक जो मार्ग में प्रदर्शित किया जा सके। अतः यह स्पष्ट है कि ये नाटक लोक-रंजन के प्रबल साधन हैं। इस नाटक में एक या दो ही पात्र रंगमंच पर आते हैं। स्त्रियाँ सामूहिक रूप से नृत्य करती हैं। कृष्णलीला को नृत्य और अभिनय द्वारा बड़ी सफलता से विधि नाटकम् का विषय 'बनाया गया है। इसका मंच किसी मंदिर के खुले भाग में अथवा किसी ऊँचे स्थान पर बनाया जाता है। यक्षगान की तुलना में 'विथि नाटकम्' अधिक ग्रामीण है।[1]

---

१. इस प्रकरण की अधिकांश सामग्री डा० श्याम परमार लिखित 'लोकधर्मी नाट्य परम्परा' नामक पुस्तक से ली गई है, अतः लेखक उनका अत्यन्त आभारी है।

अध्याय १२

लोक-सुभाषित

ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में अनेक लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों, सूक्तियों आदि का प्रयोग करती है। इससे उनकी वचन-चातुरी का पता चलता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से किसी उक्ति या कथन में शक्ति आ जाती है और श्रोताओं पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। मुहावरों के द्वारा भाषा में चुस्ती आती है और उसका स्वरूप सुन्दर बन जाता है। मन बहलाव के लिए पहेलियों का व्यवहार किया जाता है। बालकगण समुदाय में बैठकर एक दूसरे से पहेलियों को पूछकर बुद्धि की परीक्षा लिया करते हैं। संस्कृत में अनेक प्रकार की पहेलियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें बुद्धि का व्यायाम पाया जाता है।

बच्चा जब छोटा होता है तब उसकी माता या धाय उसे पालने में सुला कर लोरियाँ गाती है। इन लोरियों का उद्देश्य मनोहर संगीत पैदाकर बालक को निद्रा देवी की गोद में देना है। बड़े होने पर बालक अनेक प्रकार के खेलों को खेलते समय विभिन्न गीत गाते हैं। जनता के जीवन में ये लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, मुहावरे, पालने और खेल के गीत बिखरे पड़े हैं। अतः इनको 'लोक-सुभाषित' का नाम दिया गया है।

१. लोकोक्तियाँ

लोक साहित्य में लोकोक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा किसी कथन में तीव्रता और प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इससे भाषा में बल आ जाता है और वह श्रोताओं के हृदय पर अपना प्रभाव डालती है।

लोकोक्तियाँ अनुभवसिद्ध ज्ञान की निधि हैं। मानव ने युग-युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समास रूप में चिरसंचित अनुभूत ज्ञानराशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है। शताब्दियों से किसी जाति की विचारधारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाति की लोकोक्तियों का अध्ययन आवश्यक है।

परम्परा

लोकोक्तियों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। अनुसन्धान करने से पता चलता

है कि वेदों में भी इनकी सत्ता उपलब्ध है। उपनिषदों में भी लोकोक्तियों की कमी नहीं है। संस्कृत साहित्य में तो ये प्रचुर परिमाण में पायी जाती हैं। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में लोकोक्तियों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है जिससे उनकी भाषा बड़ी प्रभावोत्पादक हो गई है। 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' को लिखने वाला कवि यह अच्छी तरह से जानता था कि 'रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय'। भारवि, माघ और श्रीहर्ष के ग्रन्थों में भी इनका प्रयोग उपलब्ध होता है। नैषधीयचरित के रचयिता ने "ह्रदे गभीरे हृदि चावगाढ़े शंसन्ति कार्यावतरं हि सन्तः" लिखकर बड़े ही अनुभव की बात कही है। महाकवि राजशेखर ने प्राकृत भाषा में लिखे गये 'कर्पूर मंजरी' नामक सट्टक में 'हत्थ कंकरण किं दप्परणेण पेक्खी' आदि का उल्लेख किया है जो हिन्दी में 'कर कंगन को आरसी क्या' इस सुन्दर तथा चुस्त रूप में जीवित है। पालिग्रन्थों में भी ऐसी लोकोक्तियाँ मिलती हैं जिनसे अनुभूति की व्यञ्जना होती है।

पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों में नीति सम्बन्धी उक्तियों का प्रयोग किया गया है। 'आयसैः आयसं छेद्यम्' अथवा 'कण्टकेनैव कण्टकम्' या 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' ऐसी ही उक्तियाँ हैं जिनमें नीति या उपदेश भरा पड़ा है। 'क्षीणाः नराः निष्करुणाः भवन्ति' को लिखकर संस्कृत कवि ने बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्‌घाटन किया है।

संस्कृत में लोकोक्ति को सुभाषित या सूक्ति कहते हैं जिसका अर्थ है सुन्दर रीति से कहा गया कथन (सुष्ठु भाषित् सुभाषितम्)। इस शब्द का प्रयोग नीचे के संस्कृत श्लोक में इस प्रकार किया गया है—

"सुभाषितेन, गीतेन, युवतीनां च लीलया।
मनो न रमते यस्य, स योगी अथवा पशुः॥

सुन्दर रीति से कही गई उक्ति को ही सूक्ति कहते हैं। इसी उक्ति को यदि लोक अर्थात् साधारण मनुष्य प्रयोग में लाने लगते हैं तब उसका नाम लोकोक्ति पड़ जाता है।

यह पहिले कहा जा चुका है कि लोकोक्तियों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। बहुत सी ऐसी संस्कृत की लोकोक्तियाँ हैं जो हिन्दी में उसी अर्थ में आज भी व्यवहृत होती हैं। 'वरमद्य कपोतो श्वो मयूरात्' अर्थात् कल के मोर से आज का कबूतर अच्छा। यह लोकोक्ति हिन्दी में आज 'नौ नकद न तेरह उधार' के रूप में विद्यमान है।

लोकोक्तियों के संग्रह

संस्कृत साहित्य लोकोक्तियों का अक्षय भाण्डार है परन्तु इनका विस्तृत

संग्रह प्रकाश की प्रतीक्षा कर रहा है। गत शताब्दी में कर्नल जैकब ने "लौकिक न्यायाञ्जलि' नाम से संस्कृत साहित्य में उपलब्ध न्यायों का अपूर्व संग्रह तीन भागों में प्रस्तुत किया था। काकतालीय न्याय, घुणाक्षरन्याय, अन्धदर्पण न्याय आदि न्यायों को लेकर जैकब ने इनकी व्याख्या करते हुए इन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसके पश्चात् उन्होंने जहाँ इन न्यायों का प्रयोग हुआ है उनके उद्धरण भी दिये हैं। जैकब का यह कार्य वास्तव में स्पृहणीय है। दक्षिणी भारत के किसी विद्वान् ने संस्कृत के प्रसिद्ध कवियों द्वारा व्यवहृत सुभाषितों तथा लोकोक्तियों का संग्रह कर प्रकाशित किया है। 'सुभाषितरत्नभाण्डागारम्' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में अनेक लोकोक्तियाँ पायी जाती हैं।

हिन्दी भाषा में लोकोक्तियों के संग्रह की ओर अभी विद्वानों का ध्यान बहुत कम आकृष्ट हुआ है। सन १८८६ ई० में फेलन ने हिन्दी कहावतों के सम्बन्ध में अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डिक्शनरी आफ हिन्दुस्तानी प्रोवर्ब्स' लिखा जिसमें मारवाड़ी, पंजाबी, भोजपुरी और मैथिली कहावतों का संकलन किया गया है। फिर भी इस ग्रन्थ में पूर्वी हिन्दी (भोजपुरी) की लोकोक्तियाँ ही अधिक हैं। काश्मीरी लोकोक्तियों पर जे० एच० नोवल्स का काम उल्लेखनीय है। ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ में श्रीमती सुमित्रादेवी शास्त्रिणी द्वारा लिखित "देरेवाली कहावतें" इस दिशा में स्तुत्य प्रयास है। श्री शालिग्राम वैष्णव ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका (संवत् १९९४ वि०) में "गढ़वाली भाषा में पखाणा" लिखकर गढ़वाली लोकोक्तियों पर प्रचुर प्रकाश डाला है। सन् १८९२ ई० में श्री उपरेती ने "प्रोवर्ब्स एण्ड फोकलोर आफ कुमाऊँ एण्ड गढ़वाल" नामक ग्रन्थ लिखा था जिसमें गढ़वाल और कुमाऊँ की लोकोक्तियों का बड़ा विस्तृत संग्रह उपलब्ध है। विद्वान् लेखक ने विषयों के क्रम से लोकोक्तियों का संग्रह प्रस्तुत किया है। साथ ही प्रत्येक कहावत का अंग्रेजी अनुवाद देकर उसकी सुन्दर व्याख्या की है। लगभग ४५० पृष्ठों की यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। मेरठ क्षेत्र की लोकोक्तियों पर लगभग २० वर्ष पूर्व राय राजेन्द्र सिंह वर्मा ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में एक विस्तृत निबन्ध प्रकाशित किया था। रतनलाल मेहता ने 'मालवी कहावतें' का प्रकाशन किया है। मेवाड़ी कहावतों का संकलन भी हो चुका है। डा० उदयनारायण तिवारी ने सन् १९३९ ई० में भोजपुरी लोकोक्तियों का संग्रह प्रयाग की 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में छपवाया था। हिन्दी की अन्य बोलियों की लोकोक्तियों के संग्रह का कार्य आज अनेक विद्वान् कर रहे हैं।

डा० कन्हैयालाल 'सहल' प्रिंसिपल बिड़ला आर्ट्स कालेज पिलानी (राजस्थान) ने राजस्थानी कहावतों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान कार्य किया है।

'राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन' शीर्षक थीसिस पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने इन्हें पी०-एच० डी० की उपाधि प्रदान की है। इसी प्रकार डा० सत्यदेव ओझा ने "भोजपुरी लोकोक्तियों" पर प्रशंसनीय शोध कार्य किया है जिस पर इन्हें राँची विश्वविद्यालय (बिहार) से पी०-एच० डी० की डिग्री प्राप्त हुई है। ये दोनों ही शोध-प्रबन्ध लोकोक्तियों के अनुसन्धान की दिशा में महनीय तथा स्तुत्य प्रयास हैं।

लोकोक्तियों की विशेषताएँ

(१) लोकोक्तियों की सबसे **पहली विशेषता** है **इनकी समास शैली**। इन कहावतों में इनके रचयिताओं ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। लोकोक्तियाँ आकार में तो छोटी होती हैं परन्तु इनमें विशाल भाव-राशि सिमटी पड़ी रहती हैं। उदाहरण के लिए 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हा' को ही लीजिए। इन चार शब्दों में बहुत भाव भरा पड़ा है। इसका अर्थ यह है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ समझते हैं जैसा कि 'कान्यकुब्जाः द्विजाः श्रेष्ठाः' इस उक्ति से स्पष्ट होता है। अतः वे खान-पान में छुआछूत का बड़ा विचार रखते हैं। वे अपनी जाति वालों का भी छुआ हुआ पका अन्न नहीं खाते। वे आपस में इतना भेद-भाव रखते हैं कि यदि तीन भी कनौजिया होगा तो भोजन पकाने के लिए उन्हें तेरह चूल्हों की आवश्यकता पड़ेगी। इतना अर्थ विस्तार इन चार शब्दों में भरा हुआ है। एक दूसरी कहावत है—"चार कवर भीतर, तब देवता पीतर" अर्थात् भोजन करने के पश्चात् ही देव-पूजा की चिन्ता करनी चाहिए। इस छोटी सी लोकोक्ति में भौतिकवादी चार्वाक सम्प्रदाय के सिद्धान्त की ओर संकेत किया गया है। चार्वाक का यह मत था कि :—

"यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः॥"

चार्वाक मतानुयायी देवताओं में विश्वास न कर ऐहिक सुख को ही परम पुरुषार्थ मानते थे। ये लोग भोजन को ही अधिक महत्व देते थे। इस लोकोक्ति के द्वारा उन पर व्यंग्य भी किया गया है। लोकोक्तियों की यही लघुता उनके प्रचुर प्रभाव का कारण है।

(२) इनकी दूसरी विशेषता अनुभूति और निरीक्षण है। लोकोक्तियों में मानव जीवन के युग-युग की अनुभूतियों का परिणाम और निरीक्षण शक्ति अन्तर्निहित है। काशी-निवास के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है :—

"राँड़, साँड़, सीढ़ी, सन्यासी;
इनसे बचे तो सेवै कासी।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस उक्ति में बहुत कुछ सत्य का अंश छिपा हुआ है। लोगों ने चिर अनुभव के पश्चात् ही इसका निर्माण किया होगा।

घाघ और भड्डुरी के नाम से हिन्दी में बहुत सी लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। इनमें ऋतु सम्बन्धी खेती के लिये उपयोगी बातें कही गई हैं। इनमें सन्देह नहीं कि घाघ और भड्डुरी ने अपनी पैनी निरीक्षण शक्ति के बल से ऋतु सम्बन्धी तथ्यों का अनुसन्धान करके ही इन लोकोक्तियों का निर्माण किया होगा। जब विज्ञान की इतनी उन्नति नही हुई थी, जब ऋतु सम्बन्धी तथ्यों को जानने के लिए वेधशालाएँ नहीं बनी थीं। उस समय लोग अपने चिरसंचित अनुभव और निरीक्षण शक्ति के द्वारा आगामी दिनों में ऋतु में क्या परिवर्तन होगा इसकी घोषणा किया करते थे। यह परम्परा संभवतः बहुत प्राचीन है। आकाश में चमकने वाली चंचला के रंग को देखकर निरीक्षण-शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति प्रभंजन आने तथा अकाल पड़ने की सूचना देते हैं—

वाताय कपिला विद्युत्, आतपायातिलोहिनी।
कृष्णा भवति सस्याय, दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥

प्राचीन काल के ये ऋतु-विशेषज्ञ किसी यंत्र की सहायता से नहीं, अपितु अपनी निरीक्षण शक्ति के द्वारा ही ऋतुओं के परिवर्तन को उद्घोषित करते थे। वायु परीक्षा सम्बन्धी निम्नांकित कहावत मे विभिन्न दिशाओं से वायु चलने से उसका क्या प्रभाव पड़ता है इसका सुन्दर रीति से दिग्दर्शन कराया गया है।[1]

'जो पै पवन पुरब से आवै, उपजै अन्त मेघ झर लावै।
अगिन कोन जो बहै समीरा, पड़ै काल दुःख सहै सरीरा।
दखिन बहै जल थल अलगोरा, ताहि समय जूझै बड़ बीरा।
नैऋत कोन बूंद ना परै, राजा परजा भूखन मरै।
पच्छिम बहै नीक कर जानो, पड़ै तुसार तेज उर मानो।
उत्तर उपजै बहु धन धाना, खेत बात सुख करै किसाना।
कोन इसान दुन्दुभी बाजै, दही भात भोजन सब गाजै।
जो कहु हवा अकासे जाय, परै न बूंद काल परि जाय।
दक्खिन पच्छिम आधो समयो, सहदेव जोसी ऐसे भनयो॥

घाघ ने एक दूसरी जगह पर लिखा है कि—

'सावन में पुरवइया, भादों में पछियाँव।
हरवाहे हर छोड़ दे, लरिका जाय जियाव॥'

---

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य, पृ० २६६

अर्थात् सावन में पुरवैया हवा और भादों में पछुवा हवा चले तो वर्षा न होने के कारण बड़ा कष्ट होता है। यदि पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में पुरवैया हवा चले तो इतनी अधिक वर्षा होगी कि सूखी नदी में नाव चलने लगेगी।

'जो पुरुवा पुरवाई पावै,
सूखी नदिया नाव चलावै ॥'

वर्षा विज्ञान के सम्बन्ध में भी घाघ ने बड़ी सटीक उक्तियाँ कही हैं। जैसे :—

"माघ क उखम जेठ के जाड़
पहिलै बरखा भरिगा ताल।
कहै घाघ हम होब वियोगी
कुवाँ खोदि के धोइहैं धोबी ॥'

अर्थात् यदि माघ में गर्मी पड़े और जेठ में शीत की प्रधानता हो, और यदि प्रथम वर्षा में ही तालाब भर जाय तो अवर्षण के कारण धोबी कुँआ खोदकर कपड़ा धोयेगा। घाघ की दूसरी उक्ति है कि[1]—

"रोहिनी बरसै मृग तपै, कुछ कुछ अद्रा जाय।
कहै घाघ घाघिनि से, स्वान भात नहि खाय ॥

अर्थात् रोहिणी नक्षत्र में वर्षा हो, मृगशिरा नक्षत्र में खूब गर्मी पड़े और आर्द्रा में भी कुछ वर्षा हो तो इतना अधिक अन्न पैदा होगा कि कुत्ता भी भात को नहीं खायेगा।

इसी प्रकार घाघ ने जोताई, बोआई, निराई, कटाई, मड़ाई और ओसाई आदि के सम्बन्ध में उक्तियाँ कही है। ऐसा ज्ञात होता है कि घाघ कोई पक्का किसान था जिसने खेती-विज्ञान सम्बन्धी अपनी निरीक्षण शक्ति का परिणाम इन लोकोक्तियों में रखा है।

(३) लोकोक्तियों की तीसरी विशेषता है इनकी सरलता। ये लोकोक्तियाँ बड़ी सरल भाषा में निबद्ध हैं जिससे सुनते ही इनका अर्थ हृदयङ्गम हो जाता है। इनकी यही सरलता इनके अतिशय प्रभाव उत्पन्न करने का कारण है। जो वस्तु अर्थ-काठिन्य के कारण समझ में नहीं आती उसका प्रभाव हृदय पर नहीं पड़ता। परन्तु कहावतें अपनी सरसता और सरलता के कारण हृदय पर सीधे चोट करती हैं। जैसे—

'बसकट पनही, बतकट जोय;
जो पहिलौंठी बिटिया होय।

१. त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा०, पृ० २०३

पातर कृषी, बौरहा भाय,
घाघ कहै, दुःख कहाँ समाय ।।'

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि पैर के नस को काटने वाला जूता और बात को काटने वाली (लड़ाकू या झगड़ालू) स्त्री कितनी दुःखदायी होती है। घाघ ने इसी बात को बड़ी सीधी सादी भाषा में कहा है जिसका प्रभाव ग्रामीण जनों के हृदय पर बहुत ही अधिक होता है।

कहावतें गद्य में भी होती है और पद्य में भी। पद्यात्मक कहावतों को याद करने में सुविधा होती है। उनका प्रभाव भी जनता के हृदय पर सम्भवतः अधिक पड़ता है।

लोकोक्तियों का वर्गीकरण

डा० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार लोकोक्तियों का वर्गीकरण प्रधानतया निम्नांकित पाँच प्रकार से किया जा सकता है :—

(१) स्थान सम्बन्धी लोकोक्तियाँ
(२) जाति सम्बन्धी ''
(३) प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी ''
(४) पशु-पक्षि सम्बन्धी ''
(५) प्रकीर्ण ''

१—स्थान-सम्बन्धी

बहुत सी ऐसी लोकोक्तियाँ पायी जाती है जो किसी देश या स्थान-विशेष की विशेषताओं को प्रकट करती है। काशी के सम्बन्ध में जो कहावत प्रचलित है उसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के पश्चिमी भाग को 'बाँगर' कहते हैं। यहाँ सिंचाई के प्रबन्ध की सुविधा न होने के कारण अन्न बहुत कम पैदा होता है। इसी विषय का उल्लेख नीचे की एक कहावत में किया गया है।[1]

"का बाँगर का अन्ने, का जोलाहा का धन्ने"

मगध देश में भोजन अच्छा नहीं मिलता। भुजिया चावल का भात और खराब दाल खाने को मिलती है। अतः वहाँ जाने का निषेध किया गया है—

"उसिना चावल दाल खमोरी।
मगह देश जनि जइह मुरारी ।।

१. लेखक का निजी संग्रह

बिहार के तिरहुत प्रदेश की विशेषताओं को बतलाने वाली यह उक्ति कितनी सुन्दर बन पड़ी है—

"कोकटी धोती पटुआ साग,
तिरहुत गीत बड़े अनुराग।
भाव भरल तन तरुणी रूप,
एतवै तिरहुत होइछ अनूप॥"

कलकत्ता शहर में जाकर रहने वाले लोगों के लिये बड़ा ही सुन्दर उपदेश इस लोकोक्ति में दिया गया है। इससे भारत के सर्वश्रेष्ठ नगर की विशेषताओं का पता चलता है :—

"घोड़ा गाड़ी, नोना पानी; और राँड़ के धक्का।
ए तीनू से बचल रहे, तब केलि करे कलकत्ता॥"

हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने ग्वालियर राज्य के स्थानों के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है [1]।

२—जाति-सम्बन्धी

भारत की विभिन्न जातियों की विशेषताओं को प्रकट करने वाली अनेक लोकोक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। ब्राह्मण और नाई किस प्रकार अपनी जाति वालों को देखकर जलते हैं इसका उल्लेख इस लोकोक्ति में हुआ है :—

"बांभन, कुकुर, नाऊ।
आपन जाति देखि गुर्राऊ॥"

ब्राह्मण पुरोहित किस प्रकार हवन करते समय यजमान के घी और अन्न को अग्नि में भस्मसात् कर देता है, इसका वर्णन सुनिये :—

"करवा[2] कोहार के, घीव जजमान के;
बाबा जी कहेले, स्वाहा स्वाहा।"

इसी से मिलती-जुलती एक दूसरी उक्ति है जो ब्राह्मणों की भोजनभट्टता को प्रकट करती है :—

"आनकर[3] आटा, आनकर घीव।
चाबस[4] चाबस, बाबा जीव॥"

---

१. 'मृगनयनी' की भूमिका
२. मिट्टी का वह पात्र जिससे हवन सामग्री कुण्ड में डाली जाती है।
३. दूसरे का।
४. खूब मजे में खाना।

अंग्रेजी में भी इसी प्रकार की एक उक्ति है जो उपर्युक्त लोकोक्ति के भावों को प्रकट करती है—

"फूल्स मेक फीस्ट्स
एण्ड वाइजमेन ईट देम।"

आजकल के अनेक साधु-महात्मा—जो अपने को ब्राह्मण कहते हैं, रामानुजी टीका लगाये फिरते हैं और मधुर बानी बोलकर भक्तों को फँसाते हैं, उनके सम्बन्ध की यह लोकोक्ति कितनी सटीक है—

"तीन फँकिया टीका मधुरी बानी,
दगाबाज के इहे निसानी।"

बनियों के बारे में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है जो उनकी बद्धमुष्टिता को सूचित करती है :—

"आमी, नीबू, बानिया;
चापें तें रस देय।"

अर्थात् आम, नीबू और बनिया इन तीनों को दबाने या काट देने से ही ये रस देते हैं। क्षत्रिय और कायस्थों के विषय में भी इसी प्रकार की अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। शूद्रों तथा अन्य तथाकथित नीच जातियों के सम्बन्ध में यह प्रायः कहा जाता है कि ऊँच जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) बात करने से परन्तु नीच जातियाँ दण्ड देने से ही ठीक रास्ते पर रहती हैं—

"ऊँच जाति बतिअवले,
नीच जाति लतिअवले।"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस तथ्य का समर्थन "शूद्र, गँवार, ढोल, पशु, नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी"॥ लिखकर किया है।

रसल ने "पीपुल्स ऑव् इण्डिया" नामक अपनी पुस्तक में भारत की विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में जो विशेषताएँ हैं उनका उल्लेख बड़े विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का बड़ा उपयोग है।

३. प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी

अनेक लोकोक्तियाँ प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली हैं। किस समय किस दिशा से वायु चलने पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा; किस रंग की बिजली चमकने से ऋतु

के सम्बन्ध में क्या सूचना मिलती है; किन नक्षत्रों में वर्षा होने या न होने से सुकाल या अकाल पड़ता है, इन सभी विषयों का ज्ञान हमें लोकोक्तियों से प्राप्त होता है। ऋतु-विज्ञान की जो बातें वैज्ञानिक अपने अनुसन्धानों द्वारा बतलाते हैं उस विज्ञान की बहुत सी बातें इनमें मिलती हैं। इसके अतिरिक्त कृषि सम्बन्धी अनेक कार्यों—सिंचाई, बोआई, निराई, कटाई, दवाँई, मड़ाई आदि—के सम्बन्ध में भी कहावतें पायी जाती हैं। इनसे हमें यह ज्ञात होता है कि किस समय में कौन सा कार्य करने पर उसका फल अच्छा होगा या बुरा। घाघ तथा भड्डरी की वायु तथा वर्षा सम्बन्धी लोकोक्तियों का वर्णन पहले हो चुका है। कृषिजीवन से सम्बद्ध ऐसा कोई भी अंग नहीं जिसके विषय में कोई उक्ति न कही गई हो। ऊख के खेत को कितना जोतना चाहिये इस विषय में घाघ कहते हैं :—

"तीन कियारी तेरह गोड़,
तब देखै ऊखी के पोर॥"

खेत में खाद डालने से खेती अच्छी होती है इसका समर्थन लोकोक्तियों से भी प्राप्त होता है।

"जेकरे खेत पड़ा नहिं गोबर,
वहि किसान को जान्यो दूबर॥"

खाद को आषाढ़ मास में डालने से फसल खूब होती है—

"असाढ़ में खाद खेत में जावै,
तब भरि मूठि दाना पावै।"

४—पशु-पक्षी सम्बन्धी

कृषि सम्बन्धी कहावतों का उल्लेख पहिले हो चुका है। बैल कृषि-कर्म का अनन्य साधन है। इसके बिना किसान का कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। अतः बैल के सम्बन्ध में अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं जिनमें उनके गुण-दोष का विवेचन किया गया है। हल में तेज चलने वाले बैल का लक्षण इस प्रकार दिया है[1] —

"सींग मुड़े, माथा उठा; मुँह का होवे गोल।
रोम नरम, चंचल करन; तेज बैल अनमोल॥"

बुरे बैल का लक्षण इस प्रकार है।[1]—

"उजर बरौनी मुँह का महुवा;
ताहि देखि हरवहवा रोवा॥"

---

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य, पृ० ३१८

कृषि कार्य में बैल का कितना महत्व है इसका पता नीचे की उक्ति से लगता है।[1]

"बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै; चौदह साख लबार॥"

गीदड़ और कौओं का विभिन्न समय पर बोलना अशुभ है, इसकी सूचना हमें कहावतों से मिलती है।[2]

"रात को बोलै कागला, दिन में बोलै स्याल।
तो यों भाखै भड्डुरी, निहचै पड़िहैं काल।"

इसी प्रकार से बन्दर, हाथी और घोड़ा आदि के विषय में भी बहुत सी कहावतें प्रचलित हैं।

५—प्रकीर्ण

प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ वे हैं जो उपर्युक्त चार प्रकारों से भिन्न हैं। इनमें नीति से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों की प्रधानता है। घाघ ने ऐसी बहुत सी लोकोक्तियाँ कही हैं जिनमें किसी न किसी प्रकार का नीति-कथन उपलब्ध होता है। यहाँ एक दो उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

"मुये चाम से चाम कटावै, भुँइ सँकरी माँ सोवै।
घाघ कहै ये तीनों भकुवा, उढ़रि गये पै रोवै॥

× × ×

सधुवै दासी, चोरवै खाँसी; प्रीति बिनासै हाँसी।
घग्घा उनकी बुद्धि बिनासै, खाँय जो रोटी बासी॥

कहीं-कहीं तो घाघ की उक्तियाँ चाणक्य की नीति से टक्कर लेती हैं, जैसे :—

"लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान,
ममिला बिगरै साँझ बिहान।"

इसी प्रकार नीचे की यह लोकोक्ति इसी आशय की है—

"ओछो मन्त्री राजै नासै, ताल बिनासै काई।
सुक्ख साहिबी फूट बिनासै, घग्घा पैर बिवाई॥"

गाँवों में इन्हीं नीति-वचनों के द्वारा लोग अपने जीवन का नियंत्रण करते हैं। कुछ कहावतें ऐसी हैं जिनमें स्वस्थ रहने की विधि बतलायी गई है। इन्हें

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य, पृ० ३२३
२. वही, पृ ३५०

'नीरोग के नुसखे' कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी; जैसे—

"मोटी मुखारी जो करै, दूध बियारी खाय।
बासी पानी जो पियै, तेहि घर बैद न जाय॥

× × ×

क्वार करैला, चैत गुड़, सावन साग न खाय।
कौड़ी खरचे गांठ की, रोग बिसाहन जाय॥

भोजन में पथ्यापथ्य का विधान कर ये लोकोक्तियाँ हमें स्वास्थ्य के नियमों को बतलाती हैं।

१. ब्रज की लोकोक्तियों के भेद[1]

ब्रज में सामान्य लोकोक्तियों के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार की लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं जिनके भेद हैं—(१) अनमिल्ला (२) भेरि (३) अचका (४) औठपाव (५) गहगड्ड (६) ओलना (७) खुंसि।

अनमिल्ला—इनमें नाम के ही अनुरूप बेमेल बातों का एक साथ उल्लेख मिलता है। जैसे—

"भार भुजावन हम गये, पल्ले बाँधी ऊन।
कुत्ता चरखा लै गयौ, काए ते फटकूँगी चून॥"

अचका—इसमें आश्चर्य की प्रधानता रहती है। सुकुमारता की अतिशयता के साथ ही साथ इसमें फूहड़पन भी अपनी पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ दिखायी पड़ता है पतङ्ग के विषय में यह उक्ति कही गई है—

"पीपर पैंते उड़ी पतङ्ग, जौ कहुँ लगि जाय मेरे अंग
मैंने दै दई बजर किवार, नहीं उड़ि जाती कोस हजार"

इन अचकों में साधारणतः स्त्रियों की गर्वोक्तियाँ है जो इनके सौंदर्य या धन की अतिशयता को घोषित करती हैं।

भेरि, औठपाय और खुंसि इन तीनों का सामान्य धर्म यह है कि ये सभी ऐसी बातों का दिग्दर्शन कराते हैं जो अवाञ्छनीय होती हैं। भेरि का अन्तिम चरण एक समान होता है। वह है—गड़आ गढ़त भेरि है गई।

"राँड नारि ने पहर्‌यौ काँचु,
अब मति जानौ वाको साँचु।

---

१. डॉ० सत्येन्द्र : ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ० ५३७-४२

सालू पहिरि पैठें कू गई
गड्वो गढ़त भेरि है गई ॥

'खुंसि, ऐसी ही बातों के कहने का दूसरा ढंग है। इसमें तीन दोषों की गणना की गई रहती है;[1] जैसे:—

"एक तो बूढ़ी गाय
दूसरां कूं खेत खाय।
तीसरां कूं दूध हीन
खुंसि ऊपर खुंसि तीन ॥"

अन्तिम चरण सब में समान होता है। जिस प्रकार 'खुंसि' में स्वाभाविक दोषों की गणना होती है उसी प्रकार 'औठपाय' में जानबूझ कर किये गए कुछ कार्यों का परिणाम दिखाया गया रहता है। उदाहरण के लिए:—

"कुँआ पनघट जाइकें, पाँय दिये ललराय।
पीठि मिड़ाबै सोति पै, जेई मरिबे के औठपाय।"

ओलना—इस प्रकार की लोकोक्ति में सुख देने वाली वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा निविष्ट रहती है। मनोभिलषित वस्तुओं की सूची इसमें दी गई रहती है।[2] उदाहरणार्थ—

"रिमझिम बरसै मेह कि ऊँची रावटी
कामिन करै सिंगार कि पहरै पामटी।
बारह बरस की नारि गरे में ढोलना,
इतनौ दै करतार फेरि ना बोलना।"

गहगड्ड

इस लोकोक्ति में दो व्यक्तियों की उक्तियाँ रहती हैं। एक व्यक्ति सुख के साधनों का सुझाव रखता है और दूसरा व्यक्ति उन सुझावों को तब तक अस्वीकार करता जाता है, जब तक उसकी अभीष्ट वस्तु न प्रस्तुत की जाय। यथा—

"किनक कटोरा ध्यौ चना, गुर बनिये की हट्ट।
तपूं रसोई जेओं मुसाफिर, यों माँचै गहगड्ड॥
नहीं गहगड्ड, नहीं गहगड्ड।

१. डा० सत्येन्द्र : ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृ० ५४०
२. वही, पृ० ५४१

संक्षेप में ब्रज की लोकोक्तियों की यही रूपरेखा है।

लोकोक्तियों के रचयिता

लोकोक्तियों के रचयिताओं का कुछ पता नहीं चलता। परन्तु अधिकांश लोकोक्तियाँ घाघ और भड्डरी के नाम से प्रचलित हैं। कुछ कहावतों में इन दोनों के नामों का उल्लेख पाया जाता है।

१. घाघ

घाघ अकबर बादशाह के जमाने में हुए थे। ये जाति के दूबे ब्राह्मण थे। कन्नौज के पास इनके नाम से एक पुरवा (छोटा गाँव) बसा हुआ था जिसका नाम अब बदल गया है परन्तु पुराने कागजों में 'पूरे घाघ' का उल्लेख मिलता है। घाघ के वंशज अब भी उस गाँव में रहते हैं।

घाघ का सम्बन्ध गोरखपुर और छपरा जिले से भी बतलाया जाता है। संभव है घाघ किसी सम्बन्ध से यहाँ कुछ दिनों तक रहे हों। घाघ की कहावतों की भाषा से उनके जन्म स्थान का पता लगाना बड़ा कठिन है क्योंकि इनकी कहावतें किसानों में इतनी लोकप्रिय हैं कि सबने अपनी बोली में इनका रूपान्तर कर लिया है।[1]

घाघ के सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि है कि अपनी पतोहू से इनकी बड़ी नोक-झोंक रहती थी। घाघ जो कहावत कहते थे पतोहू उसका उल्टा कहती थी। इससे जान पड़ता है कि इनकी पतोहू भी पद्य रचना करना जानती थी।

बहुत सी ऐसी लोकोक्तियाँ जो घाघ के नाम से नहीं है अब उन्हीं के नाम से प्रचलित हो गई हैं जिससे उनकी लोकप्रियता का पता चलता है।

भड्डरी

इनके जीवन-वृत्त के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि ये ब्राह्मण पिता और आभीरी माता से उत्पन्न हुए थे। भड्डरी नाम भी इनके नीच वर्ण में उत्पन्न होने की सूचना देता है। इन्होंने वर्षा विषयक अनेक कहावतों का निर्माण किया है जिनमें कथित तथ्य बहुधा सच निकलते हैं। अब तो भड्डरी नाम की एक जाति ही बन गई है जो भड्डरी की कहावतों के आधार पर भविष्य में होने वाली वर्षा-सम्बन्धी बातों को बतलाती है। इस जाति के लोग

---

१ त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा०, पृ० २५४-२५५

गोरखपुर और देवरिया जिले में अधिक हैं। राजस्थान में भड्डली नाम की एक स्त्री की कहावतें मिलती हैं जिनमें भड्डरी की लोकोक्तियों से बहुत कुछ समानता पायी जाती है। वर्षा के अतिरिक्त भड्डरी ने नीति, स्वास्थ्य और शकुन आदि के सम्बन्ध में बहुत सी कहावतें कहीं है।[1]

(३) लाल बुझक्कड़

ये यू० पी० के फर्रुखाबाद जिले के रहने वाले थे। इनका असली नाम लाल था। बुझक्कड़ तो इनकी पदवी थी। ये अपने गाँव के सबसे चतुर आदमी समझे जाते थे। ग्रामीण जनता में प्रचलित वह कहावत संभवतः इन्हीं लाल बुझक्कड़ की ज्ञात होती है।[2]

"लाल बुझक्कड़ बूझिया, और न बूझा कोय।
पैर में चक्की बाँध के हरिन न कूदा होय॥"

माधौदास तथा हृदयराम ने अनेक नीति-परक लोकोक्तियों की रचना की है परन्तु इनके जीवन वृत्त के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है।

२. मुहावरे

अर्थ

मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है—'परस्पर बातचीत और सवाल--जबाब करना।' इसे अंग्रेजी में 'इडियम' कहते है। संस्कृत में इस शब्द के यथार्थ को घोषित करने वाला कोई शब्द नहीं है। कुछ विद्वानों ने 'वाग्रीति' या 'रमणीय प्रयोग' का व्यवहार इसके लिए किया है। परन्तु वास्तव में ये शब्द उपयुक्त नहीं जँचते क्योंकि इनसे 'मुहावरे' के भाव का सम्यक् प्रकाशन नहीं होता।

अरबी भाषा में मुहावरा शब्द का अर्थ सीमित तथा संकुलित है, किन्तु हिन्दी और उर्दू में यह विकसित होकर व्यापक भाव को द्योतित करता है। मुहावरे के अर्थ में अभिधेयार्थ से कुछ विभिन्नता होती है। अतः इसके अर्थ की सिद्धि लक्षणा और व्यञ्जना शक्तियों के ऊपर अवलम्बित रहती है। उदाहरण के लिए 'नव दो ग्यारह होना' इस मुहावरे को लीजिए। इसका अभिधेयार्थ स्पष्ट है। परन्तु इस मुहावरे का अर्थ है चल देना, भाग जाना आदि। यह भाव अभिधा या लक्षणा से द्योतित न होकर व्यञ्जना शक्ति के द्वारा प्रकट होता है। दूसरा मुहावरा है 'नाकों चना चबाना' जिसका अर्थ है बड़ी कठिनाई से किसी कार्य

१ त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा०, पृ० २६५
२. वही, पृ० २६७

को सम्पादित करना। चना चबाने का काम मुँह करता है नाक नहीं। नाक से इसे चबाना असम्भव कार्य है। अतः लक्षणा शक्ति के द्वारा इस मुहावरे का अर्थ हुआ किसी काम को बड़ी कठिनता से करना। इसी प्रकार अन्य मुहावरों में भी यही बात पायी जाती है।

मुहावरों की उत्पत्ति

मुहावरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय लिखते हैं कि "मनुष्य के कार्यक्षेत्र विस्तृत हैं। उसके मानसिक भाव भी अनन्त हैं। घटना और कार्य-कारण परम्परा से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष से संकेत अथवा इंगित किंवा व्यंग द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में विवृत करने का उद्योग करता है, जिनके अधिक लम्बे, चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न करना उसे अभीष्ट होता है। प्रायः हास, परिहास, घृणा, आवेग, उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्ति के अनुकूल वाक्य-योजना होती देखी जाती है। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का भी वाक्य विन्यास पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है और इसी प्रकार के साधनों से मुहावरों का आविर्भाव होता है।"[1]

कवि सम्राट् उपाध्याय जी ने मुहावरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने जो विचार प्रकट किये हैं, वे यथार्थ हैं। भाषा-शास्त्रियों का कहना है कि मानव प्रकृति शब्दों के उच्चारण में प्रयत्नलाघव को पसन्द करती है। यही बात भाषा के प्रयोग के विषय में भी कही जा सकती है। 'मनुष्य थोड़े में अपने भावों को प्रकट करना चाहता है। अतः वह ऐसी शब्दावली का प्रयोग करता है जो संक्षिप्त हो। अत्यन्त घने तथा निविड़ अन्धकार का वर्णन करने के लिए—जिसमें मनुष्य के अपने हाथ-पैर न दिखायी पड़ते हों—संस्कृत में 'सूचिभेद्यं तमः' मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। केवल इन दो छोटे से शब्दों में कितनी अधिक भावराशि भरी पड़ी है।

मनुष्य की दूसरी प्रवृत्ति गोपनीयता की होती है। वह किसी कारण वश अपने भावों को ऐसी भाषा में प्रकट करना चाहता है जो सर्वसाधारण के लिए सरलतया बोधगम्य न हो। वज्रयानी बौद्धों ने तथा हिन्दू तांत्रिकों ने इसीलिए एक ऐसी प्रतीकात्मक भाषा को आविष्कृत किया था जो गोपनीय होने के कारण जन-साधारण की बुद्धि से परे थी। 'पंच मकारों' के ठीक अर्थ को न समझ सकने का यही

१. 'बोलचाल', पृ० ३६-३७

कारण था। मुहावरों के विषय में भी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है। 'नौ दो ग्यारह होना' या रफ़ूचक्कर होना का अर्थ चल देना या भाग जाना है जो अभिधा से सूचित नहीं होता। अतः गोपनीयता की भावना इसमें विद्यमान है।

परिभाषा

मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह अपूर्ण वाक्य खण्ड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक-व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा और समझा और बार-बार उसका अनुभव किया उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हे।[1]

लोकोक्ति तथा मुहावरे में अन्तर

मुहावरों और कहावतों में अन्तर है। मुहावरा वाक्य का अंश होता है। उसका स्वतंत्र रूप से व्यवहार नहीं किया जा सकता। परन्तु लोकोक्तियाँ पूर्ण वाक्य होती हैं। उनका प्रयोग स्वतंत्र रूप से होता है। वे अपना स्वतन्त्र अर्थ रखती हैं। किसी कथन का समर्थन करने के लिए उदाहरण के रूप में अलग से उनका प्रयोग किया जाता है। मुहावरे गद्यात्मक होते हैं, परन्तु लोकोक्तियाँ गद्य और पद्य दोनों में उपलब्ध होती हैं। दोनों का आकार लघु होता है, परन्तु मुहावरा लघुतर होता है।

मुहावरों का महत्त्व

मुहावरे किसी भाषा की संजीवनी शक्ति हैं। ये उस भाषा के प्राण हैं। इनके द्वारा भाषा में सुघराई और चुस्ती आती है। मुहावरों के प्रयोग से वाक्यों में रोचकता आ जाती है और उनका प्रभाव पाठकों के हृदय के ऊपर सीधे होता है। रोचक भाषा भावों की अभिव्यञ्जना में कितनी समर्थ होती है यह कहने की आवश्यकता नहीं। यही कारण है कि जो लेखक मुहावरों का अधिक प्रयोग करते हैं उनकी भाषा टकसाली होती है। मौलाना हाली ने इनके महत्त्व के विषय में "मुकद्दमा शेर व शायरी" में लिखा है कि—"मुहावरा अगर उम्दा तौर से बाँधा जावे तो बिला शुबहा पस्त शेर को बलन्द और बलन्द को बलन्दतर कर देता है।" इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उचित मुहावरों के प्रयोग से शैली में माधुर्य, सौन्दर्य और शक्ति आ जाती है। विस्तृत भावों को थोड़े शब्दों में प्रकट करना मुहावरों का ही काम है। इनके प्रयोग द्वारा कोई भी भाषा संस्कृत होकर चमत्कृत हो जाती है।

परम्परा तथा व्यापकत्व

मुहावरों का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना भाषा की उत्पत्ति का।

---

१ त्रिपाठी : 'त्रिपथगा' अंक ६ (मार्च, १९५६), पृ० ३०

संस्कृत साहित्य में इनका प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होता है। संस्कृत महाकाव्यों तथा नाटकों में ये विशेष रूप से व्यवहृत हुए हैं। 'सूचिभेद्यं तमः' की चर्चा पहिले की चुकी है। अत्यन्त शीघ्रता से रात बीत जाने के लिए "अक्ष्णोः प्रभातमासीत्" का प्रयोग पाया जाता है। किसी बात को सामने देखते हुए भी उसके अस्तित्व को न स्वीकार करने के लिए 'गजनिमीलिका' का व्यवहार पण्डित लोग किया करते हैं। संस्कृत में कुछ ऐसे भी मुहावरे हैं जिनकी परम्परा को राष्ट्रभाषा हिन्दी भी अक्षुण्ण बनाये हुए है। बिना समझे-बूझे अन्धविश्वास के कारण किसी कार्य को सामूहिक रूप से करने के लिए 'गड्डलिका प्रवाहः' को प्रयुक्त किया जाता है। यह मुहावरा 'भेड़िया धसान' के रूप में हिन्दी में वर्तमान है। प्राकृत तथा पाली भाषा में भी मुहावरे पाये जाते हैं, परन्तु स्थानाभाव के कारण उनका विवेचन यहाँ सम्भव नहीं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी में मुहावरों की संख्या बहुत ही अधिक है। सिर से पैर तक शरीर का कोई भी अंग ऐसा नही है जिससे सम्बद्ध दर्जनों मुहावरें न हों। कवि सम्राट् पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपनी 'बोलचाल' नामक पुस्तक[1] में इन मुहावरों का पद्यों में प्रयोग किया है। इस पुस्तक से हिन्दी के मुहावरों के प्राचुर्य का पता लगाया जा सकता है।

हिन्दी की विभिन्न बोलियों—भोजपुरी, व्रज, अवधी, बुन्देलखण्डी आदि—में हजारों की संख्या में मुहावरे उपलब्ध होते हैं जो नितान्त मौलिक हैं। केवल भोजपुरी में ही सैकड़ों ऐसे मुहावरें हैं जो खड़ी बोली हिन्दी में नहीं पाये जाते; जैसे—

१. पाताल खिलना—बहुत दूर चला जाना।
२. हाथ में दही जमाना—मारने पर भी क्रुद्ध न होकर चुप रहना।
३. हाथ झुलावत आना—असफल होकर लौटना।
४. हाँका हाँकी बदना—प्रतिस्पर्धा करना।
५. लग्गा लगाना—किसी काम को प्रारम्भ करना।

मुहावरों का प्रयोग बड़ा ही व्यापक है। हमारे जीवन का कोई ऐसा कार्य नहीं जिसके वर्णन में मुहावरों का प्रयोग न होता हो। हजारों वर्षों से बोलचाल में बार-बार आते रहने से मुहावरे मनुष्य जीवन के पक्के साथी बन गये हैं। वे मानव की गति, क्रिया, अनुभूति, उसके शरीर के अंग-उपांगों, भोजन के पदार्थों, घर गृहस्थी के काम-काज, प्रकृति के विभिन्न तत्त्व—आकाश, आग, हवा, पानी और पृथ्वी—दिन-रात, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों और जीव-जन्तु सभी से सम्बन्ध रखते हैं। कहने का आशय यह है कि स्थावर और जंगम जितनी सृष्टि है उन सभी से इनका सम्बन्ध है।

---

१ खंगविलास प्रेस, पटना से प्रकाशित।

मुहावरों की विशेषताएँ

(१) मुहावरों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी वाक्य का अंगीभूत बन कर रहता है। जैसे 'आग लगाना' एक मुहावरा है। परन्तु इसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। जब तक इसका किसी वाक्य में प्रयोग नहीं होता तब तक इसका कोई अर्थ नहीं है। परन्तु जब हम यह कहते हैं कि 'वह आग लगाकर तमाशा देखने लगा' तब इसका अर्थ होता है झगड़ा लगाना।

(२) मुहावरा अपने मूल रूप में ही सदा प्रयुक्त होता है। यदि इसमें आये हुए शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाय तो मुहावरा नष्ट हो जाता है। जैसे 'कमर टूटना' एक मुहावरा है। परन्तु इसके स्थान पर इसके पर्याय के प्रतिपादक 'कटिभंग होना' लिखें तो यह पूर्वोक्त अर्थ का द्योतक कदापि नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'हाथ धोना' मुहावरा है परन्तु 'हस्त प्रक्षालन' का प्रयोग करने पर अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति हमें नहीं हो सकती।

(३) मुहावरे का वाच्यार्थ से विशेष सम्बन्ध नहीं होता। लक्ष्यार्थ के द्वारा ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है। उदाहरण के लिए 'गड़े मुर्दे उखाड़ना' इस मुहावरे को लीजिए। इसका अभिधेयार्थ है दफनाये गए मुर्दे की कब्र खोदना परन्तु इसका वास्तविक अर्थ है दबी दबायी बात को फिर से उठाना। इसी प्रकार 'लड़ाई में काम आना' का अर्थ लड़ते-लड़ते मर जाना है, न कि लड़ाई के काम में उपयोगी होना।

जन-जीवन का चित्रण

मुहावरों में जनता के जीवन की झाँकी देखने को मिलती है। सामाजिक प्रथाओं, रूढ़ियों और परम्पराओं का उल्लेख इनमें पाया जाता है। साथ ही साधारण जनता की आर्थिक दशा कैसी थी, इस पर भी प्रकाश पड़ता है। इतिहास की अनेक टूटी और बिखरी हुई कड़ियाँ भी इनकी सहायता से जोड़ी जा सकती है। भारतीय संस्कृति के दर्शन भी हमें मुहावरों में मिलता है। इन दृष्टियों से इनका महत्त्व अत्यधिक है।

जनता की आर्थिक स्थिति के परिचायक कुछ मुहावरों को लीजिए। 'गरीबी में आटा गीला' एक मुहावरा है। गरीब के पास थोड़ा सा आटा होता है। यदि सानते समय वह गीला हो जाय तो उसकी रोटियाँ नहीं बन सकतीं और उसे भूखा ही रहना पड़ेगा। इसी से जब किसी कष्ट के बाद दूसरा कष्ट आ पड़ता है तब इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। दूसरा मुहावरा है 'सत्तू बाँधकर पीछे पड़ना' देहात के लोग सत्तू का उपयोग बहुत करते हैं। जब वे कहीं बाहर यात्रा करते हैं

तब साथ में सत्तू बाँधकर ले जाते हैं जिससे उन्हें भोजन सदा तैयार मिलता है और इस प्रकार समय की काफी बचत होती है। परन्तु यह गरीबों का ही भोजन है। 'पेट काटना' भी मुहावरा है जिसका अर्थ है धन की कमी से जान-बूझ कर कम खाना; जैसे—मोहन ने पेट काट कर अपने पुत्र को पढ़ाया-लिखाया।

सामाजिक प्रथाओं का चित्रण इन मुहावरों में अधिकता से हुआ है। 'छीपा बजाना' एक भोजपुरी मुहावरा है। जिस समय किसी के घर पुत्र पैदा होता है उस समय प्रसन्नता के कारण थाली बजायी जाती है। पुत्री के जन्म पर थाली नहीं बजायी जाती। अतः 'छीपा बजाना' पुत्र की उत्पत्ति का द्योतक है। विवाह तथा कथा आदि में एक साथ ही स्त्री-पुरुष मण्डप में बैठते हैं। उस काल में एकाग्र चित्त होकर बैठना होता है। अतः 'चौका बैठना' यह मुहावरा इस घटना की ओर संकेत करता है।

स्त्री-पुरुष का विवाह होते समय दोनों के कपड़ों को लेकर आपस में गाँठ बाँध देते हैं। यह दम्पत्ति के अभिन्न प्रेम का द्योतक है। इस अर्थ को द्योतित करने वाला मुहावरा है 'गठ जोड़ाव करना'। भोजपुरी में एक दूसरा मुहावरा है 'गोतरुचार करना' जिसका अभिप्राय है गाली-गलौज करना। यह संस्कृत के 'गोत्रोच्चारण' का अपभ्रंश रूप है। विवाह के समय वर-कन्या की वंशावली का वर्णन वैदिक किया करते हैं जिसे 'गोत्रोच्चारण' कहते हैं। इसीलिए जब कोई किसी के बाप, दादे का नाम लेकर गाली देने लगता है तब इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है।

विवाह के पश्चात् कन्या का भाई मिट्टी के बड़े मटके—जिसे कुण्डा कहते हैं—में मिठाई भरकर बहिन के घर आता है। इससे सम्बद्ध मुहावरा है 'कुण्डा लेकर आना' जिसका अभिप्राय है कोई सौगात लेकर पधारना।

'घंट बाँधना' भी मुहावरा है जो उस प्रथा को द्योतित करता है जो मृत्यु के पश्चात् जलांजलि देने के लिए पीपल के पेड़ में मटका बाँधकर की जाती है।

स्त्रियों के व्रतों का उल्लेख भी कुछ मुहावरों में पाया जाता है। स्त्रियाँ कार्तिक शुक्ल द्वितीया—जिसे भातृ द्वितीया भी कहते हैं—के दिन 'गोधन' की गोबर की मूर्ति बनाकर उसे ओखल में खूब कूटती हैं। इसी प्रथा की ओर संकेत करता हुआ यह मुहावरा है 'गोधन कूटना' जिसका अर्थ है खूब पीटा जाना।

कुछ कहावतों में पौराणिक कथाओं का उल्लेख पाया जाता है। 'चउथी के चान देखल' एक भोजपुरी मुहावरा है जिसका अभिप्राय है दोष रहित मनुष्य को व्यर्थ में कलंकित करना। भाद्र मास की शुक्ला चतुर्थी को चन्द्रमा का दर्शन निषिद्ध

माना जाता है। एक पौराणिक कथा के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने इस दिन चन्द्र-दर्शन कर लिया था। फलस्वरूप उन्हें मणि चुराने का दोष लगा। इसी पौराणिक कथा की ओर उपर्युक्त मुहावरा संकेत करता है। 'कपारे पर बरह्म चढ़ल' मुहावरे का अर्थ है अत्यन्त क्रोधित होना। अकाल मृत्यु से मरा हुआ ब्राह्मण 'ब्रह्म' कहलाता है जो भूतों की एक योनि है। जब वह किसी के सर पर चढ़ता है तब आविष्ट व्यक्ति हाथ पैर पीटता हुआ बक् बक् करने लगता है। वह क्रोध में आकर अनाप-सनाप बकता है। अतः इसका अभिप्राय है क्रोध में आकर असम्बद्ध प्रलाप करना।

ऐतिहासिक तथ्यों के ऊपर भी इन मुहावरों से प्रचुर प्रकाश पड़ता है। 'अँगूठा दिखाना' हिन्दी का प्रचलित मुहावरा है जिसका अभिप्राय है इन्कार करना। यह मुहावरा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काल की उन परिस्थितियों की ओर संकेत करता है जिनके कारण ढाके के बारीक मलमल बुनने वाले जुलाहों का अँगूठा काट लिया जाता था। 'कंजड़ भइल' मुहावरा कंजूस होना या दरिद्र स्वभाव का होना इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। कंजड़ एक खानाबदोश जाति है जो स्थान-स्थान पर घूमा करते हैं। 'उजुबुक भइल' का अर्थ है—मूर्ख होना। यह मुहावरा संभवतः रूस देश के अन्तर्गत उजबेकिस्तान में निवास करने वाली उजबेक जाति की ओर संकेत करता है जो पहले असभ्य थी। अतः उपर्युक्त मुहावरों में ऐतिहासिक तथ्यों की झलक हमें देखने को मिलती है।

अनेक जातिगत विशेषताएँ भी इनमे परिलक्षित होती हैं। "कोइरी का देवता' का अभिप्राय है सोधा-सादा होना। कोइरी एक जाति विशेष है जो शाक पैदा करने और बेंचने का काम करती है। ये सज्जन और सीधे होते हैं। 'करटाहा' महाब्राह्मणों की दूसरी संज्ञा है जो मृत्यु के पश्चात् दान लेते हैं। ये बड़े भोजन-भट्ट होते हैं ओर बड़ी निर्लज्जता के साथ माँग माँग कर भोजन करते हैं। अतः 'करटाहा भइल' का अर्थ है बेहद लालची, निर्लज्ज और वृकोदर होना।

कहावतों में शकुन-विचार की सामग्री भी उपलब्ध होती है। 'गीदड़ बोलना' या 'उरुवा' (उल्लू) बोलना' मुहावरे का भाव उस स्थान का उजाड़ हो जाना समझना चाहिए। जैसे उस घर में अब गीदड़ बोल रहे हैं। 'कौआ बोलना' प्रियतम के आगमन की शुभ सूचना देता है। 'आँखि फरकल' और 'हाथ फरकल' प्रिय समागम का सूचक है। 'खंड़लिचि (खंजन पक्षी) देखल' सौभाग्य का परिचायक है। गूलर का फूल होना या लेना भी मुहावरा है। गूलर मे फूल नहीं होता। अतः इसका अर्थ है असंभव वस्तु की प्राप्ति करना।

मुहावरों में जन-जीवन का चित्रण किस प्रकार हुआ है इसका वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। यदि इन मुहावरों का सम्यक् अध्ययन किया जाय तो लोक संस्कृति सम्बन्धी बहुत सी बातें ज्ञात हो सकती हैं। अतः इस बात की आवश्यकता है कि इनका संकलन तथा सम्पादन वैज्ञानिक रीति से किया जाय। हिन्दी की विभिन्न बोलियों में प्रचलित मुहावरों का भी संग्रह करना चाहिए। विद्वानों का ध्यान अब इधर आकृष्ट हो रहा है, यह शुभ लक्षण है।

३. पहेलियाँ

मानव प्रवृत्ति रहस्यात्मक है। जब मनुष्य यह चाहता है कि उसके कथन को सर्व साधारण न समझ सकें तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो जन साधारण की समझ से परे होती है। यही पहेली का रूप धारण कर लेती है। मनुष्य की गोपनीय प्रवृत्ति ही पहेलियों की उत्पत्ति का कारण है। डा० फ्रेजर ने लिखा है कि पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी।[१] बातचीत के प्रसंग में भी साधारणतया यह देखा जाता है कि जब हम यह नहीं चाहते कि हमारी बात सभी लोग जान जायँ तब हम ऐसी कथन पद्धति का आश्रय लेते हैं जो दुबोध होती है। यही पहेली बन जाती है। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में रुपकालंकार का सहारा लेकर जिन वस्तुओं का वर्णन हुआ है वे सब इसी कोटि में आयेंगी। हिन्दी के महाकवि सूरदास जी ने अनेक दृष्टिकूटों की रचना की है[२] जिनका अर्थ समझना टेढ़ी खीर है। इन दृष्टिकूटों को भी हम पहेली के अन्तर्गत रख सकते हैं।

उत्पत्ति

किसी व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा के लिए भी पहेलियों का प्रयोग किया जाता है। भारतवर्ष के मूल निवासियों में मध्यप्रदेश के मँडला जिले के गोंड, प्रधान तथा बिरहोर जातियों में विवाह के अवसर पर पहेली पूछना (बुझाना) एक आवश्यक कार्य है।[३] भोजपुरी प्रदेश में विवाह के समय जब वर वैवाहिक विधि के पश्चात् 'कोहबर' में प्रवेश करने लगता है तब घर की स्त्रियाँ उससे पहेलियाँ पूछती हैं जिन्हें

---

१. डा० फ्रेजर : दि गोल्डेन बाऊ भाग ६, पृ० १२१
२. शुक्ल : भ्रमर गीत सार की भूमिका
३. मैन इन इण्डिया, भाग १३, संख्या ४, पृ० ३१६

'छेंका' कहा जाता है।[1] इन पहेलियों का सन्तोषजनक उत्तर देने पर ही वर 'कोहबर' में प्रवेश कर सकता है अन्यथा नहीं। यह प्रथा संभवतः वर की विद्वत्ता अथवा बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए ही की जाती है।

पहेलियों की उत्पत्ति का तीसरा कारण मनोरंजन भी है। किसान को दिन भर कठोर परिश्रम करते रहने से तनिक भी अवकाश नही मिलता। भीषण श्रम से उसका शरीर और मष्तिष्क चूर-चूर हो जाता है। अतः रात्रि में भोजन आदि से निवृत होकर वह इन पहेलियों को बुझाकर अपने दिल और दिमाग को ताजा करता है। वह थोड़ी देर के लिए शरीरिक श्रम को भूल जाता है तथा शान्ति और सुख का अनुभव करता है। गांवों में जहाँ सिनेमा नहीं है, जहाँ थियेटर का अत्यन्त अभाव है, जहाँ मनोरंजन के कोई भी अन्य साधन उपलब्ध नहीं है, वहाँ ये पहेलियाँ इन कृषकों के मनोरंजन के अनन्यतम साधन हैं।

परम्परा

पहेलियों को संस्कृत में 'प्रहेलिका' कहा जाता है। इनकी परम्परा बहुत प्राचीन है। वैदिक काल में भी इनकी सत्ता का पता चलता है। अश्वमेध यज्ञ में तो यह अनुष्ठान का एक भाग ही समझा जाता था। अश्व की वास्तविक बलि से पूर्व 'होता' और 'ब्राह्मण' ब्रह्मोदय (प्रहेलिका) पूछा करते थे[2]। इन्हें पूछने का केवल इन दो को ही अधिकार था।

वैदिक ऋषियों ने रूपकालंकार का आश्रय लेकर अनेक ऐसे ऋचाओं की रचना की है जो अर्थ की दुर्बोधता के कारण रहस्यात्मक बन गई हैं जो प्रहेलिका के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती हैं। ऋग्वेद का यह प्रसिद्ध मंत्र है—

"चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सो अस्य'
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्या आविवेश॥"

उपर्युक्त मंत्र में वर्णित 'वृषभ' कौन है इसके विषय में विद्वानों में बड़ा मत-भेद है। भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपने-अपने मत के अनुसार इसके विभिन्न अर्थ किये हैं। यह उपर्युक्त ऋचा निश्चय ही पहेली है जो जन साधारण की समझ में नहीं आ सकती। 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' इस वैदिक ऋचा के द्रष्टा ऋषि ने

१. डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन
२. डा० सत्येन्द्र : ब्र० लो० सा० अ०

वास्तव में विद्वानों को इसके अभिप्राय को समझने के लिये चुनौती दी है। उपनिषदों की भाषा भी कुछ कम रहस्यात्मक नहीं है। नचिकेता ने यम से उस रहस्यमय तत्त्व को बतलाने का आग्रह किया है जिसको जान लेने या पाने से मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। नचिकेता का प्रश्न एक पहेली ही है जिसको सुलझाने को यम तैयार नहीं था।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस संसार की सृष्टि का जो वर्णन किया है वह बहुत ही गूढ़ है। उन्होंने कहा है कि जो इस रहस्य को समझ सकता है वही 'वेद-वित्' है।

"ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥"

यहाँ संसार की उपमा पीपल के वृक्ष से दी गई है।

महाभारत में यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद उपलब्ध होता है जिससे प्राचीन काल में पहेलियों का स्वरूप कैसा था इसका पता चलता है। यक्ष किसी तालाब का अधिष्ठातृ देवता था। वहाँ पानी पीने के लिये नकुल, सहदेव आदि गये। सभी से यक्ष ने चार प्रश्न किये परन्तु किसी से उसका उत्तर देते न बन पड़ा। जब उस तालाब से जल पीने या लाने के लिये युधिष्ठिर गये तब उनसे भी उसने यही चार प्रश्न किये जो निम्नांकित हैं :—

"का वार्ता ? किमाश्चर्य ?
कः पन्था ? कश्च मोदते।
इति मे चतुरः प्रश्नान्,
उत्तरं दत्वा जलं पिब।"

अर्थात् इस संसार में नयी बात क्या है ? आश्चर्य की कौन सी वस्तु है ? कौन सा प्रशस्त मार्ग है और इस संसार में सुखपूर्वक कौन निवास करता है ? युधिष्ठिर ने क्रमशः इन प्रश्नों का बड़ा सुन्दर उत्तर दिया है—

"अस्मिन् महामोहमये कटाहे, सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन, भूतानि कालः पचतीति वार्ता॥१॥"
"अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाः स्थातुमिच्छन्ति, किमाश्चर्यमतः परम्॥२॥"

"वेदाः विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः, नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥३॥"

पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा, शाकं पचति वै गृहे ।
अनृणी चाप्रवासी च, स वारिचर ! मोदते ॥४॥

संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की पहेलिका प्रचुर संख्या में पायी जाती हैं जिन्हें अन्तर्लापिका और बहिर्लापिका कहते हैं। 'सुभाषित रत्न-भाण्डागारम्' में इनका संग्रह विस्तार से उपलब्ध होता है। कुछ पहेलियाँ ऐसी है जिनमें केवल प्रश्न किया गया है और उनका उत्तर बाहर से देना पड़ता है; जैसे :—

"पंचभर्त्री न पांचाली, द्विजिह्वा न च सर्पिणी ।
कृष्णमुखी न मार्जारी, यो जानाति सः पण्डितः ॥

इसका उत्तर है 'लेखनी' जिसमें ऊपर लिखी बातें ठीक-ठीक घटती हैं। कुछ पहेलियाँ ऐसी है जिनमें प्रश्न और उत्तर एक ही में मिले हुये हैं। चतुर मनुष्यों का यह कार्य है कि वे उन प्रश्नों के भीतर से ही उन पहेलियों का उत्तर निकालें। यहाँ एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

"का काशी, का मधुरा, का शीतलवाहिनी गङ्गा ।
कं संजघान कृष्णः, कं बलवन्तं न बाधते शीतम् ॥"

यह एक पहेली है जिसमें प्रश्न के भीतर ही उसका उत्तर भी अन्तर्निहित है। प्रश्नकर्ता पूछता है :—

प्रश्न—का मधुरा—(मधुर कौन सी वस्तु है ?)
उत्तर—काम धुरा—(कामदेव की धुरा या (चक्र)
प्रश्न—का शीतल वाहिनी गंगा—?
(शीतल जल वाली गंगा कहाँ है ?)
उत्तर—काशी-तल-वाहिनी गंगा
(अर्थात् काशी नगरी के नीचे (पास) बहने वाली गंगा)
प्रश्न—कं संजाघान कृष्णः (कृष्ण ने किसको जान से मार डाला ?)
उत्तर—कंसं जघान कृष्णः (कृष्ण ने कंस को जान से मार डाला)
प्रश्न—कं बलवन्तं न बाधते शीतम् ? (किस बलवान् व्यक्ति को जाड़ा नहीं लगता ?)
उत्तर—कम्बलवन्त न बाधते शीतम् (जिसके पास ओढ़ने के लिये कम्बल है उसको जाड़ा नही सताता)

इस प्रकार समंग श्लेष के द्वारा एक ही श्लोक में प्रश्न और उत्तर दोनों मिले हुये हैं। कहीं-कहीं ऐसा होता है कि श्लोक के तीन चरणों में तो प्रश्न किये जाते हैं और चतुर्थ चरण में सबका उत्तर एक ही साथ दे दिया जाता है। जैसे—

"किमायुष्यकरं लोके, जयन्तः कस्य वै सुतः।
कथं विष्णु पदं प्रोक्तं, तक्रं, शक्रस्य, दुर्लभम् ॥"

इसमें प्रथम तीन चरणों में निम्नांकित प्रश्न किये गये हैं और चौथे में इन तीनों का क्रमशः उत्तर दिया गया है।—

प्रश्न—संसार में आयु करने वाली कौन सी वस्तु है ?
उत्तर—तक्रम् (दही)
प्रश्न—जयन्त किसका लड़का था ?
उत्तर—शक्रस्य (इन्द्र का)
प्रश्न—विष्णु का स्थान कैसा कहा गया है ?
उत्तर—दुर्लभम् (अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होने योग्य)

कुछ प्रहेलिकाओं मे क्रिया-पद गुप्त रहता है। अर्थात् क्रिया-पद तो होता है परन्तु वह वाक्य में इस प्रकार से मिला रहता है कि स्पष्ट नहीं जान पड़ता। उदाहरण—

"विराटनगरे तात ! कीचकादपि कीचकम्।
अत्र क्रियापदं गुप्तं, यो जानाति स पण्डितः ॥"

इसमें क्रिया दिखाई नहीं पड़ती। 'विराट' शब्द इस नाम के राजा को द्योतित करता है परन्तु इसी में क्रिया छिपी पड़ी है। विराट में सन्धि है—विः + आट (विः—पक्षी; आट—घूमते थे)। अतः इस पहेली का अर्थ हुआ "एक बाँस से दूसरे बाँस पर पक्षी घूमते थे।" इसी प्रकार से अन्य बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

हिन्दी में अमीर खुसरो की मुकरियाँ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उन्होंने पुराने ढंग की सुन्दर मुकरियाँ लिखीं हैं। इस मुकरियों की परम्परा भी संस्कृत में पाई जाती है। जैसे :—

"काले वारिधराणां, अपतितया नैव शक्यते गन्तुम्।
उत्कंठितासि भद्रे ? नहि नहि सखि ! पिच्छिलः पन्था ॥"

कोई युवती स्त्री कहती है कि वर्षाकाल में बिना पतन (गिरना, पथ भ्रष्ट होना) हुये रहना कठिन है। इस पर उसकी सखी पूछती है कि क्या तुम पति-समा-

गम के लिये उत्कंठित हो ? तब वह निषेध करती हुई कहती है नहीं-नहीं सखि ! मैं तो यह कह रही हूँ कि रास्ते में बड़ी फिसलन हो गई है। ये मुकरियाँ भी पहेली के ही अन्तर्गत समझनी चाहिए।

पहेलियाँ वाग्विलास की वस्तु हैं। ये बुद्धि परीक्षा के अन्यतम साधन हैं। जिस प्रकार आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रश्नों द्वारा किसी बालक की बुद्धि का माप (Intelligence Test) करते है उसी प्रकार से प्राचीन काल में मनुष्यों की बुद्धि परीक्षा के लिये इनकी रचना की गई होगी। इन पहेलियों के द्वारा बुद्धि का व्यायाम भले ही होता है, उनसे थोड़ी देर के लिये किसी का मनोरंजन भले ही हो जाता है परन्तु इनसे रस की निष्पत्ति नहीं होती। अतः काव्य की दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं है। अपनी दुर्बोधिता के कारण ये रस की चर्वणा में बाधा उपस्थित करती हैं। इसी लिये मम्मटाचार्य ने इन्हें अलंकार की कोटि में नहीं रखा है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में स्पष्ट ही लिखा है कि :—

"रसस्य परिपन्थित्वात् नालंकारः प्रहेलिका"

अतः ये कथन के सुन्दर प्रकार भले ही हों परन्तु अलंकार की श्रेणी में इन्हें कदापि स्थान नहीं मिल सकता।

पहेलियों के प्रकार

पहेलियों के अनेक प्रकार हैं। जन जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सभी वस्तुओं के विषय में पहेलियाँ पाई जाती हैं। इनको साधारणतया सात भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) खेती सम्बन्धी पहेलियाँ
(२) भोज्य पदार्थ सम्बन्धी पहेलियाँ
(३) घरेलू वस्तु सम्बन्धी पहेलियाँ
(४) प्राणिसम्बन्धी पहेलियाँ
(५) प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ
(६) शरीर सम्बन्धी पहेलियाँ
(७) प्रकीर्ण पहेलियाँ

इनमें घरेलू और प्राणिसम्बन्धी पहेलियों की प्रधानता है जो घर में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं—जैसे दीपक, मूसल, लोढ़ा, बेलना, खाट, ताला-चाभी, कुर्ता, धोती आदि—के सम्बन्ध में पाई जाती हैं। सुई दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तु है। इसके सम्बन्ध में यह भोजपुरी पहेली कही जाती है।[1]

१. लेखक का निजी संग्रह

"हती मोटी गाजी मियाँ, हतवत पोंछि।
भागल जाली गाजी मियाँ, धरिहे पोछि ।।"

ग्रामीण लोग कन्द (शकरकन्दी) का प्रयोग अधिक किया करते है। गरीबों की उदरदरी की पूर्ति का यह अनन्य साधन है। इस के सम्बन्ध में निम्न पहेली प्रसिद्ध है :—

लाल छड़ी भुंइ में गड़ी।
सासु ले पतोहि बड़ी ।। (कन्द)

कन्द सफेद और लाल दोनों तरह का होता है अतः उसे 'लाल छड़ी' कहा गया है। मूली के सम्बन्ध में यह उक्ति कितनी सुन्दर है।

एक बाग में ऐसा हुआ।
आधा बगुला आधा सुआ ।। (मूली)

लकड़ी काटने वाली आरी की उपमा पहेलियों में चिड़िया से दी गई है। कितनी सुन्दर पहेली है :—

"एक चिरइया चटनी, काठ पर बइठनी।
काठ खाले गुबुर गुबुर, हगेले भुरुकनी ।।"

प्रकृति के विभिन्न पदार्थों को लेकर भी पहेलियाँ उपलब्ध होती हैं। आकाश के सम्बन्ध में यह पहेली बड़ी प्रसिद्ध है।[1]

"एक थाल मोतिन से भरा,
सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर थाल वह फिरै,
मोती उससे एक न गिरै ।।"

बादल के हाथ-पैर नहीं होता फिर भी वह पहाड़ पर चढ़ जाता है। इसका उल्लेख नीचे की पहेली में किया गया है।[2]

---

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य, पृ० २८१
२. वही

"बेहाथ क बेगोड़ क पहाड़ चढ़ा जाथै।
देखा तो बनखंड़ी बाबा, कौन जनारौ जाथै ।।" (बादल)

बबूल गाँवों में बहुत पाया जाता है। पहेलियों में उसका भी स्मरण किया गया है --

"सावन फूनै, चैत में फरै, ऐसो रूख बोई का करै।
घासी कहै सवासी खेरे, है नियरे पर पैहो हेरे ।।"

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है इन पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है। बहुत सी ऐसी पहेलियाँ है जिनमें हास्य उत्पन्न करने के लिये शब्दों की योजना की गई है। ढेकुल—जिसके द्वारा कुयें से जल निकाल कर खेत सींचा जाता है—के सम्बन्ध में यह भोजपुरी पहेली कही गई है।[1]

"आकाश गइले चिरई, पाताल गइले बच्चा।
हुचुक्क मारे, चिरई पियाब मोर बच्चा ।।"

ब्रज की यह पहेली भी ऐसी ही है जिसके पढ़ने से हास्य रस की उत्पत्ति होती है।[2]

"चार पाग की चापड़ चुप्पो, वापै बैठी लुप्पो।
आई सप्पो लै गई लुप्पो, रह गई चापड़ चुप्पो ।।"

इसका भाव यह है कि भैंस पर मेढ़की बैठ गई और मेढ़की को चील लेकर उड़ गई। यहाँ चापड़ चुप्पो भैंस के लिये, लुप्पो मेढ़की के लिये और सप्पो चील के लिये प्रयुक्त हुये हैं।

परन्तु शुद्ध मनोरंजन के अतिरिक्त कुछ पहेलियों में गणित सम्बन्धी कुछ प्रश्न भी उपलब्ध होते हैं जिनको बतलाने में बालकों को दिमागी कसरत करनी पड़ती है।[3]

उदाहरण—

"चार आना बकरी आठ आना गाय।
चार रुपया भैंस बिकाय, बीसै रुपया बीसै जीव ।।

---

१. लेखक का निजी संग्रह
२. सत्येन्द्र : ब्रज लो० सा० अ०, पृ० ५२९
३. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य, पृ० २८३

अर्थात् बीस रुपया में बीस जानवर खरीदने हैं जिनका मूल्य उक्त प्रकार से है। इसका उत्तर है तीन भैंस, पन्द्रह गाय और दो बकरी।

एक दूसरी पहेली है जिसमें एक मन अन्न चार बाटों से पूरा-पूरा तौलना है जिससे किसी प्रकार कमी न पड़ने पाये[1] :—

"एक मन दाना चारि बाट।
जितना तौलो परै न घाट॥

(उत्तर—१, ३, ९, २७, सेर के बाट)

किसी-किसी पहेली में पौराणिक उपाख्यानों की ओर संकेत रहता है। जब तक व्यक्ति उस कथा को नहीं जानता तब तक उत्तर देने में असमर्थ रहेगा :—

"स्याम बरन मुख उज्जर कित्ते ?
रावन सीस मदोदरि जित्ते।
हनुमान पिता करि लैहों,
तब राम पिता भरि दैहों॥"

प्रश्न—उड़द का क्या भाव है ?

उत्तर—जितना रावण और मन्दोदरी का सिर है अर्थात् १०+१=११ सेर।

प्रश्न—मैं हवा से फटक कर (साफ कर) लूंगा।

उत्तर—तब पिता (दश+रथ) के बराबर १० सेर दूँगा।

इस पहेली का उत्तर देने में यह जानने की आवश्यकता है कि राम और हनुमान के पिता कौन थे तथा रावण के कितने सिर थे।

किसी जाति विशेष की विशेषताओं की ओर भी कहीं-कहीं संकेत किया गया है। ब्राह्मणों की भोजनप्रियता प्रसिद्ध है। मथुरा के चौबे लोगों ने इस क्षेत्र में काफी कीर्ति कमाई है।

अगहन पइठ चैत के प्याट,
तेहि पर पण्डित करैं झप्याट।
है नेरे पैहो ना हेरे,
पण्डित कहे विगहपुर केरे।

इसका उत्तर है—कचौरी। एक भोजपुरी कहावत से इस कथन की पुष्टि होती है जिसमें कहा है कि ब्राह्मण लोग चिउड़ा और दही खाने के लिये चौबीस मील तक

चले जाते हैं और यदि पूरी खाने को मिले तो वे लोग छत्तीस मील तक का धावा बोलते हैं --

"चिउड़ा दही बारस कोस,
लुचुई अठारह कोस।

पहेलियों में आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति भी सुन्दर रीति से की गई है। पति की मृत्यु पर स्त्रियों के सती होने का उल्लेख बहुत पाया जाता है, परन्तु इनमें 'बत्ती' के सती होने का वर्णन हुआ है।

"नाजुक नारि पिया संग सोती,
अंग सो अंग मिलाय।
पिय को बिछुड़त जानि के,
संग सती हो जाय॥

इसका उत्तर है बत्ती और तेल।

इन पहेलियों के लेखकों का नाम कहीं उपलब्ध नहीं होता। किसी-किसी में सवासी खेरे के चासीराम का नाम उपलब्ध होता है। यथा :--

"हाथी हाथ हथिनियाँ काँधें, जात कहाँ हौ बकुचा बाँधे।
घासी कहै सवासी खेरे, है नियरे पै पैहो हेरे।

हिन्दी की प्रत्येक बोली में हजारों की संख्या में पहेलियाँ पाई जाती हैं परन्तु इनके कर्ता का कुछ पता नहीं चलता। पहेलियों का निर्माण आजकल भी जारी है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों को लेकर अनेक पहेलियों की सृष्टि हुई है।

ढकोसले

ढकोसले पहेलियों से भिन्न होते हैं। पहेलियों में प्रश्न और उत्तर सार्थक होते हैं परन्तु इन ढकोसलों में बे-सिर-पैर की ऊँट-पटाँग तथा असंभव बातें कही जाती हैं। इन ढकोसलों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन होता है। ये हास्यरस की सृष्टि करते हैं। कितना भी मनहूस आदमी क्यों न हो इनको सुनकर वह एक बार खिलखिलाकर हँस पड़ेगा। जैसे :--[1]

ऊँट पनारे बहि चला, मैं जानों पिय मोर।
हाथ नाइ पिय ढूँढ़न लागी, मिला कठौती का बेंट॥

---

१. त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा०, पृ० २६४

इसमें सभी बातें असम्बद्ध प्रलाप की भाँति कही गई हैं। दूसरा उदाहरण—

"ऊँटिन कहै ऊँट सौ, सुनु पिय मेरी बात।
राजा एक पद्मिनी हेरै, कोउ कोउ मोहि क सुगात॥"

ढ़कोसलों में जितनी ही ऊट-पटाँग बातें कही जाँय उतना ही वह सुन्दर समझा जाता है। हिन्दी में अमीर खुसरो के ढ़कोसले बहुत प्रसिद्ध हैं।

संस्कृत के नाटककारों ने विदूषक के मुख से अनेक स्थानों पर ऐसी असंबद्ध उक्तियाँ कहलाई हैं जिनको ढ़कोसला कह सकते हैं। शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक में शकार नामक पात्र कुछ ऐसी हास्यजनक बातें कहता है[1] कि :—

किं स शक्रो वालिपुत्रो महेन्द्रो
रम्भापुत्रः कालनेमिः सुबन्धुः।
रुद्रो राजा द्रोणपुत्रो जटायुः
चाणक्यो वा धुन्धुमारस्त्रिशंकुः॥

वह वसन्तसेना से कहता है कि मैं तुम्हें उसी प्रकार से मार डालूंगा जिस प्रकार चाणक्य ने महाभारत में सीता को और जटायु ने द्रौपदी को मार डाला था।[2]

"चाणक्येन यथा सीता, मारिता भारते युगे।
एवं त्वां मोटयिष्यामि, जटायुरिव द्रौपदीम्।"

कहने की यह आवश्यकता नहीं कि शकार की यह उक्ति सिर से पैर तक बेतुकी है। इसमें नाटककार का प्रधान लक्ष्य श्रोताओं तथा दर्शकों को हास्य रस में निमग्न करना है।

भोजपुरी में बहुत सी इसी कोटि की उक्तियाँ है जिसका कोई अर्थ नहीं लगता।[3]

"हाथी चढ़ल पहाड़ पर,
बिनि बिनि महुआ खाई।
चींटी मरलसि बाघ के,
उलुटा पैर उठाई॥"

व्रज में प्रचलित अनेक पहेलियों में भी यही बात पाई जाती हैं जैसे[4]—

---

१. मृच्छकटिक, अंक ८ श्लोक ३४
२. वही, अंक ८ श्लोक ३५
३. लेखक का निजी संग्रह।
४. व्र० लो० सा० अ०

"धौरी घोड़ी लाल लगाम।
वापै बैठ्यौ सालिग्राम॥"

इन पहेलियों और ढ़कोसलों का यदि सम्यक् अध्ययन किया जाय तो इनमें हिन्दू समाज, धर्म और संस्कृति की बाँकी झाँकी देखने को मिल सकती है। अतः लोक साहित्य के इस अंग की ओर भी अधिकारी विद्वानों को ध्यान देना चाहिए।

४. पालने के गीत (Cradle Songs)

उत्पत्ति

पालने के गीत उतने ही प्राचीन हैं जितना मानव का इस पृथ्वी पर आविर्भाव। अतः इन गीतों की परम्परा चिरप्राचीन है। शिशु जब बच्चा रहता है, तब माँ उसको थपकियाँ देकर सुलाती है। वह उसे पालने पर सुलाकर लय से गाकर गीत सुनाती है। यही गीत 'पालने के गीत' कहे जाते है। इन गीतों का कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि ये अर्थ-प्रधान न होकर लय-प्रधान होते हैं। इनमें ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है जो श्रोत्र-सुखद होती है और जो उच्चारण-साम्य के कारण लययुक्त है। ग्रेस रीज़ ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि :—[1]

"They begin with two line Nenna, sung on two notes in a monotonous chant. Their charm lies in the monotonous Cadence of the mother's chant."

माताएं बालक को सुलाते समय निन्नी, नेन्ने, नुन्नी आदि को बड़े आरोह अवरोह से लय के साथ गाती हैं। इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता। इनकी प्रधान मनोहरता माता के स्वरयुक्त उच्चारण में है।

इन पालने के गीतों मे दो या तीन से अधिक शब्द नहीं होते। गाये जाते हुए इन गीतों की आवाज़ झुलाये जाते हुए पालने की आवाज के समान होती है। इनका शिशु के स्नायुयों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में ग्रेस रीज का निम्नांकित मत सटीक एवं उपयुक्त जँचता है।[2]

"The best lullaby would seem to be that sung naturally by peasant mothers with but too or three words and sung on two notes—a sort off soothing drone, corresponding exactly to the sound of a rocking cradle

1. Cradle Songs and Nursery Rhymes.
2. Do.

and having apparently the same effect on the nerves of the child."

छोटे से छोटे बच्चों में लयपूर्ण गीतों को सुनने की भावना जन्मजात होती है। वे उन मधुर गीतों को सुनकर सुख का अनुभव करते हैं और शीघ्र ही निद्रा देवी की गोद में चले जाते हैं।

इन गीतों में स्वर-साम्य को पैदा करने के लिए एक ही शब्द की बार बार आवृत्ति होती रहती है जिससे अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न हो सके। एक भोजपुरी गीत है :—

"हाल हाल बबुआ,
कुरुई में डेबुआ,
माई अकसरूआ,
बाप दरबरुआ,
हाल हाल बबुआ।"

इस गीत के प्रत्येक चरण के अन्तिम शब्द में एक ही प्रकार के स्वरों की उपलब्धि होती है। हाल, हाल की आवृत्ति इसी अभिप्राय से की गई है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए जिसमें समान स्वर वाले वर्णों तथा शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है[1] :—

"अरर बरर पूआ पाकेला,
चीलर खोंइछा नाचेला।
चीलर भइले थोर,
मोर बाबू से मुँहवा गोर॥"

इन गीतों की प्रधानता इनके शब्दों में ही निहित है। स्वरप्रधान होने के कारण इनका अनुवाद किसी दूसरी भाषा में नहीं हो सकता[2]। भोजपुरी की यह लोरी लीजिए—

"चाना मामा ! आरे आवऽपारे आव;
नदिया किनारे आव,
सोने के कटोरवा में दूध भात लेले आव,
बबुआ के मुँहवा में घुटूक, घुटूक, घुटूक"

---

१ लेखक का निजी संग्रह

2. They donot bear translating. Their charm lies in the words themselves, often half meaningless and the monotonous cadence of mother's chant"

ग्रेस रीज—Cradle Songs and Nursery Rhymes.

"आरे आव, पारे आव और किनारे आव" इन शब्दों में जो नाद-सौन्दर्य है वह इनके अनुवाद में अवश्य ही नष्ट हो जायेगा।

अंग्रेजी के पालने के इस गीत में भी यही तत्व निहित है।

By By Lulla lullaby
lullaby oh lullaby

दूसरा उदाहरण—

Ay lilly o lilly lally
All i the night sae early

इन गीतों में माता का पुत्र के प्रति स्वाभाविक प्रेम छलका पड़ता है। पुत्र-वत्सला माँ अपने शिशु को बड़े प्रेम से सुलाती और पुचकारती है। संसार की सभी जातियों के पालने के गीतों में पुत्र-वत्सलता तथा प्रेम अत्यन्त सीधे सादे शब्दों में व्यक्त किया गया है।[1] भोजपुरी का यह उदाहरण लीजिए जिसमें माँ अपने पुत्र से कहती है कि ए पुत्र ! तुम किस चीज़ के बने हुए हो ? कभी तुम चाँदी के और कभी सोने के बने हुए दिखाई देते हो :—

"ए बबुआ तू कथी के ?
खने सोना, खने रूपा के;
माई लँवग के बाप चउवा चन्नन के
पितिया पीतम्बर के, लोग बिराना माटी के
ए बबुआ तू कथी के,
खने सोना खने रूपा के।"

कोई अंग्रेजी विधवा एवं परित्यक्ता माता अपने शिशु से कहती है किए पुत्र ! तुम्हारी नीली आँखों में मैं तुम्हारे पिता की आँखों को देखती हूँ[2]—

"He calls me, he cries
who is father to thee
O birdeen his eyes,
In there blue eyes I see."

एक दूसरे गीत में माता कहती है—मेरे प्यारे शिशु ! आवो और माँ की गोद में खेलो तुम्हारा दगाबाज़ बाप यहाँ से भाग गया है।

---

१. लेखक का निजी संग्रह
२. ग्रेस रीज—वही

But Come to mother, babe ! and play For father false is fled away."

संस्कृत साहित्य में लोरियाँ

पालने के गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। महाभारत में मदालसा का उपाख्यान पाया जाता है जो अपने बाल शिशु को सुलाते समय गीत गाती है। इन गीतों में दर्शन शास्त्र—अद्वैत वेदान्त— के गूढ़ तत्वों का समावेश पाया जाता है। मदालसा अपने शिशु अलर्क को सम्बोधित करती हुई कहती है कि ए पुत्र ! तुम शुद्ध, बुद्ध और निरंजन हो। तुम संसार की माया से रहित हो। तुम मोह निद्रा को छोड़ो:—

"त्वमसि तात ! शुद्ध, बुद्ध ! निरंजन !
भवमायावर्जित ज्ञाता।
भव स्वपनं च मोहनिद्रां त्यज
मदालसाह सुतं माता॥"

रोते हुए बच्चे को सम्बोधित कर मदालसा कहती है कि तुम नाम से रहित हो। न तो यह शरीर तुम्हारा है और न तुम इसके हो। अतः क्यों रोते हो :—

"नामविमुक्त शुद्धोऽसि रे सुत !
मया कल्पितं तव नाम।
न ते शरीरं न चास्य त्वमसि
किं रोदिषि त्वं सुखधाम !"

मदालसा कहती है कि ब्रह्म सत्य है, वह मल रहित है ज्ञान स्वरूप है और संसार का स्वामी है—

"विमलविज्ञानविश्वेश्वरव्यापक,
सत्य ब्रह्म त्वमसि ज्ञाता।
प्राह मदालसाऽलर्कसुतं प्रति,
शास्त्रप्रसिद्धा वरमाता॥"

इससे पता चलता है भारतीय लोरियों का स्तर कितना ऊँचा होता था और उनमें तत्व-ज्ञान का कितना गहरा पुट था।

(५) बाल-गीत

बच्चों की जितनी भी क्रियायें हैं—जैसे बैठना, चलना-फिरना, कूदना, किसी वस्तु को पाने के लिए मचलना, घुटनों के बल चलना तथा थिरक कर नाचना आदि—

इन सभी के सम्बन्ध में लोकगीत पाये जाते है। बालक के समस्त क्रिया-कलापों से सम्बन्ध रखने वाले गीतों को बालगीत कहते हैं। गुजराती लोक-साहित्य के मर्मज्ञ श्री झवेरचन्द मेघाणी ने बाल-गीतों को निम्नांकित दस भागों मे विभक्त किया है।[1]

(१) चलने-कूदने के गीत
(२) बैठे-बैठे चलने के गीत
(३) किसी वस्तु को दिखलाकर बच्चे को बुलाने के गीत
(४) ऋतु सम्बन्धी गीत
(५) पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत
(६) चाँदनी रात के गीत
(७) कथा सम्बन्धी गीत
(८) व्रत सम्बन्धी गीत
(९) गरबा के गीत
(१०) रास के गीत

जब बालक पैरों के बल चलने मे समर्थ हो जाता है, तब उसकी माता उसे चलने के लिए प्रोत्साहित करती है और गीत गा गाकर उसे चलने का अभ्यास कराती है। माँ गाती है :—

"पा ! पा ! पगली
मा मा नी डगली"

दूसरा उदाहरण[2]

"डगमग डगमग डगलां भरता
हरजी मन्दिर आव्या।
पगमां डाक जशोदा माये
गोकुल मां ज चलाव्या।
थेई थेई चरण भरोने कान
आपुं मुक्ताफल ने पान ॥"

इस गीत को द्रुत लय में गाया जाता है।

जब बालक बैठे बैठे हाथों पैरों के बल घसीट कर जमीन पर चलते है उस समय का गीत यह है[3]—

---

१. मेघाणी : लोक-साहित्य भाग १, पृ० १९९
२. वही, पृ० २००
३. मेघाणी : लोक-साहित्य भाग १, पृ० २०१

"अड़को दड़को दही दड़ाको
एतर भेतर चमरो ढाल्यो
ऊर मूर धतुरानुं फूल
शाकर शेरड़ी छोकरां।
खाई जाव खजूर"

बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तब कूदकर चलते हैं।[1] माता उनका चलना देखकर प्रसन्न होती है और गीत गाती है।

"घुंबड़ी सैयर मां रमे
घुंबड़ी काजर नी कोर।
घुंबड़ो आवानी छांय,
घुंबड़ी सैयर मां रमे ॥"

हिन्दी के प्राचीन कवि सूर और तुलसी ने अनेक बाल गीतों की रचना की है जिनमें राम और कृष्ण की बाल लीलाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है।

ऋतु संबंधी गीतों को गा गा कर भी बालकों का मनोरंजन किया जाता है।[2] यथा—

"आव रे बरसाद
घेवरियो परसाद।
उनी उनी रोटली ने कारेलानुं शाक
मेघ मेघ राजा।
दिवाणी ना बाजरा ताजा

वर्षा के स्वागत में यह गीत बड़ा सुन्दर है।[3]

"बरस रे बादड़ी
बीर ना खेत मां
(तो) वटी नुं ढेवरूं
बेन ना पेट मां"

---

१. मेघाणी : लोक साहित्य भाग १, पृ० २००
२. वही, पृ० २७३
३. वही, पृ० ३०४

अनेक पक्षी अनेक प्रकार कलरव करते हैं। उनकी बोली में बड़ा माधुर्य होता है जिसका अनुकरण कर बालकों को रिझाया जाता है। यथा—[१]

घूघी फई
घोवे गई
घूघी फई
घोघे गई

तित्तिर की बोली का अनुकरण इस गीत में हुआ है जिसमे एक अन्तर्कथा भी छिपी हुई है—

उठ बेन ! उठ बेन !
तल तेतला
तल तेतला
तल तेतला

भोजपुरी प्रदेश में पशुओं के संबंध में अनेक बाल गीत प्रसिद्ध है जिन्हें बालक प्रायः गाया करते हैं। इन गीतों का कुछ विशेष अर्थ नही होता। केवल बालकों के मनोरंजन के लिए ही इनकी रचना हुई है। बन्दर के संबंध मे यह गीत प्रसिद्ध है—[२]

"चोकर के लिट्टी, कसइली के दाल।
ए बनरा तोर गड़िये लाल॥

ऊँट के संबंध में यह गीत लड़के बड़े चाव से गाते हैं।[३]

"ए ऊटवाँ दुगो बूटवां दे।
भरल बाजार में पइसा ले।"

गीदड़ बड़ा डरपोक जानवर है। वह आदमी को देखकर भाग चलता है। उसकी इस विशेषता का वर्णन इस प्रकार किया गया है।[४]

"एक देखि लपटी
दूई देखि झपटी
तीनि देखि चलिहे पराइ।"

सांड़ की पीठ पर 'ककुद्' होता है जिसे भोजपुरी में 'बदुरी' कहते है। बच्चे जब किसी सांड़ को देखते हैं तब जोर से चिल्ला कर कहने लगते हैं कि—[५]

---

१. मेघाणी : वही ३०४
२: लेखक का निजी संग्रह
३. वही।
४. लेखक का निजी संग्रह
५. वही

"साँड़वा के पीठि पीठि बदुरी विआहल जाला
हे हा हा, हे हा हा, हे हा हा, हे ॥"

रात्रि काल में जब चाँदनी छिटकी होती है तब मातायें बालकों को चन्द्रमा को दिखलाती है और उसे अपने पास बुलाती हैं।

चाँदा मामा आरे आव, पारे आव
नदिया किनारे आव ।

गुजरात में भी इस प्रकार के गीत पाये जाते है।

यथा—

रातां बगलां रणे चड़याँ
पाणी देखि पाछं वल्वां।
एक बगलानी भांगी कोडी
लाव्या रे लंकानी दोड़ी ॥

कुछ ऐसे भी गीत जिनमे कोई कोई अन्तर्कथा सन्निहित नहीं हैं।[1]

काणी कहूँ भैया
सांभड़ मारा छैया।
छैया माड़ो हाट
हाट माँथी निकल्यो भाट

भोजपुरी में भी ऐसे अनेक बाल-गीत उपलब्ध है जिसमे किसी न किसी अन्तर्कथा का संकेत पाया जाता है। भोजपुरी का यह बाल-गीत नीचे दिया जाता है जिसमें राम रावण के युद्ध की कथा की ओर संकेत किया गया है। मन्दोदरी रावण से कहती है कि[2]—

"अठल मठेल गोइयाँ, अठल मठेल
राजा घोड़ विसंभर तेल।
कति कति आवे ? खेल खेलावे;
कवन खेलि ? अठल मठेल ॥
केकरा पर मेलि ? तोहरा पर मेलि।

---

१. मेघाणी—लो० सा० भाग १ पृ० २०५
२. लेखक का निजी संग्रह।

विभिन्न अवसरों पर गेय व्रत-गीत भी बालकों का मनोरंजन करते हैं। पौष पूर्णिमा के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

चाँदा तारी चानकी
मारू चुरमूँ।
भाई जम्यो
बेन भूखी।

पालने के गीतों का जन्म

पालने के गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। इनके उद्गम का स्रोत धर्म की पृष्ठभूमि में सन्निहित है। भागवत में कृष्ण चरित का साङ्गोपाङ्ग वर्णन मिलता है। कृष्ण के पैदा होने, सूप में रख कर गोकुल पहुँचाने, घुटने के बल चलने, थिरक-थिरककर नाचने, दूध पीने, माखन चुरा कर खाने आदि—समस्त बाल क्रीड़ाओं का उल्लेख भागवतकार ने बड़े उत्साह के साथ किया है। यशोदा माता बालक कृष्ण को पालने में झुलाती हैं और तरह तरह के गीत गाकर उन्हें सुलाने का प्रयास करती है। कृष्ण भगवान् तो है ही साथ ही वे आदर्श बालक हैं, आदर्श राजनीतिवेत्ता हैं और आदर्श लोकरक्षक हैं। कृष्ण की बाल लीलाओं का जितना सुन्दर वर्णन महाकवि व्यास ने किया है उतना संभवतः अन्य किसी ने नहीं। महाभारत में मदालसा की कथा प्रसिद्ध है जो अद्वैत वेदान्तपरक गीतों को गा गा कर अपने बालक अलर्क को सुलाया करती थी। हिन्दी के कवियों ने—विशेषकर सूरदास और अष्टछाप के भक्तों ने—भगवान् कृष्ण की शिशु क्रीड़ा का बड़ा मरम तथा सजीव वर्णन किया है। महाकवि सूरदास जी कहते हैं कि:—

"यशोदा हरि पालने झुलावै,

अंग्रेजी साहित्य में लोरियाँ

गरीब माता की गोद ही उसके बच्चे का पालना है। अतः वह अपने बालक को गोद में लेकर उसको सुलाने या रिझाने के लिए गीत गाती हैं। माइकेल एञ्जिलो, राफेल आदि प्रसिद्ध चित्रकारों ने कुमारी माता मेरी की गोद में विराजमान बालक ईसा मसीह का बड़ा ही सुन्दर चित्र अंकित किया है। यूरोपीय साहित्य में पालने के गीत प्रचुर संख्या में उपलब्ध होते हैं। कोई विदेशी माता कह रही हैं कि ए मेरे बच्चे! तू चुप हो जा, तू अब सो जा। स्वर्गीय देवदूत तुम्हारी

१. मेघाणी—लो० सा० १, पृ० २०७

रक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे सिर पर स्वर्गीय आशीर्वादों की अजस्र वर्षा हो रही है :--

"Hush ! my deer, lie still and slumber,
Holy angles guard thy bed.
Heavenly blessing without number,
Gently falling on the head".

कोई गुर्जरदेशीय माँ अपने बालक से कहती है ।[1]

"सूई जा बीर सूई जा
लाडकडा वीर सूई जा ।
तने राम जी रमाड़े,
वीर सूई जा ।
तने सीता जी सुवरावे,
वीर सूई जा ।।".

बालक को सुलाती हुई यूरोपीय माता कितने मधुर शब्दों में अपने भावों को प्रकट करती है।

So fair, so dear, so warm upon my bossom
And in my hands the little rosy seet.
Sleep on, my little bird, my lamb, my bossom !
Sleep on, sleep on, my sweet.

रस की दृष्टि से इन गीतों के प्रकार

यदि रस की दृष्टि से इन पालने के गीतों का विवेचन किया जाय तो यह स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि इनमें प्रधानतया तीन रसों का मिश्रण हुआ है। ये गीत गंगा, यमुना और सरस्वती की त्रिवेणी है जिनका प्रवाह आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है। वात्सल्य करुण और वीर इन रसों से इन गीतों की सृष्टि हुई है। जब माता प्रेमपूर्वक अपने लाड़िले को पालने पर सुलाती हुई गीत गाती है तब इनसे वात्सल्य रस छलका पड़ता है। उदाहरण रूप में जो गीत दिये गये हैं इनसे यह बात प्रमाणित होती है। परन्तु कुछ ऐसे भी गीत हैं जिनमें विषाद की गहरी रेखा खिचीं दिखाई पड़ती है। कोई विधवा माता अपने रोते हुए बालक को सान्त्वना देती हुई कहती है कि--

---

१. मेघाणी—लो० सा० भाग १, पृ० १२५

Weep not my wanton, smile on my knee;
When thou art old, there is grief enough
[for thee.
He must go, he must kiss
Child and mother, baby bliss !
For he left his pretty boy
Father's sorrow, father's joy".

कोई विदेशी स्त्री-जिसका पति लम्पट है और जिसने उसका परित्याग कर दिया है--अपने नन्हें शिशु से कहती है कि :--[1]

"Come little babe, come silly soul.
The fathers shame, thy mother's grief".

वही माता आगे चलकर कहती है कि ए बालक ! तुम्हें क्या पता कि मेरे दुःख का क्या कारण है ? प्यारे बच्चे ! तुम मेरी गोद में आकर खेलो क्योंकि तुम्हारा विश्वासघाती एवं झूठा पिता मुझे छोड़कर भग गया है :--

"Thou little thinkest, and less dost know,
The cause of this thy mother's moan.
But come to mother babe and play,
For father false is fled away.
If any ask thy mother's name
"Tell her, by love she purchased blame".

पालने के गीतों में वीर रस का परिपाक भी अच्छा हुआ है। इन गीतों को गाकर सुनाने पर बालकों के अचेतन मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अंग्रेजी के इन गीतों में कितना वीर-भाव भरा हुआ है।

"O fear not the bugle, though loudly it blows,
It calls but the warders that guard thy repose.
Their bows wonld be bended,
their bades would be red.
Ere the step of a foeman draws near to thy bed"

---

१. मेघार्णं.—लो० सा० भाग १ पृ० २२८

गुजराती में भी वीर रस के अनेक गीत पाये जाते हैं। शिवाजी और वनराज के विषय में ऐसे बहुत से गीत प्रसिद्ध हैं। शिवाजी के संबंध में मातायें यह गीत गाती हैं :—

"पोढ़ जो रे मारां बाल,
पोढ़ी लेजे पेट भरीने आज।
काले काला युद्ध खेलाशे
सूवा टाणू कथांय नै रे-शे ।।

वनराज के संबंध में गुजराती मातायें इस गीत को गाकर अपने बालकों को सुलाती हैं :—

"हाँ रे बीरा आजुनी रात आराम,
हाँ रे बाला आजुनी दिन विश्राम।
काले ने केसरिया रे, खाड़ा धारे खेल जो हा राज।
काले कंकुमरिया रे अरि ने तेड़ां मेल जो हो राज ।।

पालने के मराठी गीत

महाराष्ट्र वीर-प्रसू भूमि है। इसके कण कण में वीरता भरी हुई है। यहाँ बच्चे बच्चे में वीर-भाव भरे हुए हैं। शिवाजी की जन्मभूमि में ऐसे भावों की उपलब्धि स्वाभाविक ही है। झाँसी की रानी का नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इस रानी ने रणक्षेत्र में जो वीरता दिखलाई वह इतिहास की अमर कहानी है। मराठी भाषा में लक्ष्मीबाई की वीरता से संबंधित अनेक गीत गाये जाते हैं।१

लक्षुमीबाई आली, आलीस जाउ न को;
धराला पदर सोडु न को, केशव बाल !
लक्षुमीबाई आली, तां ब्यानी दूध प्याली,
धराला मानवली, वासुदेव बालाच्या !
मालया-चा मलया मधे माली बैसला [कुबो मधे।]
वलयां घाली टोपी मधे
केशव बालाच्या !"

शिवाजी के संबंध में बहुत से पालने के गीत मराठी भाषा में प्रसिद्ध हैं।

१. मेथाणी—लो० सा० भाग १, पृ० २३३

उनमें से एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे :—

'हि दासी जले मही अम्बिका माय
हंवरड़ा फोड़ी हाय !
निज शत्रुनी हिये भंगीले छत्र
मांगल्य सूत्र स्वातंत्र्य !
ह्या दुःखाने दुःखी फार जे पाही,
मी जीजा बाई तब आई''

शिवाजी की वीरता एवं आर्य-धर्म की रक्षा की प्रशंसा में कहा गया यह गीत कितना मर्मस्पर्शी एवं प्रभावोत्पादक है।

"गद्गदा तदा पालण्यात शिव हसला
जणु मातृ बोल त्या रुचला !
मग करी लीला मृदुल मुष्टि बलवून
जणु म्हणे इने रिपु वधीन !
अशी आर्य शिखा रक्षिल या भावे हो
जावला शीतो खेले हो।
श्री जीजा आईला असा क्रीडता तान्हा
दाटला प्रीति चा पान्हा !''

भोजपुरी मे वीररसात्मक पालने के गीत उपलब्ध नहीं होते परन्तु उनकी सत्ता का अभाव है ऐसा नही कहा जा सकता। जिस भूमि में आल्हा ऊदल जैसे पराक्रमी योद्धा और कुंवर सिंह जैसा रण-बाँकुरा पैदा हुआ है वहाँ ऐसे गीतों का अभाव असंभव है।

धाय के गीत (Nursery Rhymes) उन गीतों को कहते हैं जिन्हें नर्स या धाय बालक को सुलाते समय गाती है। इन गीतों में चूंकि (Rhythm) की ही प्रधानता होती है अतः इन्हें 'नर्सरी राइम्स' कहते हैं। हिन्दी मे इन्हें 'धाय के गीत' कह सकते हैं। अंग्रेजी के इस उदाहरण में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनमें ताल लय ही सर्वस्व है।

Brown eyes
Straight nose,
Dirt pies
Rumpled clothes
Falling down

Off chairs
Breaking crown
Down stairs
Folded hands
Saying prayers,
understands
Not, not cares,
Thinks it odd
Smiles away :
Yet may God
Hear her Pray

गुजराती का यह गीत इसी कोटि में आयेगा—

डगमग डगमग डगला भरता
हरजी मन्दिर आव्या—आदि ।

भोजपुरी का गीत 'चाना मामा आरे आव, पारे आव, नदिया किनारे आव,' नर्सरी राइम का उपयुक्त उदाहरण है ।

६—खेल के गीत

महत्त्व

किसी देश के खेल-कूद के अध्ययन से वहाँ के निवासियों के स्वभाव, साहस और शक्ति का पता चलता है । जिस जाति के खेल जितने साहसपूर्ण और वीरता से युक्त होंगे वह जाति उतनी ही साहसिक समझी जायेगी । खेल-कूद लोक-संस्कृति के प्रधान अंग हैं । इनके अनुसन्धान से यह जाना जा सकता है कि आदिम जातियों की अवस्था कैसी थी ? उनके मनोरंजन के क्या साधन थे ?

इन खेलों में सहयोग की प्रवृत्ति लक्षित होती है । अंग्रेजी की एक कहावत है कि वाटरलू की लड़ाई क्रिकेट के मैदान में ही जीती गई थी ।' जिसका आशय यह है कि साथ मिलकर काम करने की आदत से ही बैलिङ्गटन को विजयश्री प्राप्त हुई थी । आदिम लोगों में खेल-कूद में सहयोग की जो भावना थी वह आज भी उपलब्ध होती है । भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न प्रकार के खेल पाये जाते हैं । यदि इनका सम्यक् अध्ययन किया जाय तो लोक संस्कृति के अनेक तथ्यों का उनसे पता चल सकता है ।

भारतवर्ष में प्रचलित खेल-कूदों की संख्या असंख्य है । अतः उत्तर प्रदेश के

पूर्वी जिलों में प्रचलित उन्हीं खेलों का संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जायेगा जिनमें गीतों का प्रयोग मनोरंजन के लिए किया जाता है।

खेलों के भेद

भोजपुरी प्रदेश में दो प्रकार के खेल प्रचलित हैं। (१) घर में खेले जाने वाले खेल (Indoor games) (२) मैदान में खेले जाने वाले खेल (Outdoor games)। इन दोनों प्रकार के खेलों में गीत का सहयोग पाया जाता है। (१) कबड्डी—के खेल ने अब तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त कर ली हैं। इस खेल के खिलाड़ी दो भागों में विभक्त कर दिये जाते हैं तथा इन दोनों दलों के बीच में रेखा खींच दी जाती है। एक पक्ष का व्यक्ति दूसरे दल के लोगों को छूकर अपने दल में भाग आता है। बालक दूसरे दल में जाते समय निम्नांकित गीत या तुकबन्दी गाते रहते हैं[1]। गीत गाते हुए दूसरे दल में जाने को 'कबड्डी पढ़ाना' कहते हैं।

(१) ए कबड़िया रेता, भगत मोर बेटा।
भगताइन मोरी जोरी, खेलबि हम होरी।
(२) एक कबड़िया आईले, तबला बजाईले।
तबला में पइसा, लाल बगइचा॥
(३) आव तानी हो, परइह जनि हो।
टाँग जाई टूटी, कपार जाई फूटी''
लड़कपन छूटी।
(४) आम छू, आम छू, कउड़ी झनक छ॥
आम छू आम छू, कउड़ी बदाम छ॥

इन गीतों में तुकबन्दी ही प्रधान होती है। अर्थ विशेष महत्व नहीं रखता।

२. मौन साधन

बच्चों का एक खेल है जिसमें उन्हें मौन रहने की साधना करनी पड़ती है। सन्ध्या के समय जब दो चार लड़के साथ हैं तो वे आपस में मौन रहने की प्रतियोगिता करते हैं। इस खेल में इस बात की परीक्षा की जाती है कि कौन अधिक देर तक चुपचाप बैठ सकता है जो बच्चों के स्वभाव के नितान्त प्रतिकूल है। जब सब लड़के एक साथ आकर बैठ जाते हैं तब उनमें से एक लड़का नीचे लिखी पदावली को कहता है जिसमें गाली द्वारा माँ-बहिन की शपथ देकर मौन रहने के लिए कहा गया है। :—

---

१. लेखक का निजी संग्रह

"आदा बादा नून सवादा;
मछरी के कंटा, बैल के सींग;
जे बोली से गँइयाँ बोली;
सगरी नगरिया बोली;
जे बोली ओकरा माई के...।"

ऐसा कहने के पश्चात् सभी लड़के चुपचाप बैठ जाते हैं। यदि कोई चपलता-वश बोल उठता है तो माँ की गाली उसी के सिर पड़ती है।

एक दूसरे खेल में कुछ लड़के एक साथ बैठ जाते हैं। एक लड़का दूसरे लड़के के पैर के अंगूठे को अपने बाये हाथ की मुट्ठी से पकड़ता है। फिर दूसरे लड़के भी अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी को उसके ऊपर रखते हैं। फिर वही लड़का अपने दाहिने हाथ को तलवार मानकर उन मुट्ठियों को काटता है और गीत गाता जाता है।[1]

"तार काटो तरकुल काटो, काटो रे बन खाजा।
हाथी पर के घुघुरा चमकि चले राजा।
राजा के रजइया अवरू बाबू के दूपाटा।
इचि मारो, खींछि मारो, मूसर अइसन बेटा॥"

ऐसा कहकर वह मुट्ठियों की शृङ्खला को तोड़ देता है और इस प्रकार खेल समाप्त हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस गीत का कुछ अर्थ नहीं है। यह केवल तुकबन्दी मात्र है।

३. झाकाझूमरि

इस खेल को प्रायः लड़कियाँ ही खेलती हैं। आठ-दस लड़कियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर गोलाई में खड़ी हो जाती हैं। वे कभी आगे आती हैं और कभी पीछे जाती हैं। इस प्रकार वे झूमती रहती हैं। झूमते समय ये गीत गाती रहती हैं।

"एक हाड़ी झिकड़ा, बड़ेरी लागे धूँआ।
सासु पकवली गल गल पूआ।
अपने खइली घिआवाहा पूआ।
हमारा के दिहली तेलहवा पूआ।

---

१. लेखक का निजी संग्रह

ना खाइबि पूआ, खेलबि जूआ।
ना खाइबि पूआ, खेलबि जूआ ॥"

ऐसा ज्ञात होता है कि इस खेल में भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला का प्रभाव पडा है। इसमें भाग लेने वाली लड़कियों की संख्या जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा होता है। झूम झूमकर खेलने के ही कारण इसका नाम झाका-झूमरि पड़ गया है।

४. ओका बोका का खेल

यह खेल बड़ा ही मनोरंजक है। इसमें दस पाँच लड़के एक साथ बैठ जाते हैं। ये अपने दोनों हाथों की अँगुलियों से जमीन को छूते हुए अपनी हथेली को ऊपर उठाये रहते हैं। फिर उसे दल का नेता प्रत्येक बालक के हाथ को छूता हुआ यह कहता है :—

"ओका बोका तीन तड़ोका।
लउवा लाठी चन्दन काठी।
बाग में बगउवा डोले।
सावन में करइला फूले।
ओ करइला के नाँव का?
इजइल बिजइल, पानवा फूलवा
ढोढ़िया पचक ॥"

पहिले यह अगुआ बालक 'ओका' कहकर दूसरे बालक के ह. . को छूता है। फिर 'बोका' कहकर उसके दूसरे हाथ को स्पर्ण करता है। इसी प्रकार प्रत्येक बार वह यही क्रम रखता है। 'पचक' शब्द कहकर यह किसी बालक के हाथ को जमीन पर 'पिचका' देता है।

इसी प्रकार एक दूसरे खेल में लड़के यह गाते है—

"ताई ताई पुरिया घीव में चभोरिया।
हम खाई कि भउजी खाई
भउजी पतरेंगिया ॥"

इन खेल के गीतों में कहीं-कहीं आधुनिकता का पुट पाया जाता है। बच्चे रेलगाड़ी का खेल खेलते हैं जिसका एक गाना इस प्रकार है—

"माल बाबू माल बाबू, टिकट कटाइ द।
बलिया के गाड़ी आइल, सिंगल गिराइ द ॥"

विदेशों में बालकों के खेल

संसार के प्रायः सभी देशों में बालकों के खेल संबंधी गीत पाये जाते हैं। उत्तरी हैटी (Northen Haiti) प्रदेश के बहुत से खेल भोजपुरी खेलों से समानता रखते हैं। जिस प्रकार भारतीय खेलों का उद्देश्य बाल मनोरंजन है उसी प्रकार इन खेलों का लक्ष्य भी यही है। हैटी प्रदेश के एक खेल का नाम है 'जोम्बी मैन-मैन मैन—। यह खेल लड़कियों को बड़ा प्रिय है। इस खेल में एक वृत्त बनाया जाता है जिसके भीतर कई खेलाड़ी रहते हैं। जब कोई खेलाड़ी इस गोलाई से बाहर जाता है तब बाहर का खेलाड़ी उसे पकड़ने का प्रयास करता है। बाहरी खेलाड़ी के लिए यह अभीष्ट है कि वह उसे पकड़ने में समर्थ हो सके। खेल होते समय सभी खेलाड़ी यह गीत गाते हैं।[1] :—

Catch the small chicken for me.
The small chicken escapes. For me.
Where is he passing ? For me.
Catch the small chicken for me.

"माता को पालने पर रख देने" के पश्चात् यह खेल समाप्त होता है। उस समय दो खेलाड़ी अपने हाथों को फैलाकर एक दूसरे का हाथ पकड़ लेते हैं। अपने फैलाए हुए हाथों पर एक छोटी लड़की—जो खेल में सम्मिलित रहती है—को बैठा लेते हैं और उसे तब तक झुलाते रहते हैं जब तक वे थक न जायँ। दूसरे खेलाड़ी अपने स्थानों पर बैठे हुए यह गीत गाते हैं।[2]

"Put mother in the cradle. Ding-dong
Put papa in the cradle ,,
It was one monday morning ,,
I am going to Limbe ,,
I meet an old, infim man. ,,
I say "good morning, Papa" ,,
I ask what time it is. ,,
He says that it is past mid-day ,,
Put mother in the cradle ,,

---

१. सिमसन्—Peasant Children's Games in Northern Haiti फोकलोर Vol. LXV. No 2, P 65
२. सिमसन—फोकलोर भाग LXV नं० २, पृ० ६७।

उपर्युक्त खेल भोजपुरी कबड्डी और झला के खेल से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। हैटी प्रदेश में प्रचलित एक दूसरा खेल है जिसे 'विवाह का खेल' कहा जा सकता है। इसमें लड़के लड़कियाँ दोनों सम्मिलित होते हैं। किसी कल्पित 'माता' को लड़कियाँ चारों ओर से घेर लेती हैं। इन लड़कियों के सामने दो 'भाई' खड़े हो जाते हैं। बड़ा 'भाई' माता की ओर नाचता हुआ यह गाता आता है[1]

"Let him marry who wishes to marry !
As for me, I shall never marry
As for me, I shall never marry
And we are two brothers
And we wish to marry
I am the elder
I must begin.
Let him marry who wishes to marry.
I see a young girl
I am going to greet her
Come dance with me
Come dance with me,

इस प्रकार बारी बारी से ये दोनों 'भाई' उक्त 'माता' की लड़कियों से विवाह कर लेते है। जब लडकियाँ अपने पति के साथ चली जाती हैं तब 'माता' अकेली पड़ जाती है। उसके दुःख को देखकर दर्शकगण सहानुभूति दिखलाने के ठीक विपरीत उसकी खिल्ली उड़ाते है।

उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि सर्वत्र बालकों के खेलों मे गीत का पुट पाया जाता है। इन गीतों के अध्ययन से बालकों की मनोवृत्ति का पता चलता है। ऊपर हैटी के विवाह के गीत का उल्लेख अभी किया जा चुका है। भोजपुरी प्रदेश में भी लड़कियाँ गुड़िया का खेल खेलती हैं। इसमें गुड़िया का विवाह किसी वर से कर दिया जाता है। इससे बालकों तथा बालिकाओं मे विवाह सम्बन्धी भावना का पता चलता है। कुछ खेल के गीतों में धनी और गरीब समाज की झांकी मिलती है। इस प्रकार इस दृष्टि से इन खेलों का अध्ययन बड़ा ही रुचिकर सिद्ध हो सकता है।

---

१. सिमसन्—फोकलोर भाग LXV नं० २, पृ० ७२

अध्याय १३

लोक-संगीत

लोक-गीतों की आत्मा लोक-संगीत है। लोक संगीत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। बहुत से विद्वानों का मत है कि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोक-संगीत से ही हुई है। यही कारण है लोक-संगीत का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर परिलक्षित होता है। अतः इसकी विशेषताओं का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

लोक जीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब लोक-गीत और लोक-संगीत में दिखाई पड़ता है क्योंकि लोक-गीतों में शब्दों और स्वरों के चयन में कृत्रिमता का अभाव रहता है। इनमें लोक जीवन का सीधा सादा चित्र उपलब्ध होता है। लोक-गीत सरल, सुन्दर, अनुभूतिमय तथा संगीतमय होते हैं। कदाचित् ही कोई ऐसा लोक-गीत हो जो संगीत से अनुप्राणित न हुआ हो।

संगीत के बिना लोक-गीत प्राणरहित शरीर के समान है। जल रहित सरिता के तुल्य है, फल से विरहित वृक्ष की तरह है। कहने का आशय यह है कि लोक-गीतों का स्वारस्य, उनके आनन्द का रहस्य, उनके संगीत में अन्तर्निहित है। अतः लोक संगीत का अनुसन्धान लोक-गीतों का एक अनिवार्य अंग है।

लोक-गीतों के गाने की विधि

लोक-गीतों के गाने की एक विशेष पद्धति होती है। जो लोग इस विधि से पूर्णतया परिचित नहीं है वे इसके गाने की पद्धति को नहीं समझ सकते। इन गीतों के गाने की विधियों का ज्ञान पूर्ण रूप से तभी किया जा सकता है जब इन गीतों की स्वर लिपि (नोटेशन) तैयार कर ली जाय। यूरोपीय देशों में लोक साहित्य के विद्वानों ने अपने देश के लोक गीतों का संग्रह कर उनकी स्वर लिपि भी निर्मित कर ली है। इसके अतिरिक्त उन्होंने उन गीतों के संगीत को कराल काल के गाल से बचाने के लिए इनको टेप रेकार्ड भी कर लिया है। परन्तु भारतीय लोक संस्कृति के विद्वानों का ध्यान अभी इस दिशा में विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुआ है। डा० वैरियर एलविन ने अपनी पुस्तक में बैगा तथा गोंड जातियों के लोकगीतों की स्वर-लिपि प्रस्तुत की है जो अत्यन्त उपादेय है।[1]

---

१. फोक साङ्ग्स आफ मैकल हिल्स (आ० यू० प्रे०)

लघु और गुरु का शिथिल बन्धन

यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि लोक-गीत पिंगल शास्त्र के साँचे में ढाल कर तैयार नहीं किये जाते। प्रत्युत इनका प्रवाह उस पहाड़ी नदी के समान होता है जो स्वच्छन्द गति से बहा करती है। गीतों में पिंगल शास्त्र का कठोर बन्धन न होने के कारण उनकी कोई पंक्ति तो बहुत बड़ी हो सकती है और कोई बहुत छोटी। परन्तु लोक-गायक उन गीतों को गाते समय अक्षरों तथा मात्राओं को इस प्रकार से घटा बढ़ा लेते हैं जिससे छन्दोभंग का बिल्कुल ही पता नहीं चलता। इन लोक-गीतों में लघु तथा गुरु मात्राओं का नियम बड़ा शिथिल होता है। अतः गवैये इनको गाते समय अपनी सुविधा के अनुसार कहीं लघु मात्रा को दीर्घ कर देते हैं और कहीं दीर्घ मात्रा को लघु। समवेत स्वर (कोरस) में गाते समय स्त्रियाँ गीतों को इस प्रकार गाती हैं जिससे अक्षरों अथवा मात्राओं की त्रुटि से उत्पन्न दोष का कुछ पता नहीं चलता। निम्नांकित उदाहरण लीजिए:—

"झूठ भइले सबुआ, झूठ वियफहया;
झूठ भइले कागवा के बोल।
झूठ भइले बाभना के पातारा ओ पोथिया,
कि सइयाँ नाहीं अहले हा मोर॥

"इस बिरहे में 'झूठ' और 'नाही' शब्दों में दीर्घ ऊकार और दीर्घ ईकार का उच्चारण लघु उकार और लघु इकार के रूप में किया जाता है। यदि इनका दीर्घ रूप में उच्चारण किया जाय-जैसा कि होना उचित है—तो छन्दोभंग हो जाता है। संस्कृत के आचार्यों ने भी कहा है कि :—

अपि माषं मषं कुर्यात् छन्दोभङ्गं न कारयेत्"। अर्थात् माष शब्द को मष भले ही लिखना पड़े अथवा पढ़ना पड़े परन्तु छन्दोभंग नहीं करना चाहिए।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये :—

"पांच, पचीस कोसे बसेले महाजन हो,
कि आहो रामां, कवना अवगुनवे हरि मोरे रूसेले हो राम।
बाट बटोहिया हो रामा, तुहु मोरे भइया, हो,
कि आहो रामा, एहि बाटे देखल हरि मोरे रूसल हो राम।"

उपर्युक्त गीत में 'बसेले' और 'रूसेले' में एकार का 'हो' में ओकार का, 'बाटे' और 'मोरे' में एकार का और 'आहो' शब्द में आकार का उच्चारण लघु रूप

में किया जाता है। यदि इन शब्दों का उच्चारण दीर्घ रूप में किया जाय तो छन्द की गति में भंग हो जाता है। अतः गाने की सुविधा के अनुसार इन शब्दों का उच्चारण लघु करना पड़ता है।

कहीं-कहीं गेयता के सौकर्य्य के लिए ह्रस्व का दीर्घ भी उच्चारण किया जाता है। छन्द की गति कहीं त्रुटित न हो जाय, इसलिए यह परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। नीचे का यह गीत सुनिये।

"उड़ल-उड़ल सुगा गइले कलकतवा
कि जाइ बइठेना, मोर सामी जी के पगिया।
कि जाइके बइठे ना।
पगरी उतारि सामी जाँघ बइठवले;
कि कह सुगा ना, मोरे घर के कुसलतिया,
कि कह सुगा ना।
माई तोहरा कुटनी, बहिनि तोरि पिसनी,
कि जोइया कइली ना, तोरि दउरी दोकनिया
कि जोइया कइली ना।"

इस पूर्वी गीत की प्रथम पंक्ति में 'उड़ल-उड़ल' शब्द यद्यपि लघु स्वरों से युक्त है परन्तु इसका उच्चारण दीर्घ किया जाता है। इसी प्रकार से चौथी पंक्ति में 'कह' शब्द का भी उच्चारण दीर्घ रूप में होता है। 'पगिया' शब्द में 'प' का 'कुसलतिया' शब्द में प्रथम चार अक्षरों (कु, स, ल, ति) का उच्चारण दीर्घ रूप में समझना चाहिए। उदाहरण के लिए अवधी का यह प्रसिद्ध गीत लीजिए :—

"छायक पेड़ छिउलिया, तो पतवन गहवर लो।
आरे रामा तिहितर ठाढ़ हरिनियाँ
त मन अति अनमनि हो।"

यहाँ 'तिहितर' शब्द में 'हि' का उच्चारण दीर्घ है।

उपान्त्य स्वर को लुप्त स्वर में उच्चारण करना

लोक-गीतों के गाने की दूसरी विधि यह है कि इनके उपान्त्य स्वर—अर्थात् चरण के अन्तिम अक्षर के ठीक पूर्व वाला स्वर—को लुप्त स्वर में उच्चारण किया जाता है। यह नियम विशेषतया विरहा के गीतों के लिए प्रयुक्त होता है। इसमें गीत के अन्तिम स्वर का लघु उच्चारण किया जाता है और उसके ठीक

पहिले वाले स्वर—उपान्त्य स्वर—का उच्चारण लुप्त स्वर में करते हैं। उदाहरण के लिये यह बिरहा लीजिए :—

"उड़ली चिरिइया, झुरे झाँग बइठलि,
राम नामवा के गोहराई।
निचवा जे घूमत बाड़े पापी रे बहेलिया,
ऊपर बाजवा रे मेड़राई॥"

इस बिरहे के दूसरी और चौथी पंक्तियों में 'गोहराई' और 'मेड़राई' शब्दों में जो उपान्त्य स्वर 'रा' है, उसका उच्चारण प्लुत स्वर में किया जाता है। जैसे—

गो ह रा ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ई।
और मे ड़ रा ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ई।

इन बिरहों का गायक (अहीर) जब अपने कानों में उँगली डाल कर "राम नामवा के गोहराई" इस द्वितीय चरण में, गोहराई शब्द के 'रा' का उच्चारण करता है तब वह एक दो मिनट तक इसका लुप्त स्वर में उच्चारण करता रहता है। इस शब्द के उच्चारण का ठीक ज्ञान तो बिरहा गाते हुए किसी अहीर के मुख से सुनकर ही हो सकता है। परन्तु इन बिरहा के गीतों की स्वर लिपि से—जो आगे दी गई है—स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि बिरहे के उपान्त्य स्वर का उच्चारण किस प्रकार किया जाता है। उपर्युक्त बिरहे को गाते समय इसका शुद्ध उच्चारण निम्न प्रकार से किया जायेगा—

'राम नामवा के गो ह् रा- आ- आ- आ- आ- आ ई।
ऊपर बाजवा रे मे ड़ रा- आ- आ- आ- आ- आ ई॥"

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह उच्चारण—भेद केवल दूसरे और चौथे चरण के अन्तिम शब्दों में ही पाया जाता है। प्रथम और तृतीय चरणों के उच्चारण में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए :—

"सिरि बिरिना बनवा के कुज गलियवा में
राधे ओर मवली हा डारी।
एकहू बइरि राधे तूरहू ना पवली
कि देले कान्हा बँसिया बजाई॥"

यहाँ पर भी द्वितीय एवं चतुर्थ चरण के अन्तिम शब्द 'डारी' और 'बजाई,

में 'डा' और 'जा' का उच्चारण लुप्त स्वर में किया जायेगा और इन दोनों शब्दों के अन्तिम अक्षर 'री' और 'ई' का उच्चारण दीर्घ होते हुए भी ह्रस्व ही किया जायेगा—

इस बिरहे को गाते समय उच्चारण की दृष्टि से इसका स्वरूप निम्नांकित होगा—

"सिरि बिरिना बनवा के कुंज गलियवा में
राधे ओर मवलो हा डा-आ-आ-आ-आ-आ-आरि।
एकहू बइरि राधे तूरहू ना पवली,
कि देले कान्हा बंसिया ब जा-आ-आ-आ-आ-इ।

जिस बिरहे के द्वितीय तथा चतुर्थ चरण का अन्तिम अक्षर दीर्घ स्वर मे नहीं है—अर्थात् ह्रस्व है—उसका केवल उपान्त्य स्वर ही लुप्त स्वर में गाया जायेगा। अन्तिम स्वर जिसका उच्चारण लघु है अपने स्वाभाविक रूप में ही उच्चरित होगा।

यह उदाहरण लीजिए :—

"ससुई पतोहिया में लागल बा झगड़वा,
कइली मुसरवा के मार।
आजु पतोहिया के हम बन दिहतीं,
जो जियत रहिते बुढ़ऊ हमार।"

इस बिरहे के द्वितीय तथा चौथे चरण के अन्तिम शब्द 'मार' और 'हमार' के उपान्त्य स्वर 'मा' का उच्चारण लुप्त है तथा अन्तिम अक्षर 'र' का उच्चारण ह्रस्व है। नियम के अनुसार यदि यहाँ कोई दीर्घ स्वर भी होता तो उसका भी उच्चारण ह्रस्व स्वर के समान ही करना पड़ता।

यह तो हुई बिरहों के गाने की चर्चा। परन्तु पचरा—जिसको दुःसाध नामक जाति के लोग गाते हैं—गाते समय इस पद्धति में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है। पचरा के गीतों मे उपान्त्य स्वर का उच्चारण ज्यों का त्यों रहता है परन्तु अन्तिम स्वर का उच्चारण लुप्त स्वर में करने का विधान है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा :—

"डोलिया पर चढ़ि भइली काली मोर देबिया हो,
चली भइली हाजीपुर के हाट हो।
काली जी से करेली भेटवा चोटवा,
फेरु डोलिया रे लवटाव हो।

इसमें द्वितीय तथा चतुर्थ चरण के अन्तिम वर्ण 'हो' का उच्चारण प्लुत स्वर में किया जाता है। जैसे—

चली भइली हाजीपुर के हाट हो-ओ-ओ-ओ-ओ।
फेरु डोलिया लवटाव हो—ओ—ओ—ओ—ओ ।

स्तोभ की प्रणाली

लोक-गीतों के गाने की पद्धति में एक और विशेषता पायी जाती है। यह विशेषता है गान-सौकर्य्य के लिए गीतों के प्रारम्भ, मध्य अथवा अन्त में कुछ नये वर्णों, पदों अथवा मात्राओं को जोड़ देना अथवा गीत के बीच में मिला देना। गीतों के गाने की सुविधा के लिये जोड़े गये अथवा बीच में मिलाये गये ऐसे पदों को 'जोड़' कहते हैं। लोक-गीतों का गायक गीतों को गेयता प्रदान करने के लिये एवं छन्दो-भंग की त्रुटियों को दूर करने के लिये उनमें कुछ नये शब्दों को जोड़ता जाता है। कहीं-कहीं अधिक मात्राओं का भी वह समावेश कर देता है और कहीं कई शब्द समूह को गीत के आदि अथवा मध्य में समाविष्ट कर देता है। ऐसा करने से छन्दो-भंग का दोष दूर हो जाता है, गीत को गाने में उसे सुविधा होती है और श्रोताओं को भी उस गीत को सुनने में अधिक आनन्द मिलता है।

गीतों को गाते समय नये शब्दों को जोड़ने की यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। सामवेद के गायन में भी नये पदों को जोड़ने की यह प्रथा उपलब्ध होती है जिसे 'स्तोभ' कहते हैं।[1] स्तोभ शब्द का अर्थ है ऐसी वस्तु या शब्द जो बीच में जोड़ या घुसेड़ दिया गया हो।[2] इसी प्रकार से सामगायन में 'पुष्पण' की पद्धति प्रचलित है जिसका अर्थ है गीत में नये शब्दों को जोड़कर उसे अलंकृत या सुशोभित करना।

सामवेद के गायन में जो 'स्तोभ' उपलब्ध होता है वह तीन प्रकार का पाया जाता है।[3]

(१) वर्ण स्तोभ (२) पद स्तोभ, और (३) वाक्य स्तोभ। वर्ण-स्तोभ उसे कहते हैं जहाँ सामगायन के बीच में वर्णों को जोड़ दिया गया हो। पद स्तोभ में वैदिक ऋचा के बीच में पूरे शब्द या पद जोड़ दिये जाते हैं। इनका भी उद्देश्य प्रधान रूप से छन्द में गेयता लाना ही होता है। वाक्य स्तोभ उसे कहते है जहाँ

---

१. स्तोभ—Anything inserted-आपटे कोश।
२. अधिकत्वे सति ऋग्विलक्षणो वर्णः स्तोभः।
३. स्तोभः त्रिविधः।

पूरे के पूरे वाक्य या पद समूह ऋचा के आदि अथवा अन्त में समाविष्ट कर दिया गया हो। जो वाक्य, वाक्य-स्तोभ के रूप में ऋचाओं में सम्मिलित किये जाते हैं उनके कुछ नमूने निम्नांकित है—

"अगन्मज्योतिरमृता अभूम ।"
"नमोन्नाय नमोऽन्नपतये ।"
"ये देवाः देवाः दिविषदः, अन्तरिक्ष सदः, पृथिवी सदः।

ये उपर्युक्त वाक्य सामगायन के समय ऋचाओं में जोड़ दिये जाते हैं। इन्हीं को वाक्य स्तोभ कहते हैं।

लोक-गीतों के गाने में स्तोभ की प्रणाली

पिछले विवरण से यह स्पष्ट पता चलता है कि साम-गायन में वर्ण स्तोभ, पद-स्तोभ और वाक्य स्तोभ का प्रयोग किया जाता था। ये गान की सुविधा के अनुसार मन्त्र अर्थात् ऋचा के आदि, मध्य अथवा अन्त में जोड़े जाते थे।

लोक-गीतों के गाने की पद्धति पर जब हम सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं तब हम इन तीनों प्रकार के स्तोभों—वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ और वाक्य स्तोभ—को पाते हैं। कहीं कहीं मात्रा स्तोभ भी उपलब्ध होता है। सामगायन की ही भाँति ये स्तोभ भी कहीं गीत के प्रारम्भ में, कहीं मध्य में और कही अन्त में मिलते हैं।

१ मात्रा स्तोभ

मात्रा स्तोभ में गीत के किसी वर्ण में अधिक मात्रा जोड़ दी जाती है। जैसे :—

"मचिया बइठली ए सासु, सुनहु बचनिया।
राउर बेटा मोरंग चलले, कवन (आ) राम अवगुनिया।

यहाँ पर कवन (कौन) शब्द में 'आ' मात्रा जोड़ी गई है जिससे 'कवना' रूप तैयार हुआ है। इसी प्रकार से "भड़सल पइसली ए गोतिनी सुनहु बचनिया" इस गीत में 'पहसल' (प्रविष्ट) शब्द में 'ई' जोड़ कर गेयता लाने का प्रयास किया गया है। अतः ये दोनों उदाहरण मात्रा स्तोभ के हैं।

२. वर्ण स्तोभ

वर्ण स्तोभ के उदाहरण लोक-गीतों में प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। ये कहीं गीत के बीच में जोड़े जाते हैं और कहीं अन्त में।

जाँत का यह गीत (जँतसार) लीजिए :—

"बाव बहेले पुरवइया, अलसि **निनिया** आइलि हो।
निनिया भइली **बइरिनिया**, पिया फिरि गइले हो।
घरवा रोवे घरनी ए **लोभिया**,
बाहारावा राम **हरिनिया**।
दाहावा रोवे चाका **चकइया**,
बिछोहवा कहले निरवा **मोहिया**॥"

उपर्युक्त गीत के रेखाङ्कित शब्दों—जैसे निनिया, बइरिनिया, हरिनिया, चकइया, लोभिया आदि के अन्त में 'इया' प्रत्यय जोड़ा गया है। 'निरवा मोहिया शब्द का मूल रूप निर्मोही (निर्दयी) है। इस शब्द के बीच में 'वा' और अन्त में 'इया' वर्ण (अक्षर) जोड़ा गया है। लोक साहित्य में गीतों को गेयता प्रदान करने के लिए और उनमें सुकुमार भावों का सन्निवेश करने के लिए प्रायः 'इया' प्रत्यय जोड़ दिया करते हैं। ऐसे सभी गीत वर्ण स्तोभ के उदाहरण हैं। जैसे:—

"**नदिया** के तीरे तीरे बोइलों में राई।
राजा जी के हरिना चरि ए चरि जाई"

× × ×

"बाव बहेला **पुरवइया** ए सजनी
करसिन जागेला आगि ए॥"

× × × ×

"बेला चमेली फूले **बगिया** में
जोबनवा फूलल मोरे **अँगिया** हों रामा
नाही भेजे **पतिया**।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त रेखाङ्कित शब्दों में 'इया' प्रत्यय लगा देने से इनकी कोमलता में कितनी अधिक वृद्धि हो गई है।

३. पद स्तोभ

लोक-गीतों में पद-स्तोभ के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। चैता और जाँत के गीतों में यह अधिक मात्रा में पाया जाता है। चैता—जिन्हें घाटों भी कहते हैं—के गीतों के प्रारम्भ में 'आहो रामा' और अन्त में 'हो रामा'। प्रायः सर्वत्र जोड़ा जाता है। उदाहरणार्थ :—

आहो रामा सूतल रहली पिया संगे सेजिया हो रामा
बाते बाते, लागि गइले पियवा से रेरिया हो रामा।
बाते बाते।
आहो रामा मुँहवा से निकलेला, बोलिया कुबोलिया हो रामा
ताहि बोलिए, पियवा भइले बयरगिया हो रामा।
ताहि बोलिए।"

उपर्युक्त गीत में रेखाङ्कित सभी शब्द पद-स्तोभ के उदाहरण है। ये गीत के मूल भूत अंग न हो कर केवल गाने की सुविधा के लिए जोड़े गये अंश मात्र है। जाँत के गीतों में कहीं गीत के आदि में 'ए राम' और अन्त में 'हो राम' और कहीं 'नु रे जी' कही 'रे ना' तथा कहीं 'हो ना' आदि विभिन्न प्रकार का पद-स्तोभ पाया जाता है। नीचे के जँतसार में आदि और अन्त-दोनों स्थानों में स्तोभ मिलता है। उदाहरण—

"ए राम हरि मोरे गइले विदेसवा,
त दुइ नवरंगिया लगवले हो रामा।
ए राम हरि जी के लावल नवरंगिया
त नवरंग झुरा गइले हो रामा॥

एक दूसरा उदाहरण लीजिये—

"हाथे नवरंगिया ए हरि जी,
चढ़ली जवनिया नु रे जी।
कइसे कइसे रहली ए हरि जी,
उतरी बनिजिया नु रे जी॥

इस गीत की प्रत्येक पंक्ति में 'नु रे जी' जोड़ा गया है। इसी प्रकार से 'हो ना' और 'रे ना' आदि उदाहरण भी समझना चाहिए।

४. वाक्य स्तोभ

कहीं कहीं गाने की सुविधा के लिए गीतों के प्रायः आदि में पूरा वाक्यांश ही जोड़ा जाता है। निर्गुन के गीतों में प्रत्येक पंक्ति के प्रारम्भ में 'किया हो मोरे रामा' जोड़ने की प्रथा पाई जाती है। उदाहरण के लिए यह निर्गुन लीजिए—

"नदिया के तीरे तीरे बछरू चरावेले;
कि आहो मोरे रामा, साँवनवाँ रे झड़ी लागेला ए राम ॥
बाट में चलत बटोहिया भइया हितवा;
कि आहो मोरे रामा, हमरो सनेसवा ले ले जइहऽ ए राम ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि साम-गायन में जिस स्तोभ प्रणाली का प्रयोग किया जाता था, वह ठीक उसी रूप में लोक-गीतों के गायन में आज भी उपलब्ध होती है।

(ख) संगीत शास्त्र की दृष्टि से लोक-गीतों की विशेषतायें

संगीत शास्त्र की दृष्टि से लोक गीतों का महत्त्व अत्यधिक है। ग्रामीण जनता के हृदय की अभिव्यक्ति में शब्दों और स्वरों-इन दोनों का योग समान रूप से पाया जाता है। यद्यपि लोक-गीतों में संगीत का सर्वाङ्गपूर्ण शास्त्रीय रूप नहीं पाया जाता परन्तु लोक-संगीत शास्त्रीय सगीत से सर्वथा पृथक या विरहित है ऐसा कहना असमीचीन होगा। इन लोक-गीतों में अधिकतर शास्त्रीय परम्परा के कहरवाँ ताल, खेमटा ताल और जत ताल का प्रयोग पाया जाता है। जत ताल चौदह मात्राओं का होता है और खेमटा छः मात्राओं का। कहरवाँ ताल कुछ गीतों में चार मात्राओं का अधिक संगत प्रतीत होता है। कुछ अन्य गीतों में आठ मात्राओं का भी प्रयोग हुआ है। प्रायः सभी लोक-गीतों में कुल चार थाटों (ठाटों) का ही अंश उपलब्ध होता है। ये चार निम्नांकित है :—(१)विलावल (२) खमाज (३) काफी, और (४) भैरव। विलावल थाट का उदाहरण 'पूर्वी' का यह गीत है :—

"जेठ बैसखवा के तलफी भुभुरिया
हो महेन्दर मिसिर।
चलत में गोड़वा मोर पिराय,
हो महेन्दर मिसिर ॥

चैता के गीतों में प्रायः खमाज थाट का प्रयोग पाया जाता है। जैसे :—

"मानिक हमरो हेरइले हो रामा
जमुना में।
केहू नाहीं खोजेला हमरो पदारथ हो रामा
जमुना में।"

काफी थाट का प्रयोग छठी माता के गीतों में दिखाई पड़ता है। नमूने के लिए नीचे का गीत लीजिए—

"गंगाजी के तीरे तीरे बोअलों में राई।
राजा जी के मिरिगा चरि ए चरि जाई।
ए छठी माता करबि सेवकाई,
करबि सेवकाई ॥"

'पूर्वी' के गीतों में जहाँ विलावल थाट का प्रयोग दिखाई पड़ता है वहाँ कहीं-कहीं भैरव थाट का भी दर्शन होता है। उदाहरणार्थ—

"सभका के देलऽ भोला, अन, धन सोनवा,
बनवारी हो। हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतली ओसरवा,
बनवारी हो! जरि गइले एड़ी से कपार॥"

भोजपुरी लोक-गीतों में प्रायः सात शुद्ध स्वरों का और दो विकृत-कोमल गान्धार और कोमल निषाद-स्वरों का प्रयोग मिलता है। अर्थात् उनमें मुख्यतः विलावल, खमाज और काफी थाटों के स्वर लगते हैं। शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से भी इन थाटों के राग अपेक्षाकृत अधिक सरल और सुग्राह्य होते हैं। कुछ गीतों में अन्य विकृत स्वरों का भी प्रयोग मिलता है। जैसे उदाहरण के लिए कोमल धैवत और कोमल ऋषभ। इनमें भी कोमल ऋषभ का प्रयोग, कोमल धैवत की अपेक्षा कम मिलता है। तीव्र मध्यम से युक्त लोक-गीत कदाचित् ही दो चार मिलेंगे। किसी किसी गीत की स्वर परिधि भी बहुत संक्षिप्त होती है। अधिकांश लोक-गीतों में तीन, चार अथवा पाँच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं। हमारे देश में शास्त्रीय संगीत के प्रचार और विकास के साथ-साथ, गाँव और नगर में अधिकाधिक सम्पर्क बढ़ने के कारण लोक-गीतों की स्वर सीमायें भी बढ़ती जा रही हैं।

लोक-धुने (Folk-Tunes) बहुत ही सरल होती हैं। परन्तु इनकी सरलता का यह अर्थ नहीं कि इनमें गायन-क्रिया के सौन्दर्यबर्धक उपकरणों का पूर्णतया अभाव है। ऐसे अनेक लोक गायक उपलब्ध होते हैं जो सरल से सरल धुनों को गाते समय भी स्वभावतः अनेक प्रकार के खेमटे, मुकरियाँ और मींड का प्रयोग अनायास करते हैं। शास्त्रीय संगीत में प्राप्त अनेक रागों का जन्म लोक धुनों से हुआ है। ऐसा कहना कुछ असमीचीन न होगा। आसावरी, झिंझोटी और पहाड़ी आदि रागों का मूल स्रोत लोक धुनों में खोजा जा सकता है।

भोजपुरी प्रदेश के लोक-गीतों में प्रायः कहरवा, जत, दादरा, खेमटा और

दीपचन्दी (चाँचर) तालों का प्रयोग अधिक पाया जाता है। इनमें से कुछ तालों का उदाहरण पिछले पृष्ठों में दिया गया है। इन तालों में से कहरवाँ ताल का प्रयोग प्रायः अस्सी प्रतिशत लोक-गीतों में प्राप्त होता है। सोरठी, कजरी, बिरहा, पचरा, झूमर, पूर्वी, निर्गुन, पाराती (भजन), पिड़िया, छठी माता और शीतला माता के गीत कहरवाँ ताल में गाये जाते हैं। सोहर, जनेऊ, गवना, गोधन, होली, चैता और जँतसार आदि गीत 'जत' ताल में गेय हैं। भोजपुरी का सुप्रसिद्ध तथा लोकप्रिय लोक गीत 'विदेसिया' को दीपचन्दी ताल में गाते हैं। झूमर—जिसे स्त्रियाँ झूम झूम कर समवेत स्वर (कोरस) में गाती हैं। दादरा ताल का गेय विषय है। कहीं-कहीं यह भी देखने में आता है कि एक ही लोक-गीत दो भिन्न-भिन्न तालों में लोक गायकों द्वारा गाया जाता है। उदाहरण के लिए 'विदेसिया' गीत 'दीपचन्दी' और 'जत' इन दोनों तालों में समान रूप से गेय है। इसी प्रकार से गायक लोग झूमर को 'कहरवाँ' तथा 'दादरा' इन दोनों तालों में गाते हैं।

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यद्यपि लोक-गीतों में शास्त्रीय संगीत का सम्पूर्ण एवं साङ्गोपाङ्ग विवेचन एकत्र उपलब्ध नहीं होता फिर भी शास्त्रीय संगीत के बहुत से स्वर, थाट, राग और ताल इनमें पाये जाते हैं। बहुत संभव है कि अनुसन्धान करने पर इन गीतों में अनेक विशिष्ट स्वर, राग एवं ताल मिल सकें जिनका शास्त्रीय संगीत में अभाव है। अतः संगीत की दृष्टि से भी लोक-गीतों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक तथा उपादेय है। लोक-संगीत और शास्त्रीय संगीत में किसका, किसपर, कितना प्रभाव पड़ा है इस दृष्टि से भी लोक संगीत का अनुसन्धान महत्वपूर्ण है।

लोक-गीतों के गाने में प्रयुक्त होने वाले वाद्य यन्त्र

लोक-गीत और लोक-संगीत का अभिन्न संबंध है। प्रत्येक लोक-गीत को गाने में किसी न किसी वाद्य-यंत्र की सहायता ली जाती है। जहाँ पर कोई वाद्य-यंत्र उपलब्ध नहीं होता वहाँ चुटकी बजाकर अथवा ताली देकर इस अभाव की पूर्ति की जाती है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में लोक-संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में से ढोलक, खँजड़ी, सारंगी, झाँझ, करताल और जोड़ी मुख्य हैं। इनमें ढोलक सबसे अधिक लोकप्रिय तथा महत्त्वपूर्ण है। ढोलक के बाजे में अद्भुत विकास दिखाई पड़ता है। इसके बोल पृथक् पृथक् होते हैं। कुछ ढोलक बजाने वाले तो ऐसे होते हैं कि जो तबले के समान ढोलक पर भी अपनी कला का पूर्ण

विस्तार और वैभव दिखलाते हैं।[1] आल्हा गाते समय अल्हैत अपने गले में ढोलक बाँधकर उसे तार स्वर से बजाते हैं। होली या फगुआ गाते समय भी इसका प्रयोग किया जाता है। झाँझ और ढोलक का अभिन्न संबंध है। होली के गीतों को गाने में ढोलक के साथ झाँझ भी प्रयोग में लाया जाता है। गोपीचन्द और भरथरी की सुप्रसिद्ध लोक-गाथाओं को गाने वाले "साँई" लोग सारंगी बजा बजाकर अपनी जीविका का उपार्जन करते हैं। लावनी गाने वाले लावनीवाज अपने गीतों का प्रदर्शन करते समय बायें हाथ में 'खँजड़ी' को पकड़ कर दाहिने हाथ से उसे बजाते हैं। निर्गुन या भजन को गाने वाले साधु महात्मा करताल या कठताल को अपने दोनों हाथों में लेकर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। जोड़ी कोई स्वतंत्र वाद्य नहीं है बल्कि यह सारंगी का सहायक है।

राजस्थान में विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्रों का प्रयोग लोक-गीतों को गाते समय किया जाता है। बंगाल में बाउल लोग गीतों के गाने में 'एकतारा' नामक लोक-वाद्य का प्रयोग करते हैं। इस यंत्र में केवल एक ही तार रहता है। इसी-लिए इसे 'एकतारा' की संज्ञा प्राप्त है। 'एकतारा' के विभिन्न रूप भी पाये जाते हैं। कहीं कहीं 'दो तारा' वाद्ययंत्र का भी प्रयोग किया जाता है। वास्तव में इसमें चार तार होते हैं यद्यपि इसका नाम 'दोतारा' ही है। उत्तरी बंगाल के 'भावैया' और 'चकता' नामक लोक-गीतों को गाते समय ये यंत्र उपयोग में लाये जाते हैं। खनक या गुपीयंत्र भी बंगाल का एक प्रसिद्ध लोक वाद्य है। इसमें भी एक ही तार होता है परन्तु यह 'एकतारा' की आकृति से बिल्कुल भिन्न है। इसका स्वरूप भोजपुरी ढोलक से प्रायः मिलता जुलता है। परन्तु यह चमड़े से एक ही ओर बन्द रहता है। गवैये अपने काँख में इस यंत्र को दबाकर बजाते हैं। बिहार के छोटा नागपुर के सन्ताल जाति के आदिवासी लोग गीतों को गाते समय बहुत बड़े नगाड़ों का प्रयोग करते हैं जिसे वे रस्सी के सहारे अपने गले मे लटका कर छोटी-छोटी दो लकड़ियों से पीट कर बजाते हैं। इन नगाड़ों को संभवतः 'माँदर' कहा जाता है। इन लोगों का दूसरा वाद्य 'वनम' है जिसमें 'एकतारा' की भाँति एक ही तार होता है।

---

१. इस संबंध में आरा (बिहार) जिला निवासी बाबू मुद्रिका सिंह—जो आजकल डी० एस० आफिस इलाहाबाद में काम करते हैं—का उल्लेख करना अनचित न होगा जिन्होंने ढोलक के बजाने में अद्भुत क्षमता प्राप्त की है। इनकी ढोलक-बजाने की कला प्रसिद्ध है। ये अपने श्रोताओं को अपनी कला से आनन्द-विभोर कर देते हैं।

लोक-गीतों की स्वर लिपि (नोटेशन)

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है लोक-गीतों की आत्मा लोक-संगीत है। अतएव गीतों की सुरक्षा के साथ ही साथ उनकी आत्मा (संगीत) की रक्षा करना भी अत्यन्त आवश्यक कार्य है। लोक साहित्य के विद्वानों का यह परम कर्तव्य है कि गीतों के संकलन के साथ वे उन गीतों में निहित संगीत को सुरक्षित करने के लिए उनकी स्वर लिपि भी अवश्य ही तैयार कर लें। उचित तो यह है कि गीतों के संगीत के संरक्षण के लिए इन समस्त गीतों को टेप रेकार्ड करा लिया जाय। परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण तथा अन्य साधनों के अभाव में, यदि यह संभव न हो, तो उनकी स्वर लिपि तो अवश्य ही तैयार कर लेनी चाहिए। जब हम किसी गीत को स्वर लिपि की कारा में बाँध लेते हैं तब हमें निश्चय ही यह विश्वास हो जाता है कि इसके संगीत की रक्षा हो गई।

हिन्दी की विभिन्न बोलियों में लोक-गीतों का संकलन कार्य हुआ है। परन्तु यह खेद के साथ कहना पड़ता है कि लोक साहित्य के विद्वानों का ध्यान इसके संगीत पक्ष की ओर अभी विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुआ है। इस दिशा में भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर के संस्थापक और प्राण श्री देवीलाल जी सागर का कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है जिन्होंने 'राजस्थान का लोक संगीत' नामक ग्रन्थ को प्रकाशित कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी लोक संगीत' नामक एक पुस्तक लिखी है जो अभी प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रही है। डा० उपाध्याय की लिखी हुई "भोजपुरी और उसका साहित्य" पुस्तक में भोजपुरी लोक-संगीत की संक्षेप में चर्चा की गई है और उदाहरण स्वरूप कुछ प्रधान लोक-गीतों की स्वर लिपि प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

परन्तु लोक-संगीत के क्षेत्र में सबसे महत्त्व पूर्ण कार्य डा० आशुतोष भट्टाचार्य का है[1] जिन्होंने बंगला के लोक-गीतों के संगीत पक्ष का गंभीर अध्ययन और तलस्पर्शी अनुसन्धान किया है। इन्होंने अपने अध्ययन के फलस्वरूप "बाङ्गलार लोक संगीत' नामक ग्रन्थ का पाँच भागों में प्रकाशन किया है।[2] यह ग्रन्थ अत्यन्त

१. डा० आशुतोष भट्टाचार्य एम० ए० पी०-एच० डी० आज कल कलकत्ता विश्व-विद्यालय में आधुनिक भारतीय भाषा विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष के पद पर अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। भारतीय सरकार ने लोक संगीत के क्षेत्र में इनकी महती सेवा का आदर करते हुए इन्हें संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली का आननेरी मेम्बर मनोनीत किया है।

२, बंगाल म्युजिक कालेज कलकत्ता से प्रकाशित।

विद्वत्तापूर्ण है। डा० भट्टाचार्य ने बंगला के प्रधान प्रधान लोकगीतों की गवेषणा प्रस्तुत करते हुए उनकी स्वर लिपि भी इस ग्रन्थ में दी है। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है लोक-संगीत का इतना विस्तृत विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

अब यहाँ पाठकों के समक्ष भोजपुरी और बंगला के कुछ प्रधान प्रधान गीतों की स्वर लिपि प्रस्तुत की जाती है जिससे वे इन गीतों के संगीत का आनन्द ले सकें।

(१) गीत झूमर

ताल कहरवा

गीत

दिनवा के बइरी रे सासु ननदिया,
मैं का करो हो, राति बइरी अँजोरिया ॥
कहत सुनत में बिसरि गइल अँजोरिया
मैं का करों हो, बलमा अजबे सोवइया ॥
चिऊँटिहि काटि काटि बलमा जगवलीं
मैं का करों हों, गोद में रोवे बलकवा ॥
ठोंकिहि ठोकि हम बलका सुतवली
मैं का करो हों, बोले लागलि चुचुहिया ॥

स्थायी

सा रे ग - म प प - प म प - प म ग रे रे
दिन वा ऽ के ब इ रीरे सा सु ऽ न न दि या मैं

सा ग
सा– रे ग रे – रे ग प प– म ग ग रे–
का ऽ क रों हों ऽ रा ति बै री ऽ अँ जो रि या ऽ

अन्तरा (१)

सा रे म म पप, प प प म प—प म ग रे रे
क ह त सु नत, वि सरि, गइ, ल ऽ अँ जो रि या मैं

सा—रे ग रे — रे ग गप प— म ग — रे
का ऽ क रो हों ऽ बल मा अज, वे ऽ सो वइ ऽ या ऽ।

अन्तरा (२)

सा रे म म प प प प म प—प म ग रे रे
चि ऊँ टि हि का टि का टि बल मा ऽ ज ग व ली मै

सा
सा— रे ग रे—रे रे ग प प—म ग रे रे—
ग

का ऽ क रो हों ऽ गो द में रो वे बा ल क वा ऽ

अन्तरा (३)

सा रे म म प प प प म म प—प म ग रे रे
ठो ऽ कि हि ठो कि ह म ब ल का सु त व ली हो

सा
सा— रे ग रे — रे ग प प प म ग रे रे—
का ऽ क रो हों ऽ बो ले ला गलि ऽ चु चु हि या ऽ

२—गीत चैता

ताल—जत

मात्रा चौदह

मानिक हमरो हिरैले हो रामा
जमुना में।
केहू नाही खोजेला पदारथ हो रामा,
जमुना में।
ओ ही रे जमुनवा के चिकटि मटिया
चलत में पाँव बिछि लइले हो रामा
जमुना में।
ओहि रे जमुना के करिया पनिया
देखत में मन घबरइले हो रामा
जमुना में।
तोरे लेखे ग्वालिन मानिक हिरैले
मोरा लेखे चान छपितवा हो रामा।
जमुना में।

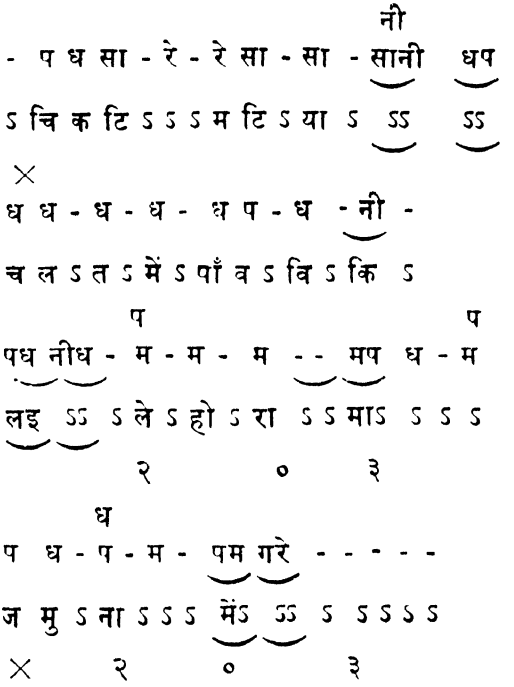
"दास बुलाकी" चइत घाँटों गावे हो रामा
गाई गाई बिरहिनि समुझावे हो रामा
जमुना में।

स्थायी

रे - - म - म - प ध - ध - - ध
मा ऽ ऽ नि ऽ क ऽ ह् म ऽ रो ऽ ऽ हि
०
ध - नी पध नीध पम म म - - मप ध - म
रै ऽ ऽ ले ऽ ऽऽ ऽऽ हो रा ऽ ऽ माऽ ऽ ऽ ऽ
× २ ० ३
ध म
प ध - प - म - पम गरे - - - - -
ज मु ऽ ना ऽ ऽ ऽ मेऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
× २ ० ३
ध ध - ध - ध - ध प - ध - - नी
के हू ऽ ना ऽ ही ऽ खो जे ऽ ला ऽ ऽ प
प
पध नीध - प म - म म - - मप ध - म
दाऽ ऽऽ ऽ २ थ ऽ हो रा ऽ ऽ माऽ ऽ ऽ ऽ
× २ ० ३
ध म
प ध - प म - - पम गरे - - - - -
ज मु ऽ ना ऽ ऽ ऽ मेऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
× २ २ ३

अन्तरा (१)

प ध - सा - सा - सा सा - सा - सानी - ध
ओ ही ऽ रे ऽ ज ऽ मु न ऽ वा ऽ केऽ ऽ



३—गीत—विदेशिया

ताल—दीपचन्दी

रहिया तकत मोरी भारी भइली अँखिया।
अमवा मोंजरि गइले, महुआ टपकि गइले,
कत दिन बटिया जोहइबे रे बिदेसिया ॥१॥
मचिया बइठल धनी मने मने समुझे से
भुँइयाँ लोटेला लामी केस रे बिदेसिया ॥२॥
गवना कराई सँइयाँ घर बइठवले से
अपने चलेले परदेस रे बिदेसिया ॥३॥
चढ़ली जवनियाँ बइरिनि भइली हमरी से
के मोर हरिहें कलेस रे बिदेसिया ॥४॥
तोहर कारन सइयाँ भभूती रमइबों से
धरबों जोगिनिया के भेस रे बिदेसिया ॥५॥
कबलों ले फिरिहें दइब निरमोहिया से
मोरा बिरहिनियाँ के भाग रे बिदेसिया ॥६॥

स्थायी

सा रे - रेप म - ग मग - सारे - सा —
र हि ऽ या ऽ त ऽ क तऽ ऽ मोऽ ऽ री ऽ

× २ ० ३
सा रे - म - ग - रे सा - सा - - -
भा री ऽ भइ ऽ ले ऽ अँ खि ऽ याँ ऽ ऽ ऽ
× २ ० ३

अन्तरा (१)

प प - ध सा सा - नी सा नीध नीधप -
अ म ऽ वा ऽ मों ऽ ज रिऽ ग इ लेऽ ऽ

× २ ० ३
प ध - प ध धप - म ग - सारे - सा -
म हु ऽ आ ऽ टऽ ऽ प क ऽ गइ ऽ ले ऽ
× २ ० ३
सा रे - रेप - म - ग - रेसरे - सा -
क त ऽ दि ऽ न ऽ ब टिऽऽ याऽऽ ऽ जो ऽ

× २ ० ३
सा रे - रेम - ग - रे सा - सा - - -
हइ बे ऽ रेऽ ऽ वि ऽ दे सि ऽ या ऽ ऽ ऽ

---

१. बिदेसिया के सम्पूर्ण गीत के लिए देखिए—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी और उसका साहित्य, पृ० १२६ (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली)

अध्याय १४

लोक-साहित्य में काव्यत्व

लोक काव्य और अलंकृत काव्य के विभेद को बतलाते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि लोक काव्य की आत्मा उसकी सरलता, स्वाभाविकता और सरसता है। लोक-साहित्य में रस की प्राप्ति ही नहीं होती प्रत्युत यह तो रस से ओत-प्रोत होता है। परन्तु रस की सृष्टि के लिए जिन विभाव, अनुभाव और संचारियों की आवश्यकता होती है उनका इसमें अभाव है। इसमें रस की उत्पत्ति स्वतः होती है। अलंकारों के सम्बंध में भी यही बात समझनी चाहिये। लोक-गीतों में अलंकार कहीं कहीं अवश्य पाये जाते हैं परन्तु उनकी योजना आयासपूर्वक नहीं की जाती है। वे स्वतः आ गये हैं। अलंकारों में भी रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और श्लेष ही अधिक उपलब्ध होते हैं अन्य नहीं। लोक-कवि पिंगल शास्त्र का अध्ययन कर कविता करने नहीं बैठता। अतः उसकी रचना में छन्द योजना का अभाव पाया जाता है। लोक-गीतों में तुक प्रायः नहीं पाया जाता क्योंकि लोक काव्य स्वच्छंद होने के कारण छंद और तुक की बेड़ियों में नहीं बाँधा जा सकता। परन्तु इन गीतों में लय अवश्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है जो इनको संगीतमय बना देता है। यही कारण है कि लोक-गीतों को सुनकर मनुष्य मस्ती में आकर झूमने लगता है।

(क) लोक-गीतों में अलंकार-योजना

पिछले किसी अध्याय में लिखा जा चुका है कि लोक-गीत सर्वथा स्वतन्त्र तथा स्वच्छन्द होता है। इसमें कहीं कृत्रिमता का पता नहीं होता। लोक-कवि के मन में जो भाव उठते हैं उनका प्रकाशन वह अनायास करता है। यही कारण है कि कलात्मक कविता (Poetry of Art) में अलंकरण की जो प्रवृत्ति पाई जाती है उसका इसमें अभाव है। जो कविता कवि के हृदय के अन्तरतम से निकलती है उसमें रस की तो प्रचुरता रहती है परन्तु अलङ्कार योजना की प्रवृत्ति नहीं दीख पड़ती। वाल्मीकि और कालिदास की कविता की यही विशेषता है। यही बात लोक-गीतों के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये।

लोक कवि अलंकारों की उलझन में नहीं पड़ता। वह परिसंख्या

और परिकर के परे होता है। सच तो यह है कि लोक कवि अलंकारों के माध्यम द्वारा भाव-प्रकाशन करना नहीं जानता। उसके वर्णन का ढंग ही निराला होता है। फिर भी यह नहीं समझना चाहिये कि लोक-गीतों में अलंकारों का अत्यन्ताभाव है।

अलंकार-योजना की विशेषता

(१) लोक गीतों के अलंकार योजना की पहिली विशेषता यह है कि उनका सन्निवेश अनायास ही होता है। अर्थात् लोक-कवि जान-बूझ कर अलंकारों का प्रयोग नहीं करता है। हिन्दी के अलंकारवादी कवियों की यह परम्परा सी हो गई थी कि वे हठात्—चाहे अवसर हो या न हो—उपमा, रूपक आदि का प्रयोग अपने काव्यों में करते थे। केशव की रामचन्द्रिका से इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। परन्तु लोक गीतों में ठीक इसके विपरीत पाया जाता है। गीतों में जो अलङ्कार उपलब्ध होते हैं वे बिना किसी परिश्रम के स्वयं उपस्थित हो गये हैं। गीतों के पढ़ने से इस विषय का स्पष्टीकरण हो जाता है।

(२) लोक-गीतों के अलंकार विधान की दूसरी विशेषता इनकी मौलिकता है। लोक-कवि ने जिन उपमानों का प्रयोग किया है वे कवि-परम्परायुक्त (Conventional) नहीं है बल्कि नूतन और मौलिक हैं। प्राचीन कवियों ने आँख की उपमा खंजन, मीन और मृग की आँखों से दी है परन्तु लोक कवि ने इन परम्परायुक्त उपमानों का तिरस्कार कर 'आम की फारि' (तिरछा कटा हुआ कच्चे आम का टुकड़ा) से इसकी तुलना की है। इसी प्रकार होठ की उपमा कविजन विद्रुम या बिम्बफल से दिया करते हैं परन्तु ग्रामीण कवि कटे हुए पान के टुकड़े से उसकी समानता करता है।

(३) इनकी तीसरी विशेषता है ग्रामीण वातावरण से उपमानों का चुनाव। लोक-कवि जिस वातावरण में जन्म लेता और पलता है उस वातावरण का उसके हृदय पर स्थायी प्रभाव बना रहता है। अतः अपने भावों को स्पष्ट करने के लिए वह जिन उपमानों का चुनाव करता है वे उसके आस पास की चिर परिचित वस्तुयें हुआ करती हैं। यही कारण है कि पेट की उपमा उसने पुरैन के पते[1] से और पीठ की उपमा धोबी के पाट (काठ का बना हुआ तख्ता जिस पर धोबी अपने कपड़े धोता है) से दी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों ही वस्तुयें ग्रामीण जगत् में चिर परिचित है। आँख के उपमान के लिए कच्चे आम के कटे

१. विवाह आदि उत्सवों में ग्रामीण जन पुरइन के पत्ते पर भोजन करते हैं जो बहुत लम्बे चौड़े होते हैं।

हुए तिरछे टुकड़े को खोज निकालने वाला कवि वास्तव में अपने वातावरण से ओत-प्रोत रहा होगा।

(४) ग्रामीण अलंकार योजना की चौथी विशेषता है आकृति-साम्य। अर्थात् लोक-कवि उपमानों का चुनाव करते समय उपमेय की आकृति का अनुकरण करने वाले उपमान को ही स्थान या महत्त्व देता है। किसी स्त्री के जूरा (बालों को समेटकर तथा बाँधकर गोल आकृति) की उपमा वह हूरा (लाठी का निचला गोलाकार भाग) से देते है। जूरा गोल होता है। अतः उसकी गोली आकृति को देखकर लोक कवि ने उसकी समानता हूरा से की है। बालों की स्निग्धता और चिक्कणता की ओर उसका ध्यान बिल्कुल नहीं गया। पीठ की उपमा धोबी के पाट से देते समय कवि की दृष्टि दोनों की आकृति (लम्बाई-चौड़ाई) की ओर ही विशेष थी। इस प्रकार उन्नत ललाट के लिए 'लोटा' को अप्रस्तुत के रूप में वर्णन करना आकृति-साम्य का परिचायक है।

उपमा

लोक-गीतों में जिन अलंकारों का उल्लेख पाया जाता है उनमें उपमा, श्लेष रूपक और उत्प्रेक्षा अधिक प्रसिद्ध हैं। अलङ्कारों में भी उपमा का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। अपने भावों को स्पष्ट करने तथा साकार रूप प्रदान करने के लिए गीतों में इसका स्थान स्थान पर उल्लेख पाया जाता है। कुछ उदाहरण लीजिए—

कोई स्त्री कहती है कि आज मेरा पति मोरंग देश को जा रहा है। यदि मैं इस बात को जानती तो उसकी प्रस्थान की वस्तु को अपने आँचल में छिपा लेती। वह उसके विभिन्न अंगों का वर्णन करते हुए कहती है कि[1] :—

"गहरी नदिया अगम बहे राम पनिया
पिया चलले परदेसिया, बिहरेला राम छतिया।
जो हम जनिती ए लोभिया, जइबे रे विदेसवा,
पिया के पयेतँवा ए लोभिया, छिपइतीं रे अँचरवा।
मुँह तोरे हवे ए लोभिया, सुरुज के जोतिया।
आँखि तोरे हवे ए लोभिया, आमवा के फरिया।
नाक तोर हवे ए लोभिया, सुगवा के ठोरवा।
भहूँ तोर हवे ए लोभिया, चढ़ल कमनिया।

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भाग १

ओठ तोर हवे ए लोभिया, कतरल पानावा।
अबरू तोर हवे ए लोभिया, कड़ी कड़ी मोछिया।
बाँहि तोर हवे ए लोभिया, सोबरन सोटवा।
पेट तोर हवे ए लोभिया, पुरइन पतवा।
पीठि तोर हवे ए लोभिया. धोबिया के पटवा।
गोड़ तोर हवे ए लोभिया, केरवा के थुन्हवा।"

उपर्युक्त गीत में ध्यान देने की बात यह है कि इसमें जो अप्रस्तुत विधान किया गया है वह सर्वथा मौलिक है। ये उपमान देहाती दुनियाँ से संबंध रखने वाले हैं तथा ग्रामीण सौन्दर्य के मापदण्ड हैं। काव्य जगत् में मुख की उपमा चन्द्रमा या कमल से; आँखों की उपमा मीन या मृग से और होठों की उपमा विद्रुम या बिम्ब (फल) से दी जाती है। परन्तु लोक कवि ने इन परम्परायुक्त उपमानों को सर्वथा परित्याग कर अपनी नवीनता तथा मौलिकता का परिचय दिया है। इन उपमानों की यह विशेषता है कि ये ग्रामीण सौन्दर्य-भावना के प्रतीक हैं। भोजपुरी प्रदेश में नाक के अगले भाग का नोकीला होना सुन्दर माना जाता है। इसीलिए उपर्युक्त गीत में नाक की उपमा तोते की चोंच से दी गई है जो लाल और नोकीली होती है। इसी प्रकार होठ का पतला होना सुन्दरता को द्योतित करता है। अतएव कवि ने इसकी तुलना विद्रुम या बिम्बफल से न कर तराशे गये (पतले) पान से दी है।

कोई ग्रामीण पुरुष किसी स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि ए गोरी! तुम्हारा जूरा लाठी के हूरे के समान है तथा तुम्हारे गाल मालपूआ की भाँति मुलायम हैं। ए गोरी! तुम पान के समान पतली हो और तुम्हारा ललाट लोटे के समान उन्नत है।

विरहा इस प्रकार है :—

"हूरवा नियर तोर जूरवा ए गोरिया,
पूअवा नियर तोर गाल।
पानवा नियर पातर बाड़ू गोरिया,
लोटवा नियर तोर भाल॥"

इस विरहे में जिन उपमानों का उल्लेख हुआ है वे सभी ग्रामीण वातावरण से लिए गये हैं। देहाती अहीर सदा लाठी लेकर चलता है। रात-दिन लोटे का उपयोग करता है। घर में आटा, दूध-घी की कमी न होने के कारण—सदा नहीं तो पर्वों पर ही सही—वह पूआ भी खाता है। विवाह-शादी के अवसर पर वह

पान का भी प्रयोग करता है। अतः यदि वह किसी स्त्री के अंगों की उपमा अपने दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुओं से न दे तो और किससे दे ? हिन्दी के कवियों ने "कनक छड़ी सी नायिका" का वर्णन किया है परन्तु जो कोमलता, सरसता और सुन्दरता पान के पत्ते में है वह सोने की बनी सख्त छड़ी में कहाँ ?

किसी नायिका के उठते हुए—विकासोन्मुख—स्तनों का वर्णन उपमा के माध्यम द्वारा कितना सुन्दर और सटीक हुआ है। लोक कवि कहता है कि यौवन के प्रभात में नायिका के स्तन जंगली बेर के समान छोटे-छोटे थे। बाद में विकसित होने पर वे 'टिकोरे' (आम का कच्चा फल जिसमें अभी गुठली नहीं होती) के रूप में परिणत हुये। परन्तु विवाह के पश्चात्, यौवन के मध्याह्न में, ज्योंही प्रियतम के हाथों से उनका स्पर्श हुआ त्योंही विकसित होकर उन्होंने सिन्धोरा का रूप धारण कर लिया :—

"पहिले बइरि सम
फिर भइले टिकोरा।
सइयाँ जी के हाथ लागल,
होइ गइले सिन्धोरा॥"

इस गीत में पूर्ण विकसित स्तनों की उपमा सिन्धोरा से देना बड़ा ही उपयुक्त है। जायसी ने इनकी उपमा औंधे हुए कटोरे से दी है।

"हिया थार कुच कंचन लारू।
कनक कचोरू उठे जनि चारू॥"

श्लेष

लोक-गीतों में श्लेषालंकार का भी प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है परन्तु इनकी योजना भी अनायास ही हुई है। हिन्दी तथा संस्कृत के कवियों ने अभंग तथा सभंग श्लेष के द्वारा काव्य रचना में बड़ी चातुरी दिखलाई है। परन्तु गीतों में अभंग श्लेष ही दृष्टि गोचर होता है। नीचे के इस विरहे में यमक और श्लेषालंकार की योजना बड़ी सुन्दर हुई है।

"रसवा के भेजलीं भँवरवा के संगिया,
रसवा ले अइले हा थोर।
अतना ही रसवा में केकरा के बटवों,
सगरी नगरी हित मोर॥"

स्वाधीनपतिका कोई स्त्री कहती है कि ए सखी ! मैंने भँवरा को रस लेने

के लिए भेजा लेकिन वह थोड़ा सा ही रस ले आया। मेरे पास रस इतना थोड़ा है कि मैं किसे-किसे इस रस को दूं क्योंकि गाँव के जितने लोग हैं वे सभी मेरे परिचित या हितचिन्तक हैं। यहाँ पर 'रस' शब्द का अर्थ प्रेम और मधु है। अतः यह यमक अलंकार का उदाहरण है। इस गीत में भँवरा शब्द का प्रयोग पति और भ्रमर इन दोनों अर्थों का वाचक है। अतएव 'भँवरवा' में श्लेषालंकार है।

इस प्रकार उपर्युक्त एक ही बिरहे में यमक और श्लेष दो दो अलंकार उलझे पड़े हैं।

रूपक

इन गीतों में कहीं-कहीं रूपकालंकार भी मिल जाता है। परन्तु इन रूपकों की विशेषता यह है कि ये कही भी दीर्घ (लम्बे-लम्बे) और साङ्ग नहीं हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में ज्ञान दीपक के वर्णन में साङ्ग रूपक की जो लम्बी लड़ी लगाई है वैसा प्रदर्शन लोक-गीतों में नहीं पाया जाता। आरोप का क्रम प्रारम्भ करके उसका साङ्ग तथा सम्पूर्ण निर्वाह इनमें नहीं किया गया है। वस्तु के आरोप की प्रक्रिया थोड़ी ही दूर चलकर समाप्त हो जाती है। इसका कारण संभवतः यह जान पड़ता है कि भाव के भूखे और रस के प्यासे लोक कवि को रूपकालंकार की योजना करते समय किसी वस्तु के रूप का सम्पूर्ण आरोप करने का अवकाश कहाँ ? उसने किसी स्थान विशेष पर जोर देने के लिए अलङ्कार का पल्ला पकड़ा और फिर उसे छोड़कर वह आगे बढ़ गया। एक उदाहरण लीजिए-

"सत सुकीरित के घइलवा, परेम केरा लेजुर हो।
ललना, पनिया भरऊँ झकझोरि माँग भरि सेन्दुर हो॥"

कोई स्त्री कहती है कि सत्य और सुकीर्ति रूपी घड़ा है। इस घड़े से प्रेम रूपी रस्सी के द्वारा मैं अच्छी तरह से माँग में सिन्दूर लगाकर पानी भरूँगी। अर्थात् प्रेम के द्वारा सुयश और सत्य का अवलंबन कर मैं मोक्ष रूपी पवित्र जल को पिऊँगी। यहाँ कुँये से पानी भरने का रूपक बाँधा गया है परन्तु कुँये के पूर्ण वर्णन के अभाव मे यह रूपक साङ्ग (पूर्ण) नहीं है।

ईश्वर को प्रियतम या पति मानकर उसकी उपासना करना सन्त कवियों की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। ज्ञान रूपी दीपक के द्वारा हृदय के अन्धकार को दूर करने का उपदेश कोई सन्त कवि दे रहा है। वह आत्मा (स्त्री) को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि पति रूप ईश्वर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा

है। सोने के बने हुये पलंग में चाँदी की पाटी लगी हुई है। त्रिकुटी के घाट पर स्नान करके इस पलंग पर प्रियतम के साथ सो रहो।

"सखी तोरे पियवा देइ गयो एगो पतिया।
बारहु दियवा जड़ाइ लेहु हियवा
समुझि समुझि के बतिया।
इहाँ बा ना केहू साथी ना सँघतिया,
कामिनी ! कंत तोरे जोहत बटिया।
सोने की खाटी, रूपे के पटिया
करु मज्जन चल त्रिकुटी के घटिया।
ओही रे घाट पर सुन्दर पियवा,
निरखत रहु दिन रतिया।
लछमी सखी के सुन्दर पियवा,
सूत रहु लगाई के छतिया ॥"

इस गीत में आत्मा तथा परमात्मा के मिलन का वर्णन है जिसे स्थूल रूप प्रदान करने के लिए स्त्री-पुरुष के समागम का रूपक बाँधा गया है। परन्तु यह रूपक किसी भी अंश में पूर्ण नहीं है। इसी प्रकार से रूपकालंकार के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं।

(ख) लोक-गीतों में रस-परिपाक

लोक-गीतों में रस परिपाक प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। जनता के ये गीत रस में सने हुए हैं। यदि यह कहा जाय कि रस ही इन गीतों का प्राण है तो यह सत्य से बहुत दूर न होगा। इन गीतों की रसात्मकता के आगे बड़े बड़े कवियों की सरस सूक्तियाँ भी शुष्क जान पड़ती हैं। एक एक लोकगीत क्या है रस से लबालब भरा हुआ प्याला है जिसके पीने से प्यास बुझती नहीं बल्कि और बढ़ती है। क्या हिन्दी और क्या बंगला सभी प्रान्त के लोक-गीतों में यही रस-प्रवाह प्राप्त होता है जो जनजीवन को सदा आप्लावित करता हुआ उसे हरा भरा बनाये रखता है। लोक-गीतों की पयस्विनी जिस प्रदेश से प्रवाहित होती है वह अपने तट पर स्थित वृक्षों का ही जीवन-प्रदान नहीं करती बल्कि उसका शीतल प्रवाह सभी जनों को समान भाव से आनन्द प्रदान करता है। अपनी इसी रसात्मकता के ही कारण लोक-जीवन से संबंधित ये गीत मानव-हृदय को इतना 'अपील' करते हैं। शुष्क हृदय भी इनको एक बार पढ़ कर आर्द्रचित्त हुए बिना नहीं रह सकता।

लोक-गीतों में नारी के जीवन का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। क्या सोहर, क्या बारहमासा, क्या कजली और क्या झूमर सभी में अबला जीवन की करुण कहानी पायी जाती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त ने लिखा है कि:—

"अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी॥"

जिसकी आँखों में पानी हो फिर उसकी कहानी करुण क्यों न हो? स्त्री जीवन की विविध दशाओं के चित्रण के कारण ही इन गीतों में इतनी सरसता पाई जाती है।

पुत्र या पुत्री के जन्म से लेकर गवना के गीतों तक स्त्री जीवन की किसी न किसी दशा का वर्णन इनमें उपलब्ध होता है। किम्बहुना जतसार—जाँत के गीत—और झूमर के गीतों में (जिनका संबंध किसी संस्कार या ऋतु से नहीं है) भी नारी जीवन के कारुणिक प्रसंग का चित्रण हमें देखने को मिलता है।

यों तो लोक-गीतों में प्रायः सभी रस पाये जाते हैं परन्तु इनमें प्रधानतया शृङ्गार तथा करुण रस की उपलब्धि होती है। वैवाहिक प्रसंग में हास्यरस का भी आस्वादन किया जा सकता है। आल्हा-ऊदल से संबंधित काव्य 'आल्हा' में वीर रस का विराट् रूप दिखाई पड़ता है। भजन और गंगा माता के गीतों में शान्त रस पाया जाता है। सोरठी की कथा में अद्भुत रस मिलता है।

(१) शृंगार रस

लोक-गीतों में शृङ्गार रस के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग—का वर्णन बड़ी मार्मिक रीति से किया गया है। इनमें शृङ्गार का जो वर्णन उपलब्ध होता है वह नितान्त पवित्र, संयत, शुद्ध और दिव्य है। हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने शृङ्गार रस का जो भद्दा, अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण प्रदर्शन अपनी कविताओं में किया है उसका यहाँ नितान्त अभाव है। हिन्दी के इन कवियों ने अपनी कवितायें अपने अन्नदाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिए की थीं। अतः उनमें घोर शृङ्गार का होना स्वाभाविक है परन्तु लोक-गीत "स्वान्तः सुखाय" लिखे गये हैं।

शृङ्गार रस का विशेष प्रयोग सोहर और विवाह के गीतों में दिखाई पड़ता है। महाकवि कालिदास ने जिस प्रकार 'रघुवंश' में गर्भवती सुदक्षिणा का वर्णन किया है उसी प्रकार इन गीतों में भी गर्भवती स्त्री की शरीर यष्टि, दोहद तथा प्रसव के कष्टों का उल्लेख स्थान स्थान पर हुआ है। एक गर्भवती स्त्री का सजीव चित्रण देखिए जिसमें उसकी प्रसव पीड़ा का वर्णन बहुत ही सुन्दर हुआ है।

"सुपुली खेलत तुहु ननदी, मोर पियारी ननदी रे।
ए ननदी आपन भइया देई ना बोलाई;
हम दरद बेयाकुल रे।
जुववा खेलत तुहु भइया; अबरू बीरन भइया हो।
ए भइया प्रानप्यारी भउजी हमार
दरद से बेयाकुल हो।

× × ×

डाँड़ मोर बथेला गाहागहि, कपार मोर टनकेला हो।
ए प्रभ पिरिथवी मोरे सुझेली अलोपितः
अंगुरी में दम बसे हो॥

पुत्र जन्म के अवसर पर आनन्द और उछाह का उल्लेख गीतों में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। पुत्र के जन्म पर सास रुपया लुटाती है, ननद ब्राह्मणों को मुहर दान में देती है और बन्धु बान्धवों की स्त्रियां अन्य वस्तुयें लुटा रही हैं। यह वर्णन देखिए।[1]

"सासु जे आवेली गवइत, ननदी बजवइत रे।
ललना आवेली विसाधल,
गोतिनिके घर में सोहर रे।
सासु लुटावेलि रूपैया,
त ननदी मोहरवा रे।
ललना गोतिनि लुटावेली बनउरवा,
गोतिनियाँ फेरिहे पाँइच रे॥

विवाह के गीतों में शृङ्गार रस का आनन्द अधिक मात्रा में मिलता है। विवाह के बाद जब वर को 'कोहबर' में ले जाते हैं उस समय के गीत शृङ्गारिक वर्णनों से ओत-प्रोत हैं। परन्तु इनमें अश्लीलता का भद्दा प्रदर्शन कहीं भी नहीं हुआ है।[2]

"झोप झोपारी रे फरेला सोपारी,
तर नरियरवा के बारी।
कंचन सेज डसावेली कवन देई,
केहु ना आवेला केहु जाई।

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० १५१
२. वही, पृष्ठ १५१

धावल धूपल अइले कवन राम,
मोहर दे गइले साई।
आधी राति जनि अइह मोरे राजा हो,
नगर के लोग डेराई।
ठीक दुपहरिया अइह मोरे राजा हो,
हम रउरा करबि लराई।
निचवा रजाई रे उपरा दोलाई,
ताहि बीचे होखेला लराई।
आहो लाल ताहि बीच होखेला लराई।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त गीत में संभोग शृङ्गार का जो वर्णन हुआ है वह कितना शिष्ट और संयत है।

(२) करुण रस

शृङ्गार रस के साथ ही इन लोक-गीतों में करुण रस की मात्रा भी अत्यधिक है। यह रस अनेक अवसरों पर विभिन्न परिस्थितियों में प्रवाहित होता हुआ दिखाई पड़ता है। इस रस की अभिव्यक्ति इन गीतों में तीन अवसरों पर विशेष रूप से हुई हैं। :—

(१) विदाई (२) वियोग, और (३) वैधव्य। इन तीनों अवसरों पर सुखमय जीवन का अवसान हो जाता है तथा दुःख का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। जीवन के बसन्त में अचानक पतझड़ प्रारम्भ हो जाता है। ये तीनों अवसर स्त्रियों के हृदय पर गहरी चोट करने वाले होते हैं। विदाई के अवसर पर लड़की का अपने परम प्रिय माता, पिता तथा बन्धुओं से विछोह होता है, वियोग की अवस्था में पति से विप्रयोग होता है और वैधव्य में अपने प्राणनाथ-प्रियतम से सदा के लिए आत्यन्तिक विच्छेद हो जाता है। यही कारण है कि इन गीतों में करुण रस की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जाती है। जिस प्रकार भवभूति की करुण कविता सुनकर वज्र का भी हृदय फट जाता है और पत्थर भी पसीज जाता है,[1] उसी प्रकार इन करुण रस से ओत-प्रोत गीतों को पढ़कर पत्थर के समान कठोर पुरुषों का भी कलेजा आँसुओं के रूप में पसीज-पसीज कर बाहर निकलने लगता है :—

---

१. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।
भवभूति : उत्तररामचरित।

"आँसुन के मग जल बह्यौ
हियो पसीज पसीज ।"

(क) बेटी की बिदाई

कन्या की बिदाई का समय कितना करुणोत्पादक है, इसे शब्दों में बतलाने की आवश्यकता नहीं। पिता के घर में स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन बिताने वाली, दुलार से प्याली गई कन्या, एक अनजान एवं अपरिचित घर में जाती है। पिता के घर के लाड़-प्यार की याद उसके हृदय को मसोसने लगती है। उसकी मानसिक वेदना आँसुओं की झड़ी के रूप में बहती दीख पड़ती है। ऐसे अवसर पर बड़े-बड़े धीरों की भी धीरता का बाँध टूट जाता है फिर साधारण लोग किस गिनती में है ? कालिदास ने शकुन्तला की बिदाई के अवसर पर उद्विग्नचेता महर्षि कण्व के मुख से जिस भावोद्गार को अभिव्यक्त किया है वह साहित्यवेत्ताओं से अपरिचित नहीं है। इस प्रसंग का मार्मिक चित्रण इन गीतों में उपलब्ध होता है।

एक भोजपुरी गीत में बेटी की बिदाई के समय माता-पिता के रोने का पारावार नहीं है। पिता के लगातार रोने के कारण गंगा में बाढ़ आ गई है। माता के अश्रुपात के कारण उसकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया है। भाई के रोने से उसकी धोती पैर (चरण) तक भींग गई है परन्तु भावज की आँखे गीली भी नही हुई हैं।[1]—

बाबा के रोवले गंगा बढ़ि अइली,
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजें,
भऊजी नयनवा ना लोर॥

इस छोटे से गीत में करुणरस का सागर हिलोरे मार रहा है जिसमें सहृदय पाठक अपनी सुधि-बुधि खोकर भावमग्न हो जाते हैं।

एक दूसरे भोजपुरी गीत में इसी प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है। पुत्री की विदाई से व्याकुल होकर पिता घर के दरवाजे पर बैठा हुआ रो रहा है और कह रहा है कि ए बेटी ! अब मैं कहीं भी तुम्हारा नूपुर (पायजेब) नहीं देख रहा हूँ। आँगन में बैठी हुई माता रो रही है और रसोई घर में बैठी हुई भावज अश्रुपात कर रही है। माता कहती है कि मेरी बेटी कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ती। उसके बिना रसोई घर भयानक और छूंछा (खाली) लगता है। गीत इस प्रकार है।[2]

---

१. डा० उपाध्याय—भो० ली० गी० भाग १ पृ० ७४
२. वही, पृ० ७५

"दुवरा भूलीए भूली बाबा जे रोवेले
कतही न देखो हो बेटी नुपुरवा हो तोहार।
आँगाना भूलीए भूलो आमा जे रोवेली,
कतहीं न देखो हो बेटी, रसोइया झाझाकाल।
रसोइया भूलीए भूली भउजी जे रोवेली
कतही ना देखो हे बेटी रसोइया झाझाकाल"

इसमें सन्देह नहीं कि पुत्री की विदाई का समय बड़ा ही दुःखदायी होता है। इस कारुणिक दृश्य को देखकर पाषाण का हृदय भी पिघल जाता है।

अन्य भाषाओं के लोक-गीतों में भी कन्या की बिदाई के अवसर पर इसी प्रकार के भाव प्रकाशित किये गये हैं। मानव हृदय सर्वत्र एक समान है चाहे ये गीत भोजपुरी के हों अथवा गुजराती या पंजाबी के, सभी में एक ही समान भाव-धारा प्रवाहित हो रही है। पंजाबी लोक-गीत में कोई कन्या बिदाई के समय अपने पिता से कह रही है कि ए पिता जी ? मैं तो एक चिड़ियाँ हूँ। मुझे तो एक दिन उड़ जाना होगा। मेरी उड़ान बड़ी लम्बी है। मुझे किसी अनजान देश में उड़कर जाना होगा। ए पिताजी ? मेरे बिना आप का चौका-बर्तन कौन करेगा ? घर में बैठी हुई मेरी माँ विदाई के अवसर पर रो रही है :—

"साँडा चिडियाँदा चम्बा वे बाबल असीं उड़ जाना।
साडी लम्बी उड़ारो वे, बाबल के हड़े देश जाना।
तेरा चौका भाण्डा वे, बाबल तेरा कौन करे ?
तेरा महल दाँ बिचबिच वे, बाबल मेरी माँ रोवे ॥"

ठीक इसी प्रकार, कोई गुजराती बहिन (बेन) अपनी दशा का वर्णन करती हुई कह रही है कि मैं तो एक हरे भरे खेत की चिड़िया हूं। आज दादा जी के देश में हूँ, कल परदेश चली जाऊँगी।[1]

अमेरे लीलुड़ा बननी चर कलड़ी,
उड़ी जाशुं परदेश जो।
आज रे दादा जाना देश माँ,
काले जाशुं परदेश जो।

मैथिली

पुत्री की बिदाई के अवसर पर गाये जाने गीतों को मिथिला में "समदाऊनि"

१. मेघाणी—लोक-साहित्य पृ० १८३

कहते हैं। इन गीतों में भी करुण रस पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इसका शृङ्गार प्रेम और करुणा के मोतियों से हुआ है। बिदाई के समय कोई मैथिल सास कहती है कि "गाय को खूटे में बाँधा जाता है। लेकिन बछिया को कौन बाँधता है। हाय ? मेरा दामाद मेरी बेटी को लिए भागा जाता है। दूध दुहने के समय गाय हुंकारती है। बेटी की माँ बेटी की बिदाई के समय भोजन करते समय विसूर रही है। ××

माँ किसी पथिक से पूछती है कि क्या तुमने रास्ते में मेरी बेटी और दामाद को देखा है ? वह पथिक स्वीकारात्मक उत्तर देता हुआ कहता है कि तुम्हारी बेटी की आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग रही है।[1]:—

"अँगने अँगने बुलु हँसइत जमाय।
धिआ हे समोधु सासु मन चित्त लाय॥
गैया के बँधितों में खूटा हे लगाय।
बछिया के लेल जाब भागल जमाय॥
गैया जे हुँकरय दुहान केर बेर।
बेटी क माए हुँकरय रसोइया केर बेर॥
बाट रे बटोहिया कि तुहिं मोर भाय।
एहिं बाट देखलो में धिया धी जमाय॥
देखलौं में देखलौं असोकवा तर ठाड़।
धीआ हकन कानु हसइय जमाय॥
धिअवा के कनइत में गंगा बहि गेल।
दामद के हँसइत में चादरि उड़ि गेल॥

राजस्थानी

राजस्थानी लोक-गीतों में भी कन्या के बिदाई के गीत करुण रस से ओत-प्रोत है। इन गीतों को राजस्थानी में 'बधावा' कहते हैं। कोई राजस्थानी नवबधू अपने पति के साथ ऊँट पर बैठकर विवाह के पश्चात् ससुराल जा रही है। वह अपने पति से कहती है कि ए प्रियतम ? केवल एक बार अपने ऊँट को लौटा लो। राजन् ? मुझे अपने पिता की बहुत याद आती है। इसी प्रकार वह अपनी माता, भाई और छोटी बहिन को देखने के लिए अपने पति से ऊँट को माइके ले चलने के लिए बार-बार कहती है परन्तु पति उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर देता है।[2]:—

१. राकेश:—मै० लो० गी०, पृ० १७३-७४
२. पारीक--राजस्थान के लोक गीत भाग १, पृ० २०२-३

"एक वर करला था रा, मारू जी ! पाछा जी मोड़
राजीदा ढ़ोला, ओलूं घणी आवै म्हारा बाबो-सारी
एक-वर, ओ मारूजी, करला जी पाछा मोड़।
राजीदा ढोला, ओलूं घणी आवै म्हारी माय री"

इस गीत में पुत्री का अपने पति से ऊँट को मायके लौटा ले चलने का निवेदन कितना करुणाजनक है। इसी प्रकार से अन्य राजस्थानी बिदा-गीत भी करुण रस में सने हुए हैं।

(ख) वियोग

लोक-गीतों में करुण रस की अभिव्यक्ति प्रिय-वियोग के अवसर परबड़ी मार्मिक रीति से हुई है। प्रियतम के परदेश चले जाने पर पत्नी के लिए सारा संसार सूना लगता है। घर काटने को दौड़ता है। प्रिय के प्रवास के समय समस्त प्रकृति में एक अनोखी विषमता का साम्राज्य छाया हुआ रहता है। कोई भोजपुरी प्रोषितपतिका अपनी दयनीय दशा को दर्शाती हुई कह रही है कि अरे निर्मोही ! लोभी ! तुम्हें देखे बिना कितने लोग रो रहे हैं—घर में तुम्हारी घरनी रोती है, बाहर तुम्हारी हरिनी रोती है, तालाब में चकवा चकई रो रहे है। बिछोह करते समय तुम्हें इन पर तनिक भी दया नहीं आई। गीत के इन शब्दों को सुनिये[1] :—

"घरावा रोवे घरिनी ए लोभिया,
बाहारवा राम हरिनिया।
दाहावा रोवे चाकावा चकइया,
विछोहवा कइले निरवामोहिया" ॥

पति के वियोग में केवल उसकी स्त्री ही नहीं रो रही है प्रत्युत उसका वियोग पशु (हरिनी) और पक्षियों (चकवा, चकई) को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहता। महाकवि तुलसीदास ने राम के वन गमन के अवसर पर कुछ इसी प्रकार का करुणाजनक वर्णन किया है जिसमें अयोध्या के परिजन और पुरजन ही नहीं बल्कि समस्त चराचर दुःखी हैं।

एक दूसरी स्त्री भावी वियोग के दिनों को बिताने के लिए अपने प्रियतम से युक्ति पूछ रही है। वह कहती है कि ए प्रिय ? तुम यदि परदेश में बहुत दिनों तक रहोगे तब अपनी आकृति को मेरी बाहों पर चित्रित करा दो जिसे देखती हुई मैं

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ७८

अपने दिनों को व्यतीत करूँगी। अथवा मेरे भाई को बुलाकर मुझे अपने मायके भिजवा दो। यदि तुमने परदेश में बहुत दिनों तक रहने का निश्चय कर लिया है तब मेरी बाँह पकड़ कर मुझे गंगा में डाल दो जिससे मुझे तुम्हारे असह्य वियोग को सहने का अवसर ही न मिले। गीत यह है[1]। —

"जुगुति बताये जाँव
कवन विधि रहबो राम ।।टेक।।
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहें।
बिरना बोलाइ मोको नइहर पहुचाये जाँव ।।जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहें।
अपनी सुरतिया मोरे बहियाँ पर लिखाये जाव ।। जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहें।
बहियाँ पकरि मोके गंगा भसिआये जाँव ।।जुगुति बताये जाव०

इस गीत के प्रत्येक पद से करुण रस चुआ पड़ता है। यह गीत क्या है करुण रस का कलश है। वियोग की आशंका से उत्पन्न दुःख का इतना सरस, सजीव, अकृत्रिम तथा हृदयद्रावक वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

लोक-गीतों में भौंरे को पति का प्रतीक माना गया है जो एक पुष्प के मकरन्द का पान कर दूसरे पुष्प से सम्बन्ध स्थापित करता है। कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि ए भौंरा! तुम आज परदेश जाकर कितने दिनों में लौटोगे? मैं कितने दिनों तक तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करूँगी? जब पति बहुत दिनों तक परदेश से लौट कर नही आया तब वह स्त्री दुःखी होकर कहती है 'कि पति के आने की अवधि के दिन गिनते मेरी अँगुली घिस गई।' उनके आने के दिन की प्रतीक्षा करते हुए मेरी आँखों से आँसू गिरते रहते है।[2]

"आजु के गइल भवरां, कहिया ले लवटब।
कतेक दिनवां, हम जोहबि तोरी बटिया ।।
कतेक दिनवा।
गनत गनत मोरी अंगुरी भइल खियानी,
चितवते दिनवा, नैना से ढुरे लोरबा ।।
चितवते दिनवा।

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ७६
२. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १. पृ० ८२

एक बने गइली दोसर बन गइली,
तीसरे बनवां, मिलल गोरू चरवहवा,
तीसर बनवाँ।
गोरू चरवहवा तुहीं मोर भइया।
कतहुँ देखल ना, मोर भँवरवा परदेसिया॥
कतहुँ देखल ना।

गीत में वियोगिनी की व्याकुलता देखने ही योग्य है। प्रियतम के वियोग में विधुरा यह स्त्री उसे खोजने के लिये घर से बाहर निकल पड़ती है। अपने प्राणप्रिय को वन वन खोजती है परन्तु कहीं भी उसका पता नहीं चलता।

(ग) वैधव्य

विदाई और वियोग के गीतों में करुण रस की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है परन्तु वैधव्य के गीतों में यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ दिखाई देता है। इनमें विषाद की गहरी रेखा खिंची हुई है। बाल-विधवाओं की मनोवेदना का चित्रण भला किस प्रकार किया जा सकता है? इन बाल-विधवाओं में कितना भोलापन भरा हुआ है जो विवाह जैसी अजनवी चीज को जानती ही नहीं। इनकी दर्दनाक आहें किसके दिल को न दहला देंगी? इनके गीतों में बड़ी वेदना भरी हुई है।

एक भोली भाली बाल विधवा अपने पिता से पूछ रही है कि आपने किस लिए मेरी शादी की? कब मेरा गवना किया? पिता उत्तर देता है तेरी शादी आनन्द भोगने के लिए मैंने की तथा मुहूर्त देखकर तुम्हारा गवना किया। इस पर बेटी कहती है कि ए पिता जी! मेरा सिर सिन्दूर के बिना रो रहा है; आँखें काजल बिना रो रही हैं, मेरी गोद पुत्र के बिना रो रही है और मेरी सेज पति के बिना रो रही है।[1]

"बाबा सिर मोरा रोवेला सेनुर बिनु,
नयना कजरवा बिनु ए राम।
बाबा गोद मोरा रोवेला बालक बिनु,,
सेजिया कन्हइया बिनु ए राम।"

गीत की अन्तिम दो पंक्तियों में कितनी मार्मिक वेदना भरी पड़ी है। करुण रस का प्रवाह कितना गम्भीर है।

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ८४

शान्त रस

लोक-गीत में शान्तरस का बड़ा ही सुन्दर परिपाक दिखाई पड़ता है। देवी देवताओं की स्तुति विषयक गीतों में जिस प्रकार भक्ति का उद्रेक दृष्टि गोचर होता है उसी प्रकार भजनों में ऐहिक जीवन की निःसारता और पारलौकिक जीवन की महत्ता प्रतिपादित की गई है। स्त्रियों की कामना के केन्द्र दो ही हैं—माँग और कोख अर्थात् पति और पुत्र। इनके कल्याण साधन के लिए वे भिन्न-भिन्न देवी देवताओं से मंगल की कामना किया करती हैं। इन देवताओं में एक प्रधान देवता षष्ठी माता (छठी माई) हैं जिनकी पूजा कार्तिक शुक्ल षष्ठी को भोजपुरी प्रदेश में बड़े उमंग तथा उत्साह के साथ की जाती है। यह व्रत प्रधानतया पुत्र की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

कोई वन्ध्या स्त्री षष्ठी माता से पुत्र-कामना की प्रार्थना करती हुई कहती है कि ए माता ! मेरा जीवन निरर्थक सा प्रतीत होता है। सास मुझे दुतकारती है, ननद गालियों की बौछार करती हैं और पति भी मुझे कष्ट देता है। बेचारी का दोष केवल यही है कि उसकी गोद पुत्र के बिना सूनी है। अन्त में सूर्य भगवान् उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लेते हैं।

दूसरा प्रसंग उस समय का है जब प्रातःकालीन प्राची गगन में अरुण की आभा तनिक छिटक रही है। रात के चेहरे पर से अन्धकार का काला परदा उठ गया है। परन्तु अभी सूर्य भगवान् का उदय नहीं हुआ है। भक्त नारी का हृदय बेचैन हो रहा है कि कब भगवान् सूर्य का उदय होगा। सूर्योदय की प्रतीक्षा करते करते वह थक सी जाती है। उस समय उसके मुँह से जो प्रार्थना निकलती है वह कितनी भक्ति पूर्ण और भावपूर्ण है[1]—

"ए आमा के कोरा पइसि सुतेले अदितमल,
भोरे हो गइले विहान।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल,
अरघ दिआऊ॥
फलवा फूलवा ले ले मालिनि बिटिया ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआऊ॥
गोड़वा दुःखइले रे डाडवा पिरइले,
कब से जे हम बानी ठाढ़।

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ८८

आरे हाली हाली उग ए अदितमल,
अरघ दिआऊ ॥

शीतला (चेचक) के होने पर जब बालक का शरीर जलने लगता है, बेहद पीड़ा होती है, तब उसकी जननी भक्ति भावना से झूमते हुए दयामयी शीतला माता से प्रार्थना करती है कि मैं रोग से पीड़ित बालक की माँ हूं। मैं अपना आँचल पसार कर भीख माँग रही हूँ। इस बालक को मुझे भिक्षा-रूप में दीजिये। ए मेरी मन की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली शीतला माता ! इस बालक को भीख दीजिये अर्थात् इसके रोगों को दूर कीजिए। गीत इस प्रकार है :—

"पटुका पसारि भीखि माँगेली बालाकवा के माई,
हमरा के बालाकवा के भीखि दीं।
मोर दुलारी हो मइया,
हमरा के बालाकवा भीखि दीं।
आँचारा पसारि भीखि माँगेले बालाकवा के बावा,
हमरा के बालाकवा भीखि दीं।
मोरी मनवा राखनि मइया,
हमरा के बालाकवा भीखि दीं।"

बालक की दर्द-भरी आहों से व्याकुल होकर उसकी माँ जब उपर्युक्त गीत को मस्ती मे झूम झूम कर गाती है तब सुनने वालों के शरीर में रोमाञ्च हो जाता है। उनका हृदय माता की प्रार्थना पर पिघलने लगता है।

भजनों में शान्तरस की मात्रा अत्यधिक है। इनमें संसार की निःसारता, जीवन की अनित्यता और वैभव की क्षण-भंगुरता का सुन्दर प्रतिपादन मिलता है। वृद्धा स्त्रियाँ जब गङ्गा स्नान या तीर्थ-यात्रा के लिए जाती है तब वे इन भजनों को प्रायः गाया करती है। एक तो भजनों का कोमल भाव, दूसरे इन वृद्धाओं के कण्ठ से निकली हुई भक्ति-विह्वल ध्वनि, तीसरा प्रातःकाल का सुहावना समय—ये तीनों मिलकर इन भजनों को इतना रसमय बना देते हैं कि सुनने वालों का हृदय इस सांसारिक प्रपंच से दूर हटकर भगवद्भक्ति के सागर में गोता लगाने लगता है। शरीर की क्षणभंगुरता का द्योतक यह गीत कितना सरस है।

"का देखि के मन भइल दिवाना, का देखि के। टेक
मानुख देहि देखि जनि भूल,
एक दिन माटी होई जाना। का देखि०

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ८६

आरे इ देहिया कागद की पुड़िया,
बूंद परे भिहिलाना । का देखि०
इ देहिआ के मलि मलि धोवलों,
चोवा चनन चढ़ाई ।
ओहि देहिया पर कागा बइठे ।
देखत लोग घिनाई ।।" का देखि०

हास्य रस

लोक-गीतों में हास्य रस का भी पुट पाया जाता है । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन गीतों का हास्य ग्रामीण होते हुये भी ग्राम्य नहीं है । विवाह के अवसर पर ससुराल में वर के साथ जो परिहास किया जाता है वह कितना मीठा है, कितना विशुद्ध है । कहीं कहीं इन गीतों का व्यङ्ग इतना चुभता और चुटीला होता है कि पाठकों के हृदय पर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता । शिव जी के विवाह के अवसर पर पार्वती की माता शिव की विचित्र तथा वीभत्स आकृति को देख कर डर जाती हैं और कहती हैं कि ऐसे वर से मैं पार्वती का विवाह नहीं करूँगी चाहे वह अविवाहित ही क्यों न रहें ।

"धिया लेके उड़बी धिया लेके बुड़बी
धिया लेके खिलबों पाताल ।
अइसन तपसिया के गउरा नाहीं देबों
बलु गउरा रहिहें कुँवारि ।"

पार्वती अपनी माता से शिवजी को जो हुलिया बतलाती हैं उसे पढ़कर हँसी आये बिना नहीं रह सकती । वह कहती हैं कि शिवजी की डाढ़ी सूप के समान है । वे भाँग पीते हैं और धतूरे की गोली निगल जाते हैं[1] ।

"सूप अइसन दहिया ए आमा, बरध अस आँखी ।
उहे तपेसिया ए आमा, हमें बेलमाई ।
भँगिया पीसत ए आमा, जीयरा अकुलाई ।
धतुरा के गोलिया ए आमा, हाथावा रे खिआई ।

सुन्दर चित्रों के अंकन करने में चित्रकार जितने सिद्धहस्त दीख पड़ते हैं उतने वे कुरूप तथा भद्दे चित्रों के चित्रण में नहीं । कुरूपता के चित्रण में भी एक

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १—पृ० २४६

विशेष कला है। आदर्श सती स्त्रियों के चित्रण से हमारा साहित्य भरा पड़ा है परन्तु कुलटा स्त्रियों का कला पूर्ण चित्र बहुत कम मिलता है। इस दृष्टि से कर्कशा स्त्री का यह निम्नांकित चित्रण हास्य रस के नितान्त अनुकूल है।[1]

"धनि धनि रे पुरुष तोरि भागि करकसा नारि मिली।
सात घरी दिन सोय के जागी,
लिहिन बढ़निया उठाय।
निहुरे निहुरे अँगना बटोरे,
घर भर को गरिआय ॥१॥
करकसा नारि मिली।
बखरी पर से कौवा रोवे, पहुना अइले तीन।
आव पाहुन घर में बइठ, कंडा लाऊँ बीन ॥२॥
करकसा नारि मिली।
हँड़िया भरि अदहन दिहली, चाउर मेरवली तीन।
कठवत भरि के माँड़ पसवली, पिव हिलोर हिलोर ॥३॥
करकसा नारि मिली।
सात सेर के सात पकवली, नव सेर के एक।
तू दहिजरऊ सातो खइल, हम कुलवन्ती एक ॥४॥
करकसा नारि मिली।
डेहरी बइठे तेल लगावे, सेन्दुर भरावै माँग।
आँचर पसारि के सुरुज मनावे,
कब होइबों मैं राँड़ ॥
धनि धनि रे पुरुख तोरि भागि
करकसा नारि मिली।"

उपर्युक्त गीत में कर्कशा स्त्री का जो सजीव वर्णन किया गया है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

वीर रस

'आल्ह खण्ड' वीर रस का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसकी धमनियों में इसे पढ़ या सुनकर खून न दौड़ने लग जाय? वर्षा ऋतु में अल्हैतों के द्वारा 'आल्ह खण्ड' को गाते सुनकर बूढ़ों के भी दिल में जोश उमड़

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ७०-७१

पड़ता है। सचमुच ही आल्हा वीर रस का अनूठा काव्य है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में वीर रस भरा पड़ा है। सिरसा गढ़ की लड़ाई का यह वर्णन पढ़िये जिसमें गाढ़-बन्धता लाने के लिए कवि ने वैसे ही उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया है :—

"दोंनों फौजन के अन्तर में, रहि गयो तीन पैग मैदान।
खटखट तेगा बाजन लागो, जूझन लगे अनेकन ज्वान।
बढ़े सिपाही दोंनो दल के, सब के मारू मारू रट लागि।
पैदल अभिरि गये पैदल सङ्ग, औ असवारन ते असवार।
हौदा के सङ्ग हौदा मिलि गये, हाथिन अड़ो दाँत से दाँत।
सूड़ि लपेटा हाथी होइगे, औ बहि चली रक्त की धार।"

इन शब्दों में कितना ओज गुण भरा हुआ है। इसी प्रकार आल्ह खण्ड के अन्य स्थलों से ऐसे ही अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।[1]

प्रसिद्धनारायण सिंह ने अपने 'भोजपुरी वीर काव्य' में सन् १८५७ ई० के विद्रोह के नेता बाबू कुँअर सिंह का वर्णन बड़ी ही ओजपूर्ण भाषा में किया है। अंग्रेजों के साथ कुँअर सिंह के युद्ध का वर्णन करते हुए यह कवि लिखता है कि[2]:—

"छप छप गोरन के काटि चलल,
रन भूमि रकत से पाटि चलल।
जे जहें मिलल ते तहें मुअल;
शासन के सोरि उपारि चलल।"

फिर आगे यही कवि कहता है कि :—

"अहसन सेना बलिदानी ले,
मद में मातल तूफानी ले।
आइल रन में रिपु का आगे,
जब कुंअर सिंह सेनानी ले।
खच खच खंजर तरुआरि चलल,
सङ्गीन, कृपान, कटारि चलल;
बर्छा बर्छी का बरखा में,
बहि लाल लहू के धार चलल।"

१, नारायण प्रसाद मिश्र—असली आल्ह खण्ड
प्रकाशक—बैजनाथप्रसाद बुकसेलर—वाराणसी
२. 'भोजपुरी' वर्ष ४ अंक ३—६ (जनवरी १९५६)

इसी लोक कवि ने सन् १९४२ ई० में अंग्रेजों द्वारा उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में जो अत्याचार किया गया था उसका बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। इससे ज्ञात होता है कि लोक-भाषा में भी कितनी वीर-रसमयी कविता की जा सकती है।

"सड़कन डालन से पाटि पाटि,
पूलन के दिहली काटि काटि।
तहसील खजाना लूटि फूँकि,
अगवढ़ि दिहनी तनखाह बाटि।
अपना खूनन से सींचि सींचि,
गड़ली हम झंडा जिला बीच।
गूँजल हमार जब विजय घोष,
आइल तब नेदरसोल नीच।"

अंग्रेजों द्वारा जनता पर किये गये अत्याचारों का यह वर्णन पढ़िये।

"गाँवनि पर दगलनि गन मशीन।
बेतन सन मरलन बीन बीन॥
बैठाई डाल पर नीचे से।
जालिम भोक्लन खच खच सङ्गीन॥
× × ×
घर घर से निकलल त्राहि त्राहि;
कोना कोना से आहि आहि॥
गाँवन गाँवन में लूट फूँक,
मारल, काटल, भागल पराहि॥

इस प्रकार प्रसिद्धनारायण सिंह ने बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में सन् १९४२ ई० के आन्दोलन का वर्णन किया है।

सन् १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम के अग्रणी बाबू कुँवर सिंह पर 'कुँअरायन' नाम वीर काव्य अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है जो वीर रस से परिपूर्ण है।

(ग)—लोक-गीतों में छन्द-विधान

लोक-गीत जंगल के फूल की तरह स्वतन्त्र वातावरण में उत्पन्न होते हैं और उसी वातावरण में इनका विकास भी होता है। ये छन्द-विधान के बन्धनों से परे होते हैं। ग्रामीण कवि कविता करते समय छन्दःशास्त्र के नियमों को याद कर

के नहीं बैठता और न वह जगण, रगण और मगण की भूल भूलैया में ही पड़ता है। न तो वह मात्रिक और वर्णिक छन्दों के चक्कर में पड़ता है और न वह भिन्न तुकान्त कविता की रचना-प्रणाली की ही चिन्ता करता है। उसके हृदय में जो भाव-धारा अनायास आ जाती है उसे वह "स्वान्तः सुखाय" प्रकाशित करता है। इसीलिए लोक-गीतों में छन्द विधान का कोई निश्चित नियम नहीं दिखाई पड़ता। ऐसी दशा में इस विषय के अनुसन्धानकर्ता का कार्य बड़ा ही कठिन हो जाता है।

लोक-गीतों के सम्बन्ध में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि "इनमें छन्द नहीं, केवल लय है।"[1] त्रिपाठी जी का यह कथन यथार्थ है। गीतों में लय की ही प्रधानता होती है।

सोहर

लोक कवि गीतों को बनाते समय छन्द विधान की ओर ध्यान नहीं देते। इसी कारण गीतों की कोई पंक्ति बहुत बड़ी तो कोई बहुत छोटी होती है। उदाहरण के लिए सोहर की ये चार पंक्तियाँ लीजिए जिनकी प्रत्येक पंक्ति में अक्षरों की संख्या भिन्न-भिन्न है :—[2]

"हम ना अइबों ए आमा, हम ना अइबों हो।
ए आमा मइलहि लुगवा सुतइबू आरेइया कहि बोलइबू नु हो।
आवहु ए बबुआ आवहु मोहि जुड़वावहु हो।
साफहि लुगवा सुताइबि बबुआ कहि बोलाइबि हो।"

इस सोहर की प्रथम पंक्ति में १६ अक्षर हैं तो दूसरी पंक्ति में २६ अक्षर विद्यमान है। इसी प्रकार से तीसरी और चौथी पंक्तियों में भी अन्तर है। कहने का आशय यह कि सोहर की इन पंक्तियों में अक्षरों के किसी नियम या क्रम का पालन नहीं किया गया है। इसी प्रकार निम्नलिखित भजन की पंक्तियों में भी छन्द शास्त्र का कोई नियम नहीं दिखाई पड़ता[3]।

"सोने का खड़उवा राजा रामचन्द्र ठाढ़ भइले माँह आंगाना।
राम हुकुम दीही ना मोरी माता जी, हम जइबो बनरटना।
जाहु तुहु जइबो हो बनरटना।
कढ़वो में रघुपति छुरिया, में हतबों पारान अपना॥

---

१. त्रिपाठी—कविता-कौमुदी भाग ५ (ग्राम-गीत) पृ० १।
२. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी०
३. डा० उपाध्याय—वही पृ० ४६८

यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब इन गीतों में छन्दशास्त्र के नियमों का पालन नहीं किया है और प्रत्येक पंक्ति में अक्षर-संख्या संबंधी इतनी विषमता है तब इन्हें गाते समय छन्दोभंग अवश्य होता होगा और इनकी गेयता में बाधा उपस्थित होती होगी। परन्तु नहीं, बात ऐसी नहीं है। स्त्रियाँ इन गीतों को गाते समय छंदो-भंग दोष को बचाने के लिए कहीं ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व बना कर गाती हैं। कहीं किसी पद में अक्षरों की कमी हुई तो उसे अपनी ओर से जोड़ भी लेती हैं। इस प्रकार न तो कहीं छन्दोभंग ज्ञात होता है और न कहीं गेयता में गतिरोध ही उत्पन्न होता है।

लोक-गीतों में प्रायः तुक नहीं होता है। यद्यपि विरहा के गीतों में कहीं-कहीं तुक पाया जाता है परन्तु इसे नियम की अपेक्षा अपवाद ही समझना चाहिए। इस प्रकार लोक-गीतों को भिन्न तुकान्त कविता की जननी समझना चाहिए। जिस प्रकार आधुनिक अतुकान्त कविता में लय की प्रधानता है उसी प्रकार लोक-गीतों में भी लय ही मुख्य वस्तु है। लय के द्वारा गाये जाने के कारण ये गीत इतने सरस और मनोहर मालूम होते हैं।

सुप्रसिद्ध भाषा तत्त्ववेत्ता डा० ग्रियर्सन ने विरहा का छन्द-विधान बतलाते हुए लिखा है कि पढ़ते समय ये विरहे शायद ही छन्द के नियमों के अनुसार मिलें, जब तक हम यह याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढ़ते समय लघु कर लिये जाते हैं। इनमें कभी कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं जो छन्द के अंगभूत नहीं होते।[1] इसी विद्वान् ने आगे चल अपना मत प्रकट करते हुए स्पष्ट लिखा है कि इन गीतों की यह विशेषता है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनके सम्बन्ध में शिथिल पड़ जाते हैं।[2]

विरहा

अहीरों का राष्ट्रीय गीत विरहा है। इसमें चार चरण होते हैं। इसीलिए इसे 'चरकड़िया' (चार कड़ी वाला) भी कहते हैं। इसके प्रथम और तृतीय चरण

---

1. In reading them—Birhas—they will rarely be found to agree with this; unless we remember that many long syllables must be read as short that is one instant. Sometimes, there are superfluous words which do not form part of the metre.

2. The peculiarities of all these songs is that the fetters of metre lie upon them very loosely indeed.

ज० रा० ए० सो० (१८८५ ई०)

में १६ अक्षर होते हैं और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में १० अक्षरों का विधान पाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रथम और तृतीय चरण के अन्तिम दो अक्षर क्रम से लघु और गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ के अन्तिम दो अक्षरों में गुरु और लघु का क्रम पाया जाता है। नीचे के उदाहरण से वह बात स्पष्ट हो जायेगी।[1]

"पिया पिया कहत पियर भइली देहिया
लोगवा कहेला पिंड रोग।
गउवाँ के लोगवा त मरमियो ना जानेला,
भइले गवनवा न मोर।"

यह विरहा उपर्युक्त नियम की कसौटी पर खरा उतरता है। इस छन्द के नियमानुसार इसके प्रथम तथा तृतीय चरणों में १६ अक्षर और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में १० अक्षर उपलब्ध होते हैं। विभिन्न चरणों के अन्तिम दो अक्षरों में लघु और गुरु का क्रम भी ठीक है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए जिसमें उक्त नियम का पालन विधिवत् किया गया है।[2]

"गोरि गोरि बहियाँ गोरि गोदना गोदावेले,
मोरि साले अल्हर करेज।
अइसन गोदना गोदू ना रे गोदनरिया,
चूनरी रंगेला रँगरेज॥"

परन्तु इस नियम का पालन सर्वत्र नहीं दिखाई पड़ता है। नीचे के विरहे में इस नियम का उल्लंघन स्पष्ट है :—

"पिसवा के परिकल मुसरिया तुसरिया,
दूधवा के परिकल बिलारि।
आपन आपन जोबना सँभरि हे ए बिटियवा,
रहरी में लागल बा हुँडार॥"

इस विरहे के तृतीय और चतुर्थ चरण में १८ और ११ अक्षर हैं जो नियम के प्रतिकूल है।

डा० ग्रियर्सन ने यति के ऊपर विशेष ध्यान देते हुए विरहा के प्रत्येक चरण के लिए निम्नलिखित नियम बतलाया है—

प्रथम चरण ६+४+४+२=१६ अक्षर
द्वितीय चरण ४+४+३=११ अक्षर

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ४४७
२. डा० उपाध्याय—वही, पृ० ४४४

तृतीय चरण ६+४+४+२=१६ अक्षर
चतुर्थ चरण ४+४+४=१२ अक्षर

परन्तु इस नियम का पालन जिन विरहों में हुआ है उनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

आल्हा

आल्हा एक विशेष प्रकार का छन्द है। प्रसिद्ध कवि जगनिक ने महोबे के विख्यात वीर आल्हा-उदल की कथा 'आल्हा' नामक छन्द में लिखी है। यह छन्द इतना लोकप्रिय हुआ कि फिर तो उस पुस्तक का नाम ही 'आल्हा' पड़ गया। इसके पश्चात् जो भी कविता इस छन्द में लिखी जाने लगी उसे 'आल्हा' नाम से अभिहित किया जाने लगा।

यह छन्द वीररस के वर्णन में बड़ा ही उपयुक्त होता है। जिस प्रकार संस्कृत में मन्दाक्रान्ता छन्द प्रावृट् तथा प्रवास के वर्णन में प्रयुक्त होता है और हिन्दी में शृङ्गार के वर्णन में सवैया तथा कवित्त का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार जहाँ वीर रस का वर्णन करना होता है वहाँ 'आल्हा' छन्द का प्रयोग समीचीन होता है। इस छन्द में वीर रस की जैसी सुन्दर अवतारणा की जाती है वैसी सम्भवतः हिन्दी के किसी दूसरे छन्द में नहीं हो सकती। एक उदाहरण लीजिए :—

"खट खट खट तेगा बाजै,
बाजै छपकि छपकि तलवार।
धड़ धड़ धड़ धड़ गोला छूटै,
धुवाँ धूरि एक ह्वै जाय।
सर सर तीर करे धनु हनते,
गोली फटकि फटकि रहि जाय।
गिरे सिपाही दोनों दल के,
अपनी खींचि खींचि तरवार।

सोहर

पुत्र जन्म के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें सोहर कहते हैं। चूंकि ये गीत 'सोहर' नामक छन्द में लिखे गये हैं अतः इनका नाम ही 'सोहर' पड़ गया है। लोक-कवि पिंगल शास्त्र के पचड़े में पड़कर अपनी काव्य-रचना करने नहीं बैठता। वह सर्वथा स्वतन्त्र होता है और उसके हृदय में जो भाव आते हैं उन्हें

छन्द शास्त्र के नियमों की पर्वाह न करता हुआ लिपि-बद्ध करता है। यही कारण है कि सोहर के गीतों की प्रत्येक पंक्ति में अक्षरों अथवा मात्राओं की समानता नहीं पाई जाती। उदाहरण के लिए सोहर की ये पंक्तियाँ लीजिए :—

"माघ ही मास के चउथिया, बहुवा मोरी भूखेली हो।
ए ललना ! बहुआ चलेले असनान, त सासु निरेखेली हो ॥१॥
इसमें प्रथम पंक्ति में १६ अक्षर और दूसरी में २२ अक्षर है।

इसी प्रकार—

"बाजन बाजेला बनहि बीखे, अजोधा में तड़पेला हो।
लालाना असीहि कोस हो अजोधा, सबद कानवा परि जइहें हो।"

उपर्युक्त गीत की पहली पंक्ति में २० अक्षर और दूसरी पंक्ति में २४ अक्षर हैं। इस गीत की अन्य पंक्तियों में भी इसी प्रकार अक्षरों का कोई समान क्रम नहीं दिखाई पड़ता है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्त्री-कवियों ने सोहर के निर्माण में बड़ी स्वतन्त्रता से काम लिया है और उन्होंने छन्द-शास्त्र के नियमों पर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'राम लला नहछू' में सोहर छन्द का प्रयोग किया है परन्तु उन्होंने इनकी मात्राओं को ठीक करके इसे साहित्यिक रूप प्रदान किया है। तुलसीदास जी ने जिन सोहर छन्दों का प्रयोग किया है वे छन्दःशास्त्र की दृष्टि से नपे तुले और उचित हैं। गोस्वामी जी ने 'राम लला नहछू' में तुक भी मिलाया है और मात्रायें भी प्रत्येक पद में बराबर रखी हैं। जैसे :—

"बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिन, हाथ बरायन हो।
अहिरिनि हाथ दहेड़ी सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।
रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहिं हो।
जाकी ओर विलोकहि मन उन साथहिं हो।
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगन्धन बोरा हो।
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो।

(घ) लोक-गीतों में भाव-व्यज्जना और छन्द विधान का सामंजस्य

संस्कृत में छन्द विधान का नियम

छन्द विधान और भाव-व्यंजना में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस प्रकार के भावों की व्यंजना करनी हो उनके अनुकूल ही छन्दों का प्रयोग समुचित होता है। संस्कृत साहित्य में भाव-व्यंजना और छन्द-विधान में अत्यधिक सामंजस्य पाया जाता है। संस्कृत के कवियों ने विभिन्न भावों को द्योतित करने के लिए विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्त तिलक' में इस विषय पर बड़ा गम्भीर विवेचन किया है और यह दिखलाया है कि विभिन्न रसों की अवतारणा के लिए भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग ही समुचित होता है। उन्होंने लिखा हैं कि प्रावृट् (वर्षा) और प्रवास के वर्णन के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द अधिक उपयोगी होता है।

"प्रावृट्प्रवासकथने, मन्दाक्रान्ता विशिष्यते।"

मन्दाक्रान्ता का शाब्दिक अर्थ होता है धीरे धीरे आक्रमण करने वाला। इस छन्द में भाव तथा लय की वृद्धि उत्तरोत्तर होती जाती है। इस कारण इसमें प्रवास या विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन बड़ा सुन्दर होता है। संभवतः महाकवि कालिदास ने इसी हेतु अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'मेघदूत' में केवल इसी छन्द का प्रयोग किया है। प्रवास वर्णन में करुण रस की प्रधानता होती है। अतः मन्दाक्रान्ता में इस रस का वर्णन अन्य छन्दों की अपेक्षा अधिक समीचीन होता है।

क्षेमेन्द्र ने आगे चल कर यह भी लिखा है जहाँ केवल वस्तुवर्णन और नीति-कथन हो वहाँ अनुष्टुप छन्द का प्रयोग प्रशंसनीय होता है। इसी प्रकार से भयंकर वस्तु एवं प्रचण्ड रूप के वर्णन में स्रग्धरा आदि लम्बे छन्दों का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से भाव तथा तदनुरूप छन्दों का सम्मिलित बल श्रोताओं के हृदय पर समधिक प्रभाव उत्पन्न करता है।

हिन्दी साहित्य में इस विषय की विशेष विवेचना उपलब्ध नहीं होती परन्तु रीतिकालीन कवियों ने संभोग तथा विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में प्रायः सवैया छन्द का प्रयोग किया है। यदि किसी वस्तु का लम्बा वर्णन कर उसमें गाढ़बन्धता लानी अभीष्ट हुई तो घनाक्षरी या कवित्त छन्द का उपयोग किया जाता है। हिन्दी में घनानन्द और मतिराम के सवैये तथा देव और भूषण के कवित्त अपना सानी नहीं रखते। मतिराम ने "ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि; त्यों त्यों खरी निकरैसी-निकाई" लिख कर नायिका के शरीर की गुराई के साथ ही साथ अपनी सवैया की सुघराई की ओर भी संकेत किया है।

लोक-गीतों के रचयिताओं की जो कवितायें उपलब्ध होती हैं उनके अध्ययन से पता चलता है कि इनमें भाव-व्यंजना और छन्द-विधान का प्रचुर सामंजस्य है। मानव जीवन के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुःख आदि जिन परिस्थितियों का वर्णन हुआ है प्रायः उन्हीं के अनुकूल छन्दों का प्रयोग भी पाया जाता है। यद्यपि लोक-कवि ने जान-बूझ कर ऐसा किया होगा यह कहना कठिन है।

भावव्यंजना और छन्द का समन्वय

लोक-गीतों में जहाँ जीवन की आनन्दात्मक वृत्ति का वर्णन है; जहाँ उछाह उत्साह एवं संभोग का उल्लेख है वहाँ प्रायः झूमर का प्रयोग किया गया है। झूमर की प्रत्येक पंक्ति छोटी-छोटी होती है। इसकी लय ऐसी सुन्दर और सरस होती है कि इसके सुनने से आनन्द की अद्भुत अनुभूति होती है। किसी स्त्री की यह उक्ति सुनिये: —

"ना जानो यार झुलनी मोरा कहाँ गिरी। टेक
पनिया भरन जाऊँ राजा न जानो
यहाँ गिरी ना जानो वहाँ गिरा न जानो
रोटिया पोवन जाऊँ राजा न जानो
यहाँ गिरी ना जानो वहाँ गिरी ना जानो॥"

झूमर छन्द का लय बड़ा द्रुत होता है। यह बड़ी शीघ्रता के साथ गाया जाता है। स्त्रियाँ गोल आकार में खड़ी होकर झूम-झूम कर इसे जल्दी-जल्दी गाती हैं। झूम-झूम कर गाने के ही कारण इस गीत का नाम झूमर पड़ गया है। द्रुत लय मे गाये जाने से इस छन्द मे आनन्द, हर्ष और उल्लास का वर्णन समुचित रूप से किया जाता है। संभोग शृङ्गार का—जिसमें आनन्द और हर्ष की अधिकता होती है—वर्णन इस छन्द में बड़ा ही समीचीन होता है। उदाहरण के लिए एक दूसरी झूमर सुनिये जिसमें उपर्युक्त विशेषतायें उपलब्ध होती हैं[1]।

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके
मोरी बागी उमिरिया नइहर तरसे। टेक—
सोने की थारी में जेवना परोसलो॥
मोर जेवन वाला विदेस तरसे॥२॥ मोरी०
झझरे गडुअवा गंगा जल पानी,
मोर पीयन वाला विदेस तरसे॥३॥ मोरी०

१. डा० उपाध्याय:—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ८१

लवंग इलायची के बीरा लगवली।
मोर कूँचन वाला विदेस तरसे ॥४॥ मोरी०
कलिया चुनि-चुनि सेजिया दसवेलीं।
मोर सूतन वाला विदेस तरसे ॥५॥ मोरी०

मैथिली लोक-गीतों में भी संभोग शृङ्गार का वर्णन तथा आनन्द एवं हर्ष का उल्लेख झूमर के गीतों में ही हुआ है। एक मैथिली झूमर सुनिये जिसमें जूही, चमेली के सूँघने तथा अनार के चखने के संबंध में दो सखियों में वार्तालाप हो रहा है।[१]

"कहमा लगएलौं में जुही-चमेली,
कहमा लगएलौं अनार हे।
नारियर के गछिया
दुअरे लगएलौं में जुही-चमेली
अँगने लगएलौं अनार हे।
नारियर के गछिया।
कय फल फूले जुही-चमेली
कय फूल फूले अनार हे
नारियर के गछिया
दस फूल फूलै जुही-चमेली
दुइ फूल फूलै अनार हे
नारियर के गछिया
केहि सखि चिखलन जुही-चमेली,
केहि सखि चिखलन अनार हे
नारियर के गछिया।
देवरा दहेला चिखै जुही-चमेली
सँइया रँगीला अनार हे
नारियर के गछिया।"

उपर्युक्त मैथिली झूमर में संभोग शृङ्गार का सुन्दर तथा मनोहारी वर्णन हुआ है।

जीवन के गंभीर पक्ष की अभिव्यक्ति के लिए, हृदय के मार्मिक भावों की

---

२. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० २०७

अभिव्यंजना के लिए, लम्बे लम्बे छन्दों की आवश्यकता होती है जिससे रस का स्रोत शीघ्र ही सूख न जाय। इसलिए विप्रलंभ शृङ्गार का वर्णन प्रधानतया जतसार और निर्गुन के गीतों में हुआ है। जाँत के गीत लोक-गीतों की परम्परा में प्रायः सब से लम्बे होते हैं। अतः करुण रस की जो सरिता इसमें प्रवाहित होती है उसका स्रोत अविच्छिन्न रूप से बहता रहता है। एक उदाहरण लीजिए।[1]

"ए राम जेहि बन सिकियो ना डोलेला,
बघवो ना गुजरेला ए राम।
ए राम ताहि बने हरि मोर गइले
त केहु ना सनेसिया ए राम॥
ए राम मचिया बइठल तुहूँ आमा,
त अवरू से आमा मोरी ए राम।
ए राम बिपतलि धियवा रे संगेरू,
त बिपति गवने अइलों ए राम॥
ए राम पासवा खेलत तुंहु भइया,
त अवरू से भइया मोरे ए राम।
ए राम बिपतलि बहिना रे संगेरू,
त बिपति गवने अइलों ए राम॥
ए राम मीलहु सखिया रे सहेलरि,
अवरू सहेलरि ए राम।
ए राम चलहु जमुनवा के तीरवा,
आसानानावा करबो ए राम॥"

जाँत के उपर्युक्त गीत में करुण रस की प्रचुरता है। इसकी प्रत्येक पंक्ति से करुण रस चुआ पड़ता है। इस गीत में मन्दाक्रान्ता की भाँति विलम्बित लय है जो धीरे धीरे आगे बढ़ता है। इसीलिए विरह या विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में 'जतसार' का प्रयोग बड़ा ही रस-पोषक होता है।

जहाँ वीरता और साहस का वर्णन अपेक्षित होता है, युद्ध का विवरण प्रस्तुत करना अभिष्ट होता है वहाँ 'आल्हा' छन्द का प्रयोग किया जाता है। वर्णन में गाढ़बन्धता लाने के लिए इसमें टवर्ग, संयुक्ताक्षर तथा अन्य कर्णकटु शब्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है। आल्हा छन्द की लय इतनी द्रुत होती है, गाने का स्वर

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १, पृ० ३०९-१०

इतना उच्च और ओजपूर्ण होता है कि उसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और वीर रस साक्षात् मूर्तिमान दिखाई पड़ता है। युद्ध के इस वर्णन में कितनी गति और प्रवाह है। टवर्ग के प्रयोग की प्रचुरता दिखाई पड़ती है।[1]

"खट खट खट खट तेगा बाजै,
बाजै छपकि छपकि तलवार।
धड़ धड़ धड़ धड़ गोला छूटैं,
धूँवा धूरि एक ह्वै जाय॥
निकले खाँड़ा बर्दवान के,
औ नागौंदी केर कटार।
खुखड़ा निकले नैपालिन के
जिनके लगे भरहरा खाय॥

× × × ×

नैनागढ़ की लड़ाई का यह वर्णन कितना सजीव और प्रभावोत्पादक है[2] :—

"अररर अररर गोला छूटैं,
गोला भन्न भन्न भन्नाय।
चारि घरी भरि गोला बरसै,
तोपैं लाल बरन होइ जाँय॥
झुके सिपाही महुबे वाले,
रण में कठिन करैं तलवारि।
भगे सिपाही नैनागढ़ के,
अपने डारि डारि हथियार।

संस्कृत साहित्य में हास्य रस की सृष्टि के लिये 'दोधक' छन्द का प्रयोग किया जाता है। इस छन्द का लय ऐसा होता है कि इसे पढ़ कर हँसी आये बिना नहीं रह सकती।

इसी प्रकार जहाँ हास्य रस का वर्णन अभीष्ट होता है वहाँ 'गोड़ऊ' नामक गीत का प्रयोग किया जाता है। गोड़ एक जाति विशेष है जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में पाये जाते हैं। ये विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर एक विशिष्ट प्रकार के गीत गाते हैं जिन्हें 'गोड़ऊ' कहा जाता है। इन गीतों में हास्य रस की मात्रा

---

१. त्रिपाठी : आल्हा, पृ० ८८

२. नारायणप्रसाद मिश्र—असली आल्ह खण्ड, पृष्ठ १३०-३१

अधिक होती है। यह इस रस के वर्णन के लिए नितान्त उपयुक्त होता है। इसकी शब्दावली चलती हुई और लय अत्यन्त द्रुत होता है। हास्य रस में विलम्बित लय की अवतारणा नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। नीचे के उदाहरण में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो हास्य रस के उत्पादक हैं[1]।

"हल बल हल बल धुनिया धूने,
सूत काते हलुआई।
फुफुती तर के झुलनी झूले,
बुटवलि के कामाई।
आरे बुटवलि के कामाई।
खुर खुर खुर खुर टाटी बोले,
हम जानी पियवा मोर।
पियवा के भेखे भेखे अइले,
काँगाना ले गइले चोर।
आरे कांगाना ले गइले चोर॥

(ङ) लोक गीतों में तुक और लय

तुक के प्रयोग से कविता को स्मरण रखने में सहायता मिलती है। यह कुछ अंश तक श्रुति-मधुर भी होता है। इसीलिए प्राचीन हिन्दी कवियों ने तुकान्त कविता की रचना की है। संस्कृत भाषा मे तुकान्त कविता नहीं होती और अंग्रेजी भाषा में भी बहुत सी ऐसी कवितायें उपलब्ध होती हैं जिनमें तुक का अभाव होता है। यद्यपि तुक काव्य का आवश्यक अंग नही है फिर भी इसके प्रयोग से कविता में नाद-सौन्दर्य आ जाता है। तुकान्त कविता का पाठ मधुर मालूम पड़ता है।

लोक-गीत प्रायः तुकान्त होते हैं परन्तु इनमें तुक का पालन कठोरता के साथ कहीं किया जाता। कही तो पद के अन्त में समान स्वर मिलते हैं और कहीं समान व्यंजन। कहीं पर प्रत्येक पंक्ति में एक ही शब्द या शब्दावली का प्रयोग समान रूप से पाया जाता है और कही विषम पंक्तियों में। भोजपुरी 'चैता' की प्रत्येक पंक्ति में 'हो रामा' और मैथिली 'वटगमनी' के गीतों में 'सजनि गे' शब्दों की आवृत्ति पुनः पुनः पायी जाती है। इससे इन गीतों की मधुरता में उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त होती है। आगे के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

---

१ डा० उपाध्यायः—भो० लो० गी० भाग २, पृ० ३४६-५०

"कब होइहे दरसनवा हो मोरा साम सुनर के।
सपना में देखलो भवनवा हो, अपना साम सुनर के।
लिखियो न भेजेला सनेसवा हो, अपना साम सुनर के।
ना जाने कवने करनवा हो, हमरा के तेजि के।
आधि राति बोले ला पपिहरा हो, जियरा के बेधि के।

उपर्युक्त गीत की प्रथम तीन पंक्तियों में 'साम सुनर के' का तुकान्त रूप में व्यवहार हुआ हैं। 'के' का अन्त में प्रयोग पाँचों पंक्तियों में दिखाई पड़ता है।

लोक-गीतों में प्रायः रे ना, हो ना, आहो रामा, कि आहो मोरे रामा, ए राम, हो राम, ए, हो, रे, आदि पदों की—प्रत्येक पंक्ति के अन्त में—आवृत्ति देखी जाती है। भोजपुरी चैता की प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'हो रामा' नियत रूप से पाया जाता है।[1] यथा :—

"रामा ननदी भउजिया दुनो पनिहारिन हो रामा।
मिलि जुलि सागर पानि भरे चलली हो रामा ॥१॥
रामा भरि घूठि पनिया घरिलवो ना डूबे हो रामा।
कौन रसिकवा घरिला जुठिअवले हो रामा ॥२॥
रामा घरिला भरि भरि अररा चढ़वली हो रामा।
केहूँ नाहीं घरिला मोर अलगावे हो रामा ॥३॥

इसी प्रकार मैथिली 'जट-जटिन' नामक गीतों में 'रे जटा' की आवृत्ति प्रत्येक बार हुई है।[2]

दूर दूर रे जटा
दूर रहिह रे जटा
सड़क चाउर रे जटा
राख चाउर रे जटा
बइगन भाँटी रे जटा
जुलुफ सँवारइत चल अइह रे जटा।

भोजपुरी गीतों में तुक

कहीं-कहीं पर किसी समस्त पद की पुनरावृत्ति न होकर केवल पदान्त के

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भाग २, पृ० १६७
२. राकेश : मै० लो० गी० पृ० ३५५

स्वर या व्यञ्जन ही समान पाये जाते हैं। जैसे बिसराई और नाई में 'आई' समान है। बहुरा के निम्नलिखित गीत में यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है :—

"माथ मींसे गइली रामा बाबा के सागारावा,
सखिया सब बोले ए बारि कुँवारि ॥१॥
साभावा बइठल तुहुँ बाबा हो बढ़इता,
कतेक दिनवा रखब हो बारि कुँवारि ॥२॥
तोहरो बियाह बेटी नान्हे हम कइली,
से तोर कन्त गइले हो जमोराई ॥५॥
जवना हि रहिया बाबा कन्त मोर गइले,
से तवन रहिया देहु ना हो बतलाई ॥४॥
जवना ही बटिया बेटी कन्त तोर गइले,
से तवना बटिया उपजेला हो धमोराई ॥५॥
देहु ना बाबा हो ढाल तरुवरिया,
से हमहू कटइबो हो धमोराई ॥६॥
लेहु ना बेटी हो डाल भरि सोनवा,
से आपन कन्हैया देहु ना हो बिसराई ॥७॥
आगि लगइबो बाबा डाल भरि सोनवा,
से आपन कन्हैया बिसरे जोग नाई ॥८॥

अनेक गीतों में निरर्थक पदों की आवृत्ति कर तुक मिलाने का प्रयास किया गया है[1]। जैसे :—

"पानावा छेवड़ि छेवड़ि भजिया बनौलों,
लौंगन दिहलो धुँअरवा हू रे जी।
सठिया कूटि कूटि भातावा रिन्हौलों,
ऊपरा मुँगिया केरि दलिया हू रे जी ॥९॥

'बारह मासा' में प्रथम-द्वितीय तथा तृतीय-चतुर्थ पंक्तियों में तुक की योजना बड़ी ही सुन्दर रीति से की गई है। जैसे :—

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग २, पृ० २४४

"माघ मास रितु आइल बसन्त,
कहति मदोदरि सुनु पिया कन्त।
दे डालु जानकी राम अवध फिरि जाई।
नाहीं त निसाचर बंस नसाई॥
× × ×
जइसे फागुन उड़त अबीर
तइसे धरेले राम लखन दुई बीर॥
× × ×
खड़बड़ भूमि निसाचर जूथ।
अइले कपिदल सेन बरूथ॥

इस गीत में तुक की योजना बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। यह अलंकृत कविता की कोटि में पहुँचता दिखाई दे रहा है।[1]

विरहा के गीतों में प्रथम तथा तृतीय पंक्ति में और द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्ति में तुक पाया जाता है। जैसे[2] :—

बइठलि माँजेले बटलोहिया गोरिया,
तूरेले गेडुअवा पर तान।
जेतना के सँइयाँ तोर करेला नोकरिया
हम ओतना के कचरीला पान॥

मैथिली गीतों में तुक

मैथिली 'वटगमनी' के गीतों में भी तुक का विधान इसी प्रकार से किया गया है। उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियाँ लीजिये।[3]

"अवधि मास छल माधव सजनि गे,
निज कर गेलाह बुझाय।
से दिन अब नियरायल सजनि गे
धैरज धैलो नहि जाय।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग २, पृ० १९१—९२
२. वही : भो० लो० गी० भाग १, पृ० ३५२—५३
३. राकेश : मै० लो० गी०, पृ० २६३

अति आकुलि भेलि पहुँ बिनु सजनि गे
उर अछि अति सुकुमारि ।
उकछि नयन पथ हेरय सजनि गे
अजहु न आयल मुरारि ।"

दाम्पत्य प्रेम के निम्नांकित राजस्थानी लोक-गीत में भी तुक का क्रम द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्तियों में दिखाई पड़ता है ।[1]

"मैं तने बूझूँ ए सखी
था रा किस बिध खुला जो केस ।
नैण झरै, टपका पड़ै,
था रा किस बिध बिरंगा जी भेस ।।

× × ×

च्यार कूँट की वावड़ी,
जे मे सीतल नीर ।
आप रल मिल न्हायस्यां,
(म्हारी) लाल नणद रा बीर ।।[2]

लय

वास्तव में लय ही लोक-गीतों की आत्मा है । लय के बिना इन गीतों को निष्प्राण ही समझना चाहिए । इसीलिए इनका वास्तविक आनन्द समवेत स्वर से लयपूर्वक गाने में है । जब स्त्रियाँ सामूहिक रूप से किसी गीत को गाने लगती हैं तब वे लय के अनुसार किसी ह्रस्व स्वर को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहाँ किसी पंक्ति में अक्षरों की कमी होती हैं वहाँ वे नये शब्दों को जोड़कर उसकी पूर्ति कर लेती हैं । उनके कलकंठ से गीतों का लयपूर्ण गायन गीतों में जान सी डाल देता है जिसको सुनकर श्रोतागण आनन्द सागर में डूबने लगते हैं । शुष्क से शुष्क गीतों में भी स्त्रियाँ लय द्वारा सरसता तथा मधुरता का संचार कर देती हैं। एक छोटा सा गीत लीजिए :[1]

---

१. सूर्यकरण पारीक : राजस्थान के लोकगीत भाग १ उत्तरार्ध, पृ० ३७७
२. वही पृ० ३६७
१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १, पृ० ७९

"जुगुति बताये जाँव,
कवना विधि रहबो राम । टेक ।
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहें
अपनी सुरतिया मोरे बहियाँ पर लिखाये जाँव । जुगुति०
जौ तुहु साम बहुत दिन बितिहें,
बिरना बोलाइ मोके नइहर पहुँचाये जाँव ।।जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहें,
बहियाँ पकड़ि मोके गंगा भसिआये जाँव ।
जुगुति बताये जाँव
कवना विधि रहबो राम ।।

भिन्न भिन्न गीतों को भिन्न भिन्न लयों में गाया जाता है। लय दो प्रकार के होते हैं—(१) द्रुत, और (२) विलम्बित। कुछ गीतों को द्रुत—शीघ्रतापूर्वक-लय में गाया जाता है। झूमर के गीतों को गाते समय द्रुत लय का प्रयोग किया जाता है। निर्गुन तथा चैता को विलम्बित लयों में धीरे-धीरे गाया जाता है। जतसार के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

कुछ गीत तार स्वर से गाये जाते हैं और कुछ मन्द स्वर से। विरहा और आल्हा ऐसे गीत हैं जो सदा उच्च (तार) स्वर से गाये जाते हैं। आल्हा के अतिरिक्त अन्य लोक-गाथाओं—विजयमल, लोरकी, सोरठी, कहरवा, नयकवा, बनजारा,—के गाने में भी उच्च स्वर का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों द्वारा गेय जितने गीत हैं—सोहर, जनेऊ, विवाह, गवना, जतसार, रोपनी, सोहनीआदि—वे प्रायः सभी मन्द स्वर में गाये जाते हैं। यद्यपि सामूहिक रूप से गाये जाने के कारण ये भी तार स्वरता को प्राप्त कर लेते हैं।

अध्याय १५

लोक-साहित्य में लोक-संस्कृति का चित्रण

भारतीय संस्कृति का सच्चा तथा स्वाभाविक चित्रण लोक साहित्य में उपलब्ध होता है। लोक संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को देखने के लिए हमें लोक साहित्य का ही अनुसन्धान करना होगा। ग्रामीण कवि ने समाज में जिस समता या विषमता का अनुभव किया है उसका उसी रूप मे चित्रांकन भी किया है। पारिवारिक जीवन के जो मर्मस्पर्शी दृश्य यहाँ उपलब्ध हैं उसके दर्शन अन्यत्र कहाँ ? ऐसा ज्ञात होता है कि जन-जीवन को चित्रित करने वाले 'चतुर चितेरे' ने बड़े संयम से अपनी तूलिका का प्रयोग किया है। सुन्दर तथा दिव्य दृश्यों को चित्रांकित करने में उसकी तूलिका उतनी ही सफलीभूत दिखाई पडती है जितना भोड़े तथा भद्दे चित्रों के प्रदर्शन में। लोक साहित्य में जहाँ आदर्श पतिव्रता नारियों का उल्लेख है वहाँ ऐसी कर्कशा स्त्रियों का भी वर्णन पाया जाता है जो विधवा होने के लिए सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती हैं। जहाँ माता और पुत्री का दिव्य प्रेम दिखलाया गया है वहाँ सास-बहू तथा भावज-ननद के कट एवं विषाक्त व्यवहार का वर्णन भी है। भाई और बहन के निस्पृह, पवित्र और दिव्य प्रेम का वर्णन करने के लिए जो भी विशेषण प्रयुक्त किया जाय वह थोड़ा ही है।

भाई-भाई के घनिष्ट प्रेम के उल्लेख के साथ ही देवर और भावज का जो सम्बन्ध दिखलाया गया है वह कुछ प्रशंसनीय नहीं है। कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि लोक-कवि ने जन-जीवन के उभय पक्षों—सुन्दर तथा असुन्दर—को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसीलिए वह समाज के सच्चे दृश्य को स्वाभाविक रूप में उपस्थित करने में सफलीभूत हुआ है।

सामाजिक जीवन के साथ ही साथ धार्मिक जीवन का चित्रण भी लोक-साहित्य में पाया जाता है। व्रत के गीतों में कहीं सूर्य की पूजा उपलब्ध होती है तो कहीं शीतला माता की। गङ्गा माता और तुलसी माता के गीतों की भी संख्या कुछ कम नहीं है। शिव-पार्वती और राम-कृष्ण की अर्चना भी की गई है।

लोक साहित्य में सामान्य जनता की आर्थिक परिस्थिति का भी चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। झूमर के सभी गीत 'सोने की थाली में जेवना परोसलों'

से प्रारम्भ होते हैं। प्रियतम के भोजन करने की थाली तो सोने की बनी ही है उसका जल-पात्र भी सुवर्णमय है। वह चन्दन की लकड़ी के बने पलंग पर सोता है जो रेशम की रस्सियों से बुना गया है। भोजन की वस्तुयें भी बड़ी सुन्दर तथा स्वादिष्ट हैं। परन्तु जहाँ धनधान्य तथा वैभव एवं ऐश्वर्य का वर्णन उपलब्ध होता है वहाँ साधारण किसान की गरीबी का वर्णन श्रोताओं के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहता।

कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि लोक साहित्य में सामान्य जनता की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के उभय पक्षों का रमणीय चित्रण उपलब्ध होता है।

(क) सामाजिक जीवन का चित्रण

हिन्दू परिवार संयुक्त परिवार का आदर्श उदाहरण है जहाँ पिता-पुत्र, माता-पुत्री, भाई-बहन, सास-बधू, पति-पत्नी, ननद और भावज सभी आनन्द से एक साथ निवास करते हैं। पति-पत्नी के आदर्श प्रेम की बाँकी झाँकी हमें लोक-गीतों में देखने को मिलती है। लोक-गीतों में आदर्श सती स्त्रियों का जैसा चित्रण पाया जाता है वैसा संसार के अन्य साहित्य में मिलना दुर्लभ है। पति परदेश चला जाता है, बारह वर्षों के सुदीर्घ काल को वह विदेश में बिताता है। वह अपनी सती स्त्री की तनिक भी खोज नहीं करता। परन्तु इन दुःखद दिनों को बिताती हुई उसकी स्त्री, अनेक प्रलोभनों के सामने आने पर भी अपने सतीत्व की रक्षा करती है। पति जब 'पूरबी बनिजिया' से बारह वर्षों के पश्चात् लौटकर आता है तब वह अपनी स्त्री के चरित्र पर सन्देह करता है और उसकी अग्नि-परीक्षा के बाद ही उसे ग्रहण करता है। परन्तु उसकी स्त्री सती सीता के समान, इसके लिए तनिक भी बुरा नहीं मानती और अपने पतिव्रत धर्म से विचलित नहीं होती।

आदर्श सतीत्व

सतीत्व की यह भावना मानव समाज का अतिक्रमण कर पशु जगत् में भी व्याप्त दिखाई पड़ती है। किसी अनमनी (उदासीन) हरिणी को देख कर हिरन उसकी उदासीनता का कारण पूछता है। उत्तर में हरिणी कहती है कि आज राजा दशरथ के घर में पुत्र जन्म के कारण छट्ठी का उत्सव है जिसमें तुम्हें मारकर तुम्हारा मांस पकाया जायेगा। हिरन के मारे जाने पर हरिणी रानी कौशल्या से प्रार्थना करती है कि हिरन का खाल मुझे देने की कृपा कीजिए जिसे मैं पेड़ पर टाँग कर अपने दुःखी हृदय को सान्त्वना प्रदान कर सकूं। परन्तु उसकी विनम्र प्रार्थना अस्वीकृत हो जाती है। रानी हिरन की खाल से खँजड़ी बनवाती है और बालक राम उसे बजा-

बजा कर खेलते हैं। जब जब खँजड़ी बजती है तब तब उसकी आवाज सुनकर विचारी दुःखिया हरिणी चौंक उठती है। वह ढाक वृक्ष के नीचे खड़ी होकर अपने प्यारे हिरन की याद करती रहती है। अवधी का यह लोक गीत निम्नांकित है :—

"छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहबर।
अरे रामा, तेहि तर ठाढ़ि हरिनियां त मन अति अनमनि।
धरतै चरन हरिनवां त हरिनि से पूँछई।
हरिनी ! की तोर चरहा झुरान की पानी बिनु मुरझिऊ।
नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी बिनु मुरझेउँ।
हरिना ? आज राजा जी के छठ्ठी तुमहिं मारि डरि हैं।
मचियै बैठी कौसल्या रानी, हरिनि अरज करइ।
रानी, मांसवा त सिझहिं करहिया,
खलरिया हमें देतेऊ।
पेड़वा से टँगतिऊँ खलरिया, त।हेरि हेरि देखतिऊँ
रानी देखि देखि मन समुझउतिउँ,
जनुक हिरना ।जियतइँ।
जाहु हरिनि घर अपने खलरिया नाहीं देबइ।
हरिनि, खलरी के खँजड़ी मढ़उबइ,
त राम मोर खेलिहइँ।
जब जब बाजै खँजड़िया सबद सुनि अनकइ।
हरिनी ठाढ़ि ढँकुलिया के नीचे हिरन के विसूरइ।

इस गीत में पत्नी के आदर्श पतिव्रत धर्म का वर्णन अत्यन्त मनोहर है। साथ ही दुःखिनी हरिणी की दशा देखकर पाषाण हृदय भी पिघल उठता है।

सतीत्व की रक्षा के लिए स्त्रियों ने किन-किन कष्टों को नहीं उठाया। इन्होंने अपनी काञ्चन काया को धधकती हुई आग में जलाकर जौहर व्रत के द्वारा अपने सतीत्व का जौहर दिखलाया, प्रत्यक्ष जल-समाधि लेकर अपने कुल को कलंकित होने से बचाया, दुराचारी आततायियों को छलकर अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा की और अनेक कष्टों तथा यातनाओं को भोगते हुए भी ये अपने पवित्र पथ से विचलित नहीं हुईं। इन्होंने संसार की सम्पदा को अपने पैरों से ठुकरा दिया तथा संसार की कोई भी शक्ति इन्हें चाँदी और सोने के जाल में नहीं फँसा सकी। कुसुमा देवी और भगवती देवी के लकोत्तर चरित्र से कौन परिचित नहीं है ? जिन्होंने अपनी अलौकिक चातुरी तथा

साहस के द्वारा आततायी मुगल सरदारों से अपना पिण्ड छुड़ाकर, अपने प्राणों को निछावर कर, दिव्य चरित्र का परिचय दिया है।

प्रोषित्पतिका किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर कोई बटोही उस पर मोहित हो जाता है और उसे बहुमूल्य सोना, मोती आदि देकर उसके सतीत्व को खरीदना चाहता है। परन्तु वह सुन्दरी कहती है कि ए बटोही ! तुम्हारे सोने में आग लग जाय और मोतियों में वज्र पड़े। दुनियाँ में 'सत' (सतीत्व) छोड़ने से 'पत' (प्रतिष्ठा) नही रहती।[1]

बटोही धन का लालच देते हुए कहता है कि :—

"डाल भरि सोना लेहु, मोतिया से माँग भरू,
जाति छाड़ि मोरे संग लागहु रे की।"

इस पर सती स्त्री उसका मुँहतोड़ जवाब देती हुई कहती है कि :—

"आगि लागो सोनवा, बजर परे मोतिया रे,
सत छोड़े कइसे पत रहिहें नु रे की।"

पुत्र जन्म के एक गीत में स्त्री की सतीत्व रक्षा के साथ ही उसका अदम्य उत्साह एवं अलौकिक पराक्रम दिखलाया गया है। नदी के पार जाने के लिए किसी स्त्री द्वारा नाव माँगने पर कोई कामुक मल्लाह उसे हार और अँगूठी देने का लालच देकर व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। वह सती स्त्री इस प्रस्ताव को पैरों से ठुकरा कर, नदी को तैर कर, पार चली जाती है। लौटती बार वह अपने भाई को इस दुष्ट मल्लाह की खाल खींच कर उसमें भूसा भरवा देने का आदेश देती है। :—

"अगिया लगाऊँ तोरी, मुदरी, बजर परे तिलरी,
× × +
जाते हि दइया अकेलिन लौटत बिरन संग
केवटा खालवा कढ़ाय भ्सा भरतेऊँ जवन मुख भाखेऊँ।'

इसी प्रकार सती स्त्रियों की अमर कहानी लोक-गीतों मे पाई जाती है। उनके अलौकिक सतीत्व के ज्वलन्त उदाहरणों से लोक-कथायें भरी पड़ी हैं।

माता और पुत्री

यद्यपि माता का स्नेह पुत्र के प्रति असीम होता है परन्तु पुत्री भी उसे कुछ कम प्यारी नहीं होती। लोक गीतों में माता का प्रेम पुत्र की अपेक्षा पुत्री में अधिक

१. डा० उपाध्याय :—भो० लो० सा० का अध्ययन

दिखाई पड़ता है। पुत्री के पैदा होने तथा उसके विवाह में कितना भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े, माँ का प्रेम से परिपूर्ण हृदय इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता और वह पुत्री से बड़ा प्रेम करती है।

गवना के गीतों में पुत्री के बिदा होते समय माता के प्रेम का फौवारा फूटता हुआ दिखाई देता है। बिदाई के समय पुत्री के लिए माता की व्याकुलता और उसके वियोग के कारण अनवरत रोदन करने की चर्चा का उल्लेख करुण रस के प्रसंग में किया जा चुका है।

पुत्री को जब ससुराल में कष्ट होता है, उसका जी वहाँ नही लगता, तब वह माता के अतिरिक्त किसी से भी अपने दुःख का प्रकाशन नहीं करती। पार्वती जी ससुराल के कष्टों को अपनी माता से निवेदन करती हुई कहती हैं कि ए माता ! शिव जी के लिए भाँग पीसते पीसते मेरा हाथ घिस गया है और धतूर मलते मलते हृदय व्याकुल हो गया है।[1]

"भँगिआ पीसत ए आमा, हथवा खिअइले
धतूर मलत ए आमा, जियरा अकुलइले।"

भाई और बहन

भाई और बहन के विशुद्ध, सात्विक, दिव्य और अलौकिक प्रेम का जो वर्णन लोक गीतों में उपलब्ध होता है वैसे आदर्श प्रेम की प्राप्ति अन्यत्र दुर्लभ है।

भाई बहन के घर गया है। वह अपनी सास से पूछती है कि मैं अपने भाई के लिए क्या क्या भोजन बनाऊँ ? दुष्टा सास कदन्न (कोदों, साँवा) का नाम लेती है। इस पर बधू क्रोधित होकर कहती है कि तुम्हारे कोदों साँवा में आग लग जाय और अपनी सास की इच्छा के विरुद्ध वह बासमती चावल का भात और मूँग की दाल बनाती है। वह पूड़ी और पालक का शाक भी तैयार करती है तथा सारी सामग्री को सोने के थाल में परोसकर भाई को भोजन करती है।[2]

भाई का आगमन बहन के लिए उत्सव का अवसर होता है। कोई बहन कहती है कि आज मेरा भाई आया है। अतः मेरे हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता है। ए भाटिन, तुम गीत गावो। ए मेरी सास ! तुम मेरे भाई के भोजन के लिए पूड़ी बनाओ।[3]

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० सा० अध्ययन
२. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १ पृ० ४४४
३. वही, पृ० ४०६

"आरे आरे जोगिन भाटिन सब कोई गावहु हो।"
मोरा जियरा भइल बा हुलास, बीरन मोर आवेले हो।
आरे आरे सासु बढ़इतिन करहिया चढ़ावहु हो।
आजु मोरा जियरा हिलोरे,
बीरन मोर आवेले हो।"

बहन का भ्रातृस्नेह सच्चा और सक्रिय है। दासी के द्वारा जब उसे समाचार मिलता है कि उसका भाई आ रहा है तब वह अत्यन्त उत्कण्ठित होकर अटारी पर चढ़ जाती है। कोठे के झरोखे से वह अपने भाई को देखती है जो बेला के नीचे खड़ा है। वह अपनी सास से चादर माँगकर भाई से मिलने के लिए चल पड़ती है--

खिरकी से बहिनी जे चितवे,
बीरन बेइलि नीचे ठाढ़।
देहु न सासु मोरी अपनी चदरिया
बीरन मिलन हम जाइबि॥"

भोजपुरी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि "भाई के चोट अवरु केहुनी के घाव न सहाला" अर्थात् भाई और कुहनी का चोट असह्य होता है। इससे पता चलता है कि बहन के हृदय में भाई के प्रति कितनी करुणा, कितना प्रेम और कितना स्नेह है।

भाई और बहन का प्रेम अन्योन्याश्रय है। भाई भी अपने प्रेम की अञ्जलि बहन को अर्पण करता हुआ दिखाई पड़ता है। राजा गोपीचन्द जब संसार को छोड़कर जोगी हो जाते हैं तब उनकी माता कहती है कि बेटा! तुम सब जगह जाना परन्तु अपनी बहन के पास मत जाना। इस पर वे उत्तर देते हैं कि माँ! मैं कहीं भले ही न जाऊँ परन्तु बहन के यहाँ अवश्य जाऊँगा। इससे गोपीचन्द के, अपनी बहन के प्रति, प्रगाढ़ प्रेम का पता चलता है। बहिन के बिदाई के अवसर पर भाई के लगातार रोने से उसके आँसुओं से पैर तक धोती के भींगने का उल्लेख गत पृष्ठों में किया जा चुका है।

सचमुच ही लोक गीतों में भाई और बहन के अलौकिक प्रेम का जो चित्रण किया गया है वह अनुपम और अद्वितीय है।

सास-पतोहू

लोक साहित्य में जहाँ पिता-पुत्र, माता-पुत्री, पति-पत्नी, और भाई-बहन का

लोकोत्तर प्रेम दिखाई पड़ता है वहाँ सास-पतोहू, ननद-भावज और विभिन्न सपत्नियों का पारस्परिक व्यवहार अत्यन्त कटु और विषमय उपलब्ध होता है। लोक-गीतों में सास सदा 'दरुनियाँ' (दारुण) विशेषण से सम्बोधित की गई है। सास अपनी पतोहू से कटु बचन बोला करती है जो विष में बुझे बाणों के समान हृदय में प्रवेश करते हैं। वह पतोहू से कहती है कि तुम किसकी कमाई खाओगी ? क्योंकि तुम्हारा पति परदेस चला गया है।

"सासु मोर बोलेली बिरहिया,
तू केकर कमइया खइबू ए राम।"

सास केवल कटु बचन ही नहीं बोलती बल्कि वह पतोहू को शारीरिक कष्ट भी देती है। वह बधू से इतना अधिक घर का काम करवाती है जिसे वह करने में असमर्थ है। वह उससे बर्तन मंजवाती है और वह गहरे कुयें से पानी भरवाती है।[1] बधू की यह गाथा कितनी मर्मस्पर्शिनी है :—

कई मन कूटो भइया, कई मन पीसीला हो ना।
भइया कइ रे मन रीन्हीला रगोइया हो ना॥
सासू खाँची भर बासना मँजावेले हो ना।
सासू पनिया पताल से भरावेले हो ना॥"

सास अनेक छोटी छोटी बातों को लेकर बहू के चरित्र पर सन्देह भी करने लगती है इस प्रकार वह अपने 'दरुनियाँ' विशेषण को चरितार्थ करती हुई दिखाई पड़ती है।

ननद और भावज

ननद और भावज का सम्बन्ध भी सास और पतोहू की अपेक्षा कुछ कम विषाक्त नहीं है। ननद अपनी माँ और भाई से भावज की शिकायत करती हुई पाई जाती है। वह बात बात में भावज पर व्यङ्ग बाण छोड़ती है जो मर्म को भेदने वाले हैं। ननद और भावज का यह झगड़ा कुछ नया नहीं है। यह चिरकाल से चला आ रहा है। संस्कृत के किसी कवि ने दुष्टा सास और मर्म-भेदन में पटु ननद का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। कोई स्त्री अपने दुःखों का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कहती है कि :—

"श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रूभंगवक्रेक्षणा,
मर्मच्छेदपटुः प्रतिक्षणमसौ ब्रूते ननान्दा वचः।

---

१. दुर्गाशंकर सिंह—भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस, पृ० ४४५

अन्यासामपि किं ब्रमीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते,
कान्तः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखि !।"

इस श्लोक में ननद को कटु वचनों के द्वारा हृदयरूपी मर्मस्थल को भेदन करने में चतुर कहा गया है। यह विशेषण ननद के लिए उपयुक्त ही है। इसकी पुष्टि लोक-गीतों से पूर्ण रूप से होती है।

सौतिया डाह

सौतिया डाह बड़ी बुरी चीज होती है। एक देहाती कहावत है कि काठ की भी सौत अच्छी नहीं लगती। फिर यदि सजीव सौत घर में आ जाय तो कहना ही क्या ? गृह की शान्ति नष्ट हो जाती है और घर सौतों के लड़ने का अखाड़ा बन जाता है। लोक-गीतों में एक सौत के द्वारा दूसरी को विष खिलाने का भी उल्लेख पाया जाता है। आज भी इस सम्बन्ध में अनेक हत्यायों की कथा सुनने में आती है जो कुछ अस्वाभाविक नहीं है।

सौत की कल्पना भी दूसरी स्त्रियों को दुःखदायी होती है। वह उसके प्रतीक से भी घृणा करने लगती हैं। प्रियतम के अधरों को स्पर्श करने के कारण वंशी सपत्नी की प्रतिनिधि है। कोई स्त्री कहती है कि :—

"राजा के बंशी सेजरिया पर बाजे,
सवतिया होके सुनबि राउर बंशी।"

एक झूमर में सपत्नी की चिन्ता के कारण नींद न लगने का उल्लेख पाया जाता है।[1]

"लागति नाहीं निनिया ए राजा जी
बायें सूतलि बा सवतिया ए राजा जी,
लागति नाहीं निनिया ए राजा जी।"

सौतिया डाह कभी कभी उग्र रूप भी धारण कर लेता है। पहिले तो सौतें आपस में वाग्बाणों का ही व्यवहार करती हैं परन्तु जब यह शस्त्र सफल सिद्ध नहीं होता तब हाथा-पाई की भी नौबत आ जाती है। निरवाही के एक गीत में दो सौतों के आपस में झोटा-झोंटौवल (सिर के बालों को पकड कर जोरों से खींचना) करने का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है जिसकी केवल एक दो पंक्तियाँ ही यहाँ पर्याप्त है।[2]

---

१. दुर्गाशंकर सिंह—भो० लो० गी० क० २०, पृ० २१६
२. त्रिपाठी—कविता कौमुदी भाग ५, पृ० ४०३

उढ़री वियहि करे झोंटी क झोंटा हो ना,
रामा राजा बैठि डेहरी झँखे हो ना।"

एक दूसरे गीत में कोई बहू अपनी सौत—जो सुनारिन है—की हत्या करने के लिये सास से छूरी और कटारी माँग रही है।[1]

"देहु न सासु हो छरिया कटरिया,
कतल कइ घलबों सोनारिन हो।"

(ख) आर्थिक पक्ष का चित्रण

लोक साहित्य मे साधारण जनता के सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ ही आर्थिक पक्ष का चित्रांकन भी उपलब्ध होता है। जहाँ ग्रामीण जीवन मे सुख और समृद्धि का सागर हिलोरें मार रहा है वहाँ घोर निर्धनता, हीनता और दीनता का वीभत्स कंकाल सामने दिखाई पड़ता है। जहाँ देहात की दुनिया में धन-धान्य और वैभव का साम्राज्य दिखाई पड़ता है वहाँ दुःख, गरीबी और भूख का भैरव नाद भी सुनाई पड़ता है। जहाँ भूमर के गीतों में सोने की थाली में भोजन करने और सुवर्ण-मय पात्रों से जल पीने का वर्णन उपलब्ध होता है वहाँ टूटी हुई खाट और टपकते हुए छप्पर का मर्मस्पर्शी चित्रण हमारे हृदय को आकर्षित कर लेता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि सुख-दुःख, आशा-निराशा, विलास-वैभव और दैन्य-दीनता के उभय पक्षों का वर्णन लोक-साहित्य मे पाया जाता है।

निर्धनता का वर्णन

कोई निर्धन तथा दुःखिया स्त्री गीतों के माध्यम से अपने दुःख तथा गरीबी का वर्णन करती हुई कहती है कि मेरा छप्पर टूटा हुआ है और वर्षा की बूदें टपक रही है। मेरी सुधि लेने वाला कोई नहीं है। मेरा जेठ अपना बँगला छवाता है और मेरा देवर चौपाल छवाता है। उस स्त्री के घर को भला कौन छवायेगा जिसका पति परदेस में है? इस गीत में दुःखिया स्त्री के निर्धन जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह अवधी लोक-गीत निम्नांकित है।[1]

"टुटही मड़इया बुनिया टपकइरे।
के सुधि लेबै हमार?
जेठा छवावइ आपन बँगलवा,
देवरा छवावै चौपार।'

---

१. दुर्गाशंकर सिंह—भो० लो० गी० क० २०, पृ० २०६

हमरा मंदिलवा केऊ न छवावै
जेकर पियवा विदेस ।।"

इसी प्रकार कोई भोजपुरी गरीब स्त्री विलाप करती हुई कहती है कि मेरा पति तो पूर्व देश—बंगाल—में व्यापार करने के लिए जा रहा है अब मेरे उँजड़े हुए घर को कौन छवावेगा ?[1]

"पियवा जे चलेले पुरुब बनिजिरया
से केइ रे छइहें ना, मोरा उजड़ल बँगलवा
से केइ रे छइहें ना ।"

गाँवों में गरीबों के लिए न रहने को झोपड़ी है और न पहनने को वस्त्र। उपर्युक्त गीत की स्त्री ऐसी ही गरीबी की मूर्तिमती प्रतिनिधि है। हमारे गाँवों में निवास करने वाली अगणित अभागिन स्त्रियाँ इसी प्रकार थोड़ी-थोड़ी सी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तड़प तड़प कर रह जाती हैं। उनके दिल के अरमान दिल में ही रह जाते हैं।

महर्घता के कष्टों से पीड़ित कोई ग्रामीण युवा कह रहा है कि मँहगी के कारण पेट की ज्वाला से पीड़ित होने से 'विरहा' का गाना भूल गया। अब कजरी और कबीर के गीत भी अच्छे नहीं लगते। सुन्दरी युवती के उभरे हुए यौवनों को देखकर अब मेरे हृदय में पीड़ा नहीं होती :—

"मँहगी के मारे विरहा बिसरिगा,
भूलि गइली कजरी, कबीर ।
देखि के गोरी के उभरल जोबनवा,
अब उठे ना करेजवा में पीर ।।"

सचमुच पेट की मार बड़ी जबरदस्त मार होती है। जब पेट खाली होता है तब साहित्य-संगीत की चर्चा सूखी मालूम पड़ती है। इसी तथ्य की अभिव्यक्ति आभीर युवक ने बड़ी स्पष्टता से की है।

संस्कृत के किसी कवि ने ग्रामीण जीवन की गरीबी का चित्रण सहृदयता की तूलिका से किया है जिससे उसका जीता जागता चित्र हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है।

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ३६४

"वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहम्;
कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी पुत्रस्य वार्ताऽपि नो।
यत्नात्संचिततैलविन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला,
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूः चिरं रोदिति ॥"

गँवई की गरीबी का नंगा चित्र हमें उस निरवाही के अवधी गीत में दिखलाई पड़ता है जिसमें कोई बहन अपने कष्टों का हृदय-विदारक वर्णन अपने प्यारे भाई से करती है। वह कहती है कि "भैया ! मुझे न मालूम कितना मन धान कूटना पड़ता है, कितना मन गेहूँ पीसना पड़ता है और कितने मन की रसोई बनानी पड़ती है। इसके बाद बहुत सा बर्तन माँजना पड़ता है तथा बहुत दूर के कुयें से पानी खींच कर लाना पड़ता है। सब लोगों के भोजन करने के पश्चात् जब खाने की मेरी पारी आती है तब मुझे सबसे छोटी रोटी खाने को मिलती है। इसमें से भी ननद के लिए कलेवा रखना पड़ता है। कुछ अंश देवर को देना पड़ता है। फिर कुत्ते और बिल्ली को भी कुछ भाग देना जरूरी है। कपड़ों की भी दशा यही है। दूसरों के द्वारा व्यवहार में लाया गया वस्त्र मुझे पहिनने को मिलता है। इसमें से भी ननद के लिए ओढ़नी देनी पड़ती है। देवर का लँगोटा इसी कपड़े से बनाया जाता है। शेष कपड़े से मैं किसी प्रकार अपना तन ढकती हूँ।"[1]

उपर्युक्त गीत ग्रामीण जीवन की निर्धनता की पूर्ण रूप से व्याख्या ही नहीं करता अपितु भाष्य का भी काम करता है।

किसान-जीवन की साध

भारतीय किसान का जीवन बड़ा सीदा-साधा और सरल होता है। वह थोड़े ही में सन्तोष प्राप्त कर लेता है। अतएव उसका जीवन सुखी होता है। विद्वानों ने कहा है कि 'सन्तोषं परमं सुखम्' अर्थात् सन्तोष ही सब से बड़ा सुख है। कृषक का जीवन सन्तोष का उत्कृष्ट तथा मूर्तिमान् उदाहरण है। एक मारवाड़ी गीत इस प्रकार है—

"उठे ही पीरो होय उठे ही सासरो
अथूणें होय न खेत चवे न आसरो।
नाड़ा खेत नजीक जड़े खोलणा
इतना दे करतार फेर नहीं बोलणा ॥

---

१. त्रिपाठी—क० कौ० भाग ५ (ग्राम गीत)

जिसका भाव यह है कि किसान केवल यह चाहता है कि उसके पिता का घर और उसकी ससुराल एक ही गाँव में हो; खेत पश्चिम में हो, झोपड़ी वर्षा के दिनों में चूने (टपकने) वाली न हो। तालाब खेत के पास ही हों जिससे बैलों को पानी पीने के लिए दूर न जाना पड़े। यदि भगवान् इतना दे दे तो उससे और कुछ नहीं माँगना है। इस गीत से पता चलता है कि किसान के जीवन की साध, उसके जीवन का उद्देश्य क्या है। उसकी आवश्यकतायें कितनी सीमित हैं। 'सुत्तनिपात' में इसी प्रकार का एक गीत (गाथा) पाया जाता है :—

"पक्कदनो दुद्धखीरोहमस्मि
अनुतीरे महिया समानवासो।
छन्ना कुटि आहिलोगिनि
अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥"

अर्थात् मेरे यहाँ भोजन प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। मेरे घर में दूध देने वाली गायें हैं। मैं नदी के किनारे अपने कुटुम्बियों के साथ एक घर में रहता हूँ। मेरा घर अच्छी तरह से छाया गया है जिससे चूने का डर नहीं है। मेरे यहाँ जलती हुई आग भी मौजूद है। अतः हे देव! तुम जितना चाहो बरस लो। इस गीत में जो अलौकिक ओज, जो अदम्य उत्साह, संतोष की ज्वलन्त भावना, विपत्तियों के प्रति चुनौती और जीवन के प्रति जो सच्ची आस्था विद्यमान है वही लोकगीतों की आधार-शिला है।

ग्रामीण जीवन की सादगी और सरलता की प्रशंसा संस्कृत साहित्य में भी उपलब्ध होती है। देहाती दुनिया की सरलता पर मुग्ध होकर कोई कवि कहता है कि हे सुन्दरी! गवँई के लोग बड़े सुखी हैं। वे साठी के चावल का मीठा भात खाते हैं, सरसों का शाक और मीठी सजाव दही का स्वाद लेते हैं। इस प्रकार वे थोड़े से ही व्यय में मीठा तथा स्वादिष्ट भोजन करते हैं। हिन्दी के किसी कवि ने ग्रामीण जीवन का वर्णन करते हुए ठीक ही कहा है कि :—

"थोड़े में निर्वाह यहाँ है
ऐसी सुविधा और कहाँ है।"

किसान का जीवन सचमुच ही बड़ा सीधा और सरल है तथा उसका संसार न्यूनतम आवश्यकताओं से बना हुआ है।

धार्मिक जीवन की झलक

लोक साहित्य—विशेषकर लोकगीतों—में सामान्य जनता की धार्मिक परिस्थिति का चित्रण उपलब्ध होता है। यद्यपि नयी सभ्यता तथा शिक्षा के चाकचिक्य

के कारण हमारी प्राचीन धारणाओं और विश्वासों में परिवर्तन होने लगा है परन्तु लोक-संस्कृति की सरिता आज भी अपनी अक्षुण्ण गति से प्रवाहित हो रही है। ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी उसी प्रकार से व्रत रखती हैं और अपनी अभीष्ट कामनाओं की सिद्धि के लिए देवताओं की पूजा करती हैं जिस प्रकार से प्राचीन काल में की जाती थी। पुरुष वर्ग भी अपनी धार्मिक भावनाओं और विधि-विधानों को सँजोकर थाती के समान सुरक्षित रखे हुए है। यही कारण है कि भारतवर्ष में अनेक राजनैतिक उथल-पुथल हुए, अनेक क्रान्तियाँ हुईं परन्तु हमारी धार्मिक विचार-धारा में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। फलतः लोक-साहित्य में जनता के धार्मिक जीवन का सजीव चित्रण अंकित किया गया है।

विभिन्न देवताओं की पूजा

लोक गीतों में जिन प्रधान देवताओं की पूजा का उल्लेख पाया जाता है उनमे शिव जी सब से अधिक प्रचलित हैं। भगवान् शिव देवता के रूप में ही चित्रित नहीं किये गये हैं बल्कि वे एक साधारण पति के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं। इनकी पूजा प्रति गाँव में की जाती हैं। कोई भक्त स्त्री कहती है कि ए सखी ! शिव के मन्दिर में दर्शन करने के लिए चलो। कोई इनके मन्दिर में अक्षत चन्दन चढ़ाता है और कोई लाल चूनरी चढ़ाकर अपनी अभीष्ट सिद्धि की प्रार्थना करता है।[1] स्त्रियाँ षष्ठी माता की पूजा कार्तिक मास में किया करती हैं। यह वास्तव में सूर्य की ही उपासना है। पुत्राभिलाषिणी कोई स्त्री भगवान् सविता से प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे भगवन् ! मैं आप को अर्घ्य प्रदान करने के लिए कब से खड़ी हूँ। अब मेरा पैर दुःखने लगा है और कमर में पीड़ा हो रही है। अतः आप शीघ्र उदय लीजिए जिससे मैं अर्घ्य प्रदान कर सकूँ।[2]

"गोडवा दुःखइले रे डाड़वा पिरइले,
कबसे जे बानी हम ठाढ़।
आरे हालो हाली उग ए अदितमल,
अरघ दिआउ ॥"

कोई स्त्री कहती है कि हे भगवन् ! मैं अधिक पुत्रों को नहीं चाहती। केवल पाँच पुत्रों को प्राप्त कर ही सन्तुष्ट हो जाऊँगी। वह सूर्य की पूजा के लिए अक्षत और शीतल जल लिए हुए हैं जिससे सूर्य को अर्घ्य दे सके।[3]

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १, पृ० ३६८
२. वही : भो० लो० गी०
३. वही : भो० लो० गी० १, पृ० २४६

"खोंइछा अछतवा गड़ुववा जुड़ पानी,
चलली कवन देई अदित मनावे।
थरा नाहीं लेबों आदित बहुत ना माँगिले,
पाँच पुतर आदित हमरा के दिहिती ॥"

मारवाड़ में अनेक देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं जिनमें हनुमान् और भैरव (भैरूँजी) अधिक प्रसिद्ध हैं। कोई मारवाड़ी भक्त कहता है कि बाबा बजरंग की मूर्ति बड़ी भव्य है। कमर में लाल लँगोटा और माथे पर सिन्दूर का तिलक है। बाबा बजरंग आसन लगाकर बैठे हैं। अपने ब्रह्मचर्य के प्रताप से बजरंग जी ने रावण की अशोक-वाटिका को विध्वस्त कर डाला और राजा रामचन्द्र जी के कार्य को सिद्ध किया। माता अंजनी की कोख धन्य है जिसने हनुमान् जैसे पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया।[1]

"लाल लँगोटो तिलक सिन्दूर को
बैठ बजरंग आसण ढ़ाल ।
बाग बिधूस्या, लंका दलमली
सार्‌या राजा रामचन्द्र का काम।
धन माता अंजनी की कूख,
अुण जायो हणवंत पूत।
बाबा बजरंग रो बँगलो हद वण्यो ॥"

लोक-कथाओं में देवी-देवताओं की पूजा का वर्णन बहुशः हुआ है। इन कथाओ मे पुत्र की प्राप्ति,धन के लाभ तथा बच्चे की नीरोगकामना के निमित्त दुर्गामाता, हनुमान् (महावीर) और सत्यनारायण बाबा की अनेक मनौतियाँ मनाई जाती हैं। भूत-दूत की पूजा का उल्लेख भी स्थान-स्थान पर किया गया है। ग्रामीण जनता का जीवन धर्म से ओत-प्रोत है जिसका दर्शन लोक-गीत और कथाओं में सर्वत्र पाया जाता है।

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना

लोक साहित्य में सर्वभूतहिताय और सर्वजनसुखाय की भावना प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। गाँवों में परोपकार के लिए कुआँ खोदवाने, तालाब बनवाने और बाग लगवाने की प्रथा चिरकाल से चली आ रही है। ऐसा कार्य जिससे दूसरे मनुष्यों को सुख मिले ग्रामीण लोगों को अधिक प्रिय होता है। एक लोकगीत में यह भाव

---

१. पारीक : रा० लो० गी० भाग १ (पूर्वार्द्ध) पृ० १२-१३

व्यक्त किया गया है कि कुआँ खोदने का फल यह है कि पानी भरने वाली पनिहारिनों की भीड़ लगे। आम के पेड़ों को लगवाने का उद्देश्य यह है कि बटोही मन चाहा फल तोड़ कर खाया करें। तालाब बनाने की सार्थकता इसमें है कि मनुष्य, पशु, पक्षी सभी इसके शीतल जल का उपयोग कर आनन्द लाभ करें। स्त्री जन्म की सफलता इसी में मानी जाती है कि उसकी गोद पुत्र-रत्न से सुशोभित होती रहे।

इस गीत में ग्रामीण संस्कृति का सुन्दर चित्रण किया गया है। हमारी ग्राम-संस्कृति इन्हीं आदर्शों के सहारे सहस्त्रों वर्षों से अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। ऊपर उल्लिखित गीत में सर्वजनसुखाय की भावना व्याप्त है जो हमारे हृदय मे 'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः' की उदात्त भावना को जागरित करती है। लोक गीतों में अन्तर्निविष्ट मंगल की यह प्रवृत्ति संसार के कल्याण की आधार-शिला है।

अध्याय १६

लोक-साहित्य की धार्मिक पृष्ठभूमि

भारतवासियों का जीवन धर्ममय है। धर्म ही हमारे जीवन का प्राण है। यदि यह कहा जाय कि हमारी संस्कृति धर्म के ताने-बाने से बुनी गई है तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। हमारी संस्कृति, समाज और साहित्य में धर्म का स्वर सबसे ऊँचा है। चार पुरुषार्थों में इसे प्रधान स्थान दिया गया है। इसी के द्वारा अर्थ तथा काम की उपलब्धि होती है। इसीलिए महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास ने हाथ ऊँचा उठाकर तारस्वर से घोषित किया है कि—

"ऊर्द्ध्ववाहुर्विरौम्येषः न च कश्चित् शृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥"

प्राचीन भारतीय साहित्य का अनुशीलन करने से पता चलता है कि उसके निर्माण में धर्म की ही प्रेरणा रही है। धार्मिक भावनाओं से भावित होकर तथा धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही हमारी श्रुतियों का निर्माण किया गया था। आर्यों के धार्मिक उद्गारों ने वैदिक ऋचाओं का स्वरूप ग्रहण किया। धर्म संबंधी (यज्ञ, यागादि) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों की रचना की गई। यज्ञीय विधि-विधानों का समुचित रीति से सम्पादित करने के लिए श्रौत-सूत्रों की सृष्टि हुई। किम्बहुना धर्मशास्त्र की रचना हमारे आर्यों ने समाज में धर्म की स्थापना के लिए ही की थी।

लोक-साहित्य के संबंध में भी ठीक यही बात कही जा सकती है। लोक-साहित्य के प्रासाद का निर्माण धर्म की सुदृढ़ नींव पर ही हुआ है। धर्म जन-साहित्य का बल और सम्बल है। धर्म की प्रेरणा से ही लोक-साहित्य की सृष्टि हुई है। धर्म ने इस साहित्य के निर्माण में पृष्ठभूमि का काम किया है। जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है धर्म ही भारतीय जन-जीवन का प्राण है। अतः उसके साहित्य में इसका प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ना स्वाभाविक ही है। व्यक्ति और जाति में जो संबंध है वही संबंध लोक-साहित्य और धर्म में उपलब्ध होता है। ये दोनों अन्वय-व्यतिरेक रूप में सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। लोक-साहित्य धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। क्या लोक-गीत, क्या लोक-गाथा और क्या लोक-कथा सभी में धर्म का कोई न कोई तत्त्व अनुस्यूत है। दैनिक प्रयोग में आने वाली लोकोक्तियों, पहेलियों, सूक्तियों तथा मुहावरों में भी धर्म

संबंधी किसी न किसी भाव या विचार का प्रकाशन हुआ है। इस प्रकार हम देखते है लोक-साहित्य के सभी अंगों में धर्म उसी प्रकार से वर्तमान है जिस प्रकार से माला की प्रत्येक मनिका में सूत्र। धर्म की अनुस्यूतता के कारण ही जनता का साहित्य इतना लोकप्रिय हो सका है। इसी हेतु इसको इतना स्थायित्व प्राप्त हो सका है।

लोक-गीतों—विशेषकर भजन संबंधी गीतों—के अध्ययन से जनता के धार्मिक विचारों का पता चलता है। इन गीतों में शिव, सूर्य, कृष्ण, राम, देवी आदि की पूजा का वर्णन उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त शीतला माता, छठीमाता, गंगा माता और तुलसी माता की प्रार्थना के भी अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। स्त्रियों के विभिन्न व्रतों के अवसर पर देवी-देवताओं की स्तुति में गीत गाये जाते हैं। जब बच्चा अथवा घर का कोई अन्य व्यक्ति रोग विशेष से पीड़ित होता है तब किसी विशेष देवता की मनौती मानी जाती है। दुष्ट ग्रहों की पूजा की जाती है। यहाँ तक कि भूत-दूत और प्रेत-पिशाच भी पूजा का भाग प्राप्त करते हैं।

लोकगीतों में जिन प्रधान देवताओं की पूजा का उल्लेख मिलता है उनमें शिव सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। शिव देवता के रूप में ही केवल चित्रित नहीं किये गये हैं बल्कि एक साधारण व्यक्ति के रूप में भी इनका वर्णन हुआ है। कभी वे दूल्हे के रूप में बारात लेकर विवाह करने के लिए जाते हुए दिखाई पड़ते हैं तो कभी अर्थोपार्जन के लिए 'पूरुबी बनिजिया' को जाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

शिव की पूजा का उल्लेख अनेक गीतों में पाया जाता है। ग्रामीण स्त्रियाँ गंगा स्नान करके शिवजी की प्रतिमा के ऊपर जल चढ़ाना आवश्यक धार्मिक कृत्य समझती हैं। किसी भक्त स्त्री के शिव के मन्दिर में जाने का यह वर्णन कितना सुन्दर है :—

"चल देखि आई भोला के लाल गली।
केहू चढ़ावेला अच्छत चन्दन,
केहू चढ़ावेला सुन्दर चूनरी,
राजा चढ़ावेला अच्छत चन्दन,
रानी चढ़ावेली सुन्दर चूनरी॥"

सूर्य की पूजा का प्रचार भी कुछ कम नहीं है। स्त्रियाँ प्रतिदिन स्नान करने के पश्चात् सूर्य को अर्घ देती हैं। वन्ध्या स्त्री पुत्र की प्राप्ति के लिए सूर्य की उपासना करती है। इसके लिए वह जिस व्रत का अनुष्ठान करती है वह "छठी माता का व्रत" कहलाता है। परन्तु वास्तव में वह सूर्य का ही व्रत है। इसीलिए इसे 'सूर्य षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उनमें पुत्र की प्राप्ति के लिए सूर्य

की स्तुति पाई जाती है। कोई वन्ध्या स्त्री, सूर्य को अर्घ देने के लिये प्रातःकाल स्नान कर जल में खड़ी है और वह भगवान् भास्कर से प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे भगवन् ! मैं जल में बहुत देर से खड़ी हूँ। इस कारण मेरा पैर दुःखने लगा है और कमर में पीड़ा हो रही है। हे सूर्य ! आप शीघ्र ही उदय होइए जिससे आपको अर्घ प्रदान कर सकूँ :—

"गोड़वा दुःखइले रे डाँड़वा पिरइले, कब से जे बानी हम ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआउ॥"

एक लोकगीत में भगवान् सूर्य के स्वरूप की बड़ी सुन्दर कल्पना की गई है। उन्हें मानव का रूप प्रदान किया गया है। सूर्य भगवान् खड़ाऊँ के ऊपर चलते हैं। उनके ललाट के ऊपर तिलक है तथा हाथ में सोने की छड़ी विराजमान है।[1] रूप-कालंकार के द्वारा सूर्य का यह वर्णन कितना सजीव है। पुत्र-प्राप्ति की कामना करने वाली कोई स्त्री सूर्य को अर्घ देने के लिए जाती हुई कहती है कि हे भगवन् ! मैं अधिक पुत्र नहीं चाहती। केवल पाँच पुत्रों को प्राप्त करके ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगी।

जिस प्रकार हिन्दी के भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के बाल रूप का ही वर्णन किया है उसी प्रकार लोक-गीतों में व्रज-वल्लभ की बाल-लीलाओं का ही उल्लेख उपलब्ध होता है। कभी तो कन्हैया किसी गोपी का रास्ता रोक लेते हैं, कभी किसी दूसरी स्त्री से छेड़खानी करते हैं और कभी दही बेचने के लिए जाती हुई किसी ग्वालिन से 'गोरस' (दूध-दही तथा इन्द्रिय सुख) माँगते हैं। परन्तु इतना ही नहीं, वे उसकी दही खाकर मटका फोड़ देते हैं और मना करने पर उसकी कोमल बाँह को मरोड़ देते हैं।[2]

"अरे दही मोरा खइले हो कान्हर, मटुका दिहले हो फोर।
बहियाँ मोर मुरुकवले हो, मनवा बसेला हो मोर॥"

छोटे बच्चों को जब चेचक निकलती है और वे कष्ट से पीड़ित होते हैं तब उनकी पीड़ा को दूर करने के लिए शीतला माता की पूजा की जाती है। शीतला देवी इस रोग की अधिष्ठातृ देवता मानी जाती हैं। ऐसा विश्वास है कि इनका निवास नीम के वृक्ष पर है। अतः इस रोग से पीड़ित बालक को नीम की टहनी से पंखा किया जाता है। पुत्रवत्सला माँ बालक को पीड़ा से छटपटाती देखकर आर्त स्वर से शीतला माता से प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे मेरी पूजनीया देवी ! मेरे बालक

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १
२. वही

की रक्षा करो। मुझे उसके प्राणों की भिक्षा दो। नीचे की इन पंक्तियों में कितनी करुणा भरी है :—

"पटुका पसारि भीखि माँगेली बालाकावा के माई।
हामारा के बालकवा भीखि दीं।
मोरी दुलारी हो मइया,
हामारा के बालकावा भीखि दी ॥"

पर्वों के अवसर पर स्त्रियाँ गङ्गा स्नान करने के लिए जाया करती हैं। इस समय वे समवेत स्वर में गङ्गा की स्तुति में गीत गाती हैं। इन गीतों में गङ्गा स्नान करने से शारीरिक तथा मानसिक मल के नष्ट होने की चर्चा प्रधान रूप में की गई है। सच है गङ्गा में गोता लगाने से शरीर की ही मैल नहीं धुलती प्रत्युत मन की मैल भी नष्ट हो जाती है।

तुलसी का पौधा बड़ा पवित्र माना जाता है। स्त्रियाँ कार्तिक मास में विशेष रूप से इसकी पूजा करती हैं। प्रातःकाल स्नान कर स्त्रियाँ तुलसी माता को अर्घ देती हैं और सायंकाल उसकी आरती उतारती हैं। उनकी स्तुति में गीत भी गाती हैं।

नीची जातियों में देवी की पूजा विशेष रूप से प्रचलित है। दुःसाध (हरिजन) जाति में यदि कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है तब उसको नीरोग करने के लिए कोई डाक्टर या वैद्य नहीं बुलाया जाता बल्कि उस जाति का कोई बूढ़ा व्यक्ति बुलाया जाता है। वह देवी—दुर्गा, भगवती—की स्तुति में 'पचरा' नामक गीत गाता है और देवी का आवाहन करता है। वह पलाश की लकड़ी और घी से देवी की आराधना के लिए हवन करता है और उनसे प्रार्थना करता है कि वे रोगी को शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ प्रदान करें। इस प्रकार वह देवी को प्रसन्न कर अपने कार्य में सफलीभूत होता है।

व्रतों का विधान

स्त्रियाँ विभिन्न व्रतों का सम्पादन करती हैं। वर्ष के विभिन्न मासों में विभिन्न कार्यों की सिद्धि के लिए वे व्रतों को करती हैं। कभी प्रिय भाई की मंगल-कामना के लिए, कभी पुत्र की प्राप्ति के लिए और कभी पति के स्वास्थ्य-लाभ के लिए वे व्रतों का विधिवत् आचरण करती हैं। कुमारी लड़कियाँ भाई की शुभ-कामना के लिए कार्तिक के महीने में 'पिड़िया' का व्रत एक मास तक बड़े प्रेम से करती हैं।

इसी प्रकार 'छठी माता' का व्रत पुत्र की प्राप्ति के लिए किया जाता है। यह वास्तव में सूर्य का ही व्रत है और इसकी चर्चा पहिले की जा चुकी है। पुत्रवती स्त्रियों द्वारा अपने पुत्र की कुशलता तथा मंगल-कामना के लिए 'जिउतिया' का

व्रत सम्पादित किया जाता है। इसे संस्कृत में 'जीवित्पुत्रिका' व्रत कहते हैं। पति और पुत्र के नीरोग रहने के लिए रविवार और मंगलवार को भी व्रत किया जाता है। प्रत्येक मास की एकादशी को व्रत रखना अनेक स्त्रियों का प्रायः नियम सा है। इनके अतिरिक्त 'बहुरा' और 'तीज' के व्रत भी किये जाते हैं। इन सभी व्रतों तथा पर्वों के अवसर पर लोक-गीत गाये जाते हैं।

संस्कार-सम्बन्धी जो गीत उपलब्ध होते हैं उनमें भी धर्म के किसी अंग का उल्लेख अवश्य पाया जाता है। सोहर के गीतों में राजा दशरथ पिता के प्रतीक हैं और रामचन्द्र पुत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। होली के गीतों में राधा और कृष्ण का वर्णन प्रेमिका तथा प्रेमी के रूप में किया गया है। कहने का आशय यह है कि लोक-कवि की, काव्य-प्रतिभा धर्म को केन्द्र-बिन्दु मानकर ही विकसित होती दिखाई पड़ती है। वह जिस किसी भी वस्तु का वर्णन करता है उसमें किसी देवी-देवता का स्वरूप लाकर हमारे सामने खड़ा कर देता है।

धार्मिक विश्वास

लोक-गीतों में जनता के धार्मिक विश्वासों का चित्रण उपलब्ध होता है। बात-बात में ग्रामीण जन भाग्यवाद और कर्मवाद की दुहाई देते हैं। जगत् में जो विषमता दिखाई पड़ती है उसका मूल कारण कर्मों का फल बतलाया जाता है। लोक-गीतों में भाग्यवाद की अमिट रेखा दृष्टिगोचर होती है। भाग्य की प्रबलता और कर्म की दुर्निवारता की अभिव्यक्ति इन गीतों में बड़ी मार्मिक रीति से की गई है। इनमें कर्म और भाग्य शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। कोई बाल विधवा पुत्री अपने दुःखों का वर्णन पिता से करती है। उसका पिता उत्तर देता है कि मेले में जाकर मैं तुम्हारे भाग्य को—अन्य वस्तुओं की भाँति—बदल दूंगा। इस पर वह चतुर पुत्री उत्तर देती है कि ए पिता जी? काँसा और पीतल की वस्तुयें तो मेले में बेंची या बदली जा सकती हैं परन्तु मेरा कर्म (भाग्य) कैसे बदला जा सकता है?

"बाबा काँसावा पीतर सब बदली,
करम कइसे बदली ए राम॥'

इन पंक्तियों में लोक-कवि ने कर्म की दुर्निवारता की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि संसार कर्म प्रधान है और जो जैसा करता है उसका फल उसे अवश्य ही मिलता है :—

"कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करे सो तस फल चाखा॥"

गोस्वामी जी की उपर्युक्त चौपाई लोगों के जीवन का महामन्त्र है। इस भाव की प्रतिध्वनि अनेक गीतों में उपलब्ध होती है। कोई बहिन अपने भाई से ससुराल के कष्टों को निवेदन करती हुई कहती है कि ए भइया ! दुःखभरी मेरी इस गाथा को तुम अपने मन ही में रखना, किसी से भी मत कहना। मेरे कर्म में जैसा लिखा होगा वैसा फल मुझे तो भोगना ही पड़ेगा।[1]:—

"इ, दुःख तुम भैया मन ही में राखेउ रे ना।
भैया करम लिखा तस भोगब रे ना॥"

शास्त्रकारों ने भी लिखा है कि :—

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

राजा गोपीचन्द के जन्म के अवसर पर ज्योतिषी आकर उनकी जन्मकुण्डली का फल बतलाते हुए कहता है कि यह योगी हो जायेगा। इस समाचार को सुनकर जब उनकी माता क्रोधित होकर कहती है कि तुम्हारे पोथी-पत्रे में आग लग जाय। तब वह उत्तर देता है कि कागज को तो फाड़कर फेंका जा सकता है परन्तु कर्म को कौन मेटने वाला है ? :—

"कागज होई राजा फारि के फेकौं।
कर्म न मेटों जाय हो राम॥"

लोक-कथाओं में अनेक प्रकार के धार्मिक विचार, विश्वास, रूढ़ियों और परम्पराओं की उपलब्धि होती है। लोक-गीतों में कर्मवाद की चर्चा अभी की जा चुकी है। लोक कथाओं में भाग्यवाद की अमिट छाप दिखायी पड़ती है। मानिकचन्द्र की कथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। दुर्दिन के चक्कर में पड़कर मानिकचन्द्र नामक व्यक्ति अपने राज्य से च्युत होकर भड़भूजा का काम करने लगता है परन्तु फिर उसके दिन पलटते हैं और वह राज्य को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार लोक-कथाकार ने भाग्य के परिवर्तन का चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से इस कथा में किया है।

विश्व की मंगल-कामना की भावना भी इन कथाओं में उपलब्ध होती है। लोक-कहानियाँ सदा सुखान्त होती है दुःखान्त नहीं। कथावस्तु के भीतर कितनी ही दुःखान्त घटनायें क्यों न वर्णित हों परन्तु उन सबका पर्यवसान सुख में ही होता है। लोक-कथाओं का अन्त सदा इस प्रकार होता है :—"जैसे अमुक व्यक्ति का कल्याण हुआ वैसे ही संसार के सभी लोगों का मंगल हो।" सार्वजनीन मंगल की यह भावना उस धर्मबुद्धि से प्रेरित होती है जो संसार में सब का कल्याण चाहती है। लोक-कथाओं

---

१. त्रिपाठी : ग्रामगीत, पृ० ३६७

में वर्णित 'सर्वजनहिताय' की यह कामना हमें संस्कृत की इस सूक्ति का स्मरण दिलाती है जिसमें मानव मात्र के सुख की घोषणा की गई है।

"सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु,
सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात् ॥

लोक-कथाओं में सत्य की विजय और असत्य की पराजय दिखलाई गई है। इससे ज्ञात होता है कि लोक-कथाकार 'सत्यमेव जयते नानृतम्' के शाश्वतिक सिद्धान्त को स्वीकार करता है। इन कथाओं के अध्ययन से पाठकों के हृदय पर धर्म का प्रभुत्व स्थापित होता है।

जन साधारण अनेक प्राचीन रूढ़ियों, परम्पराओं तथा विश्वासों पर अमिट आस्था रखता है। सच तो यह है कि उसका समस्त जीवन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से घिरा हुआ है। इन विभिन्न विश्वासों और रूढ़ियों का वर्णन लोक-कथाओं में पाया जाता है।

देहाती कहावतों और मुहावरों में भी धर्म के अनेक तत्व उपलब्ध हो सकते है। किम्बहुना, बच्चों के निरर्थक कहे जानेवाले गीतों में भी भगवान् से जल की वर्षा करने के लिए प्रार्थना की गई है "राम जी राम जी रानी द. घोड़वा पियासल बा" इस पंक्ति के अर्थ को न समझता हुआ भी, इसकी पुनरावृत्ति करने वाला बालक, भगवान् से संसार के कल्याण के लिए जल देने की प्रार्थना करता है।

प्रस्तुत लेखक के द्वारा यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि लोक-साहित्य के प्रत्येक अंग में धर्म अनुस्यूत है। जिस प्रकार धर्म की जिज्ञासा वृत्ति ने भारतीय दर्शन की सृष्टि की, उसी प्रकार धर्म के प्रति हमारी दृढ़, भक्ति से लोक-साहित्य को केवल प्रेरणा ही नहीं प्राप्त हुई प्रत्युत उसने आधार शिला का कार्य किया है। हमारी धार्मिक वृत्ति के फलस्वरूप ही गंगा माता, तुलसी माता और शीतला माता के गीतों की रचना संभव हो सकी है। इसी वृत्ति ने भजन तथा निर्गुन जैसे भक्ति-भाव प्रधान गीतों को जन्म दिया है। लोक गीतों तथा गाथाओं में सतीत्व, सदाचार तथा सत्य के प्रति जो प्रगाढ़ दृढ़ता की झलक दिखलाई पड़ती है उसकी सतत प्रेरणा धर्म से ही मिली है। इन गीतों में अनेक विषम परिस्थितियों में पड़कर भी, सत् आचरण से विचलित न होने की जो अलौकिक शक्ति दृष्टि गोचर होती है, उसका मूल स्रोत धर्म ही है। भजन और निर्गुन के गीतों में भक्ति की जो मन्दाकिनी अमन्द गति से प्रवाहित होती है उसका उद्गम-स्थान धर्म ही है। जिस प्रकार प्राचीन

भारतीय तक्षण कलाकारों ने धार्मिक भावनाओं से प्रभावित होकर पाषाण की प्रतिमाओं में जान डाल दी, उसी प्रकार इन कुशल लोक-कवियों ने भी भक्ति के आवेश में आकर जो रचना की है उससे निष्प्राण शब्दों में प्राण का संचार हो गया है।

लोक-कथाओं में विश्वबन्धुत्व की भावना उपलब्ध होती है। जगत् में समस्त मानव की मंगल-कामना ही इन लोक-कथाओं का एक मात्र उद्देश्य है। क्या ऐसी दिव्य तथा स्वर्गीय कामना धर्म की भावना से अनुप्राणित नहीं है? क्या ऐसे उत्तम विचारों का मन में उदय होना धर्म की प्रेरणा के बिना संभव है? कदापि नहीं। सच तो यह है कि धर्म की आधार-शिला पर ही लोक-साहित्य की प्रतिष्ठा हुई है। जनता के इस लोकप्रिय साहित्य में वर्णित विधि-विधानों, रीति-रिवाजों, विश्वास-परम्पराओं तथा रहन-सहन का अनुशीलन किया जाय तो इससे ज्ञात होता है कि उनको धर्म से कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई है, कितना बल मिला है। किम्बहुना, यदि लोक-साहित्य के निर्माण में धर्म का आधार न प्राप्त होता तो उसका इतना सजीव, स्वस्थ तथा सबल होना संभव न था।

अध्याय १७

राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य की महत्ता

किसी देश के राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य का महत्त्व अत्यधिक है। यदि इसका सम्यक् संरक्षण एवं अनुशीलन किया जाय तो हमारे साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। इस मौखिक साहित्य में धर्म, समाज तथा सदाचार संबंधी अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है। इसके साथ ही स्थानीय इतिहास और भूगोल सम्बंधी बातें भी उपलब्ध होती हैं। भाषाशास्त्री के लिए तो यह साहित्य रत्नाकर के समान है जिसमें गोता लगाने पर उसे अनेक अनमोल मोती प्राप्त हो सकते हैं। जिन देशों या जातियों में लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं होता वे अपने मौखिक साहित्य पर ही गर्व करते हैं।

लोक साहित्य के महत्त्व को हम साधारणतया छः भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. ऐतिहासिक महत्त्व
२. भौगोलिक-आर्थिक महत्त्व
३. सामाजिक महत्त्व
४. धार्मिक महत्त्व
५. नैतिक महत्त्व
६. भाषा-शास्त्र-संबंधी महत्त्व

इनका वर्णन संक्षेप में क्रमपूर्वक यहाँ उपस्थित किया जाता है :-

१—ऐतिहासिक महत्त्व

लोक साहित्य में इतिहास की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है जिनके सम्यक् अध्ययन तथा अनुसन्धान से हमारा ऐतिहासिक भण्डार भरा जा सकता है। लोक-गीतों तथा गाथाओं में स्थानीय इतिहास का पुट बड़ा गहरा है जिनके उद्घाटन से हमारे विलुप्त तथा विस्मृत इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पड़ सकता है तथा बिखरी हुई इतिहास की अनेक कड़ियाँ जोड़ी जा सकती हैं। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में हल्दी एक छोटा सा गाँव है जहाँ कुछ काल पूर्व हैहयवंशी क्षत्री राज्य करते थे, जिनके वंशज आज भी मौजूद हैं। इन राजाओं की बिहार राज्य के शाहाबाद जिले के डुमराँव के राजघराने से बड़ी तना-तनी रहती थी। बलिया जिले के बँरिया नामक गाँव के निवासी एक भूमिहार जमींदार थे जिनका नाम बहोरन पाण्डेय था। ये डुमराँव के

राजा के मैनेजर थे। एक बार बहोरन पाण्डेय पालकी में बैठकर हल्दी गाँव से होते हुए कहीं जा रहे थे। उस समय ग्रामीण बालकों को खेल में गाते हुए इन्होंने यह सुना कि :—[1]

"राजा भइले रजुली, बहोरन भइले धुनिया।
मारेले दलगंजनदेव, दलकेले दुनिया॥

अर्थात् डुमराँव के राजा रजुली—बहुत छोटा—है और बैरिया के जमींदार बहोरन पाण्डे जुलाहा—धुनियाँ—हैं। हल्दी के राजा दलगंजनदेव के प्रताप के कारण सारी पृथ्वी काँपती है। लड़कों के इस गीत को सुनकर बहोरन पाण्डेय बहुत ही क्रुद्ध हुए और उन्होंने डुमराँव के राजा से बच्चों के गीत की कथा कह सुनाई। इस गीत को सुनते ही डुमराँव के राजा अत्यन्त क्रोधित हो गये और उन्होंने हल्दी के राजा के ऊपर आक्रमण कर उनको परास्त कर दिया।

यह एक स्थानीय घटना है जिससे हल्दी और डुमराँव के राजाओं के पारस्परिक संघर्ष का पता चलता है।

जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव के पास चाँदा नामक एक गाँव है जहाँ सन् १८५७ में सिपाही-विद्रोह के अवसर पर अंग्रेजी फौजों के साथ प्रतापगढ़ जिले के कालाकाँकर स्थान के विसेनवंशी राजा से घोर युद्ध हुआ था।[2] अब भी इस गाँव के आसपास इस युद्ध के संबंध में लोक-गीत गाये जाते है जिसकी एक कड़ी इस प्रकार है :—

"काले काँकर क बिसेनवा,
चाँदे गाड़े बा निसनवा"

मुगलों के शासन काल में किस प्रकार इस देश में अशान्ति एवं दुर्व्यवस्था थी इसका चित्रण अनेक लोक-गीतों में पाया जाता है। तुर्कों की विषय-लोलुपता तथा स्वेच्छाचारिता की गूँज इन गीतों में खूब सुनाई पड़ती है। किस प्रकार कुसुमा देवी ने मिर्जा साहब के अत्याचारों को सहकर भी अपने सतीत्व की रक्षा की थी और अपने चरित्र की ओजस्विता को प्रकट किया था, यह गाँवों में आज भी बड़े उत्साह के साथ गाया जाता है। सती कुसुमा देवी का नाम इन गीतों में अमर है। मिर्जा नामक किसी तुर्क सरदार की कुदृष्टि कुसुमा देवी के लावण्यमण्डित शरीर पर पड़ी। वह उसे पाने के लिए बेचैन हो उठा। मिर्जा ने सती कुसुमा के पिता को कैदखाने की काली कोठरी में डाल दिया और कुसुमा को जबरदस्ती पालकी में बैठा कर अपने स्थान को ले चला। पितृ-परायणा पुत्री जब रास्ते में जा रही थी तब

१. लेखक का निजी संग्रह
२. त्रिपाठी—क० कौ० भाग ५ (ग्रामगीत), पृ० ६७

उसने मिर्जा से अपने पिता के द्वारा बनवाये गये तालाब में पानी पीने की इच्छा प्रकट की। जब वह तालाब के किनारे जल पीने के लिए लाई गयी तब उसने जल मे कूद कर अपनी आत्महत्या कर ली और इस प्रकार पापी मिर्जा के कलुषित हाथों से अपने को छुड़ा लिया। कुसुमा देवी का यह दिव्य चरित्र हमारे लिए आज भी नारीत्व के उत्कृष्ट महत्त्व को प्रदर्शित करता है।

इस सुप्रसिद्ध गीत की कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार है[1] :—

"तनियक डोलिया थमाओ मिरजवा,
बाबा के सगरवा मुँहवा धोइत हो ना।
बाबा के सगरवा सुन्दर बढ़इल पनियाँ
हमरे सगरवा पनियाँ पीयो हो ना॥
तोहरा सगरवा मिरजा नित उठि होइ हैं,
बाबा कै सगरवा दुरलभ होइहैं हो ना।
एक घूट पियली दूसरा घूंट पियली,
तिसरे में गई है तराई हो ना॥
रोइ रोइ जालावा डलावै राजा मिरजा,
फँसि आवै घोंघिया सेवरिया हो ना॥
मुँहवा पटुका देके रोवे राजा मिरजा,
मोरे मुंह करिखा लगवलू हो ना॥
सिर पै पगड़िया बाँधि हँसे भैया बाबा,
दूनो कुल राखेउ बहिनी कुसुमा हो ना"

इसी प्रकार से अनेक गीत ऐसे हैं जिनमें मुगलकालीन शासन की ढिलाई और दुराचार एवं दुर्व्यवस्था का वर्णन पाया जाता है।

भोजपुरी मण्डल सदा से अपने 'वीर बाँकुड़ों' के लिये विख्यात है। अतः शत्रुओं का मानमर्दन करने वाले वीरों की अनेक कहानियाँ गीतों में गाई जाती हैं। सन् १८५७ की क्रान्ति की चर्चा—जिसमें भोजपुरी सिपाहियों का विशेष हाथ था—इन गीतों में बिखरी पाई जाती है। वीराग्रणी बाबू कुँवर सिंह ने जिस पराक्रम के साथ अंग्रेजों से युद्ध किया था वह इतिहासवेत्ताओं से अविदित नहीं है। गीतों में वर्णित इनके उत्कृष्ट बाहु-बल की कहानी सुनकर आज भी हमें रोमाञ्च हो जाता है। कुँवर सिंह की वीरता से परिपूर्ण इस गीत में उनकी बहादुरी का जीता जागता

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० १ भाग, पृ० ५१

चित्र उपस्थित किया गया है।[1] इसके साथ ही सिपाही विद्रोह सम्बन्धी अनेक घटनाओं पर भी इससे प्रकाश पड़ता है।

"लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुंवरसिंह,
ए सुन अमर सिंह भाय हो राम ॥
चमड़ा के टोड़वा दाँत से हो काटे कि
छतरी के धरम नसाय हो राम ॥
बाबू कुंवर सिंह भाई अमर सिंह,
दोनों अपने हैं भाय हो राम ॥
बतिया के कारण से बाबू कुँवरसिंह,
फिरंगी से रेह बढ़ाय हो राम ॥
दानापुर से जब सजलक हो कम्पू
कोइलवर में रहे छाय हो राम ॥
लाख गोला तुहुँ कै गनि के हो मरिहौं
छोड़ बरहरवा के राज हो राम ॥

उपर्युक्त गीत में जन-विद्रोह के एक प्रमुख कारण की ओर संकेत किया गया है। साथ ही कुँवर सिंह की सेना का दानापुर (पटना) से चल कर कोइलवर में आने का उल्लेख पाया जाता है।

सिपाही-विद्रोह सम्बन्धी अनेक गीत उपलब्ध होते है जिनमें कहीं तो मेरठ के सदर बाजार में होने वाली लूट का वर्णन है, तो कहीं अवध की बेगमों पर अंग्रेजों के द्वारा किये गये अत्याचार का उल्लेख है। अंग्रेजों ने सन् ५७ में वाजिदअली शाह से अवध की गद्दी छीनकर उसे लखनऊ से निर्वासित कर दिया था। इस दुःख से दुःखी उसकी बेगमों का यह विलाप कितना हृदय द्रावक है[2] —

"गलियन गलियन रैयत रोवे
हटियन बनिया बजाज रे ॥
महल में बैठी बेगम रोवैं,
डेहरी पर रोवै खवास रे।
मोती महल की बैठक छूटी,
छूटी है मीना बजार रे।

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० ५२
२. इण्डियन एन्टिक्वेरी भाग X L (४०) सन् १९११, पृष्ठ १६५

बाग जमनिया की सैरें छूटी,
छूटे मुलुक हमार रे।
जो मैं ऐसी जानती,
मिलती लाट से जाय रे।
हा हा करती; पैयाँ परती;
लेती सँइयाँ छोड़ाय रे॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस गीत में वर्णित घटनायें सच्ची हैं।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जो राष्ट्रीय आन्दोलन हुये हैं उनका वर्णन भी लोक-गीतों में उपलब्ध होता है। गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को समान अधिकार दिलाने के लिये जो अहिंसात्मक युद्ध किया था उसकी प्रतिध्वनि नीचे की इन पंक्तियों में सुनिये।[1]

"ए देश के दुलारे प्यारे परम पिता के,
प्रह्लाद नव समय के गौरव निधान गाँधी।
होकर अचल हिमाचल ए बीर! तू खड़ा था
जब अफ्रीका में बहती थी आपदा की आँधी।
गोरों गरूर वालों का गर्व खर्व करके,
ए देशभक्त! तूने मर्याद मेड़ बाँधी॥"

इसी प्रकार से प्रिन्सिपल मनोरंजन प्रसाद सिनहा के प्रसिद्ध गीत 'फिर गिया' में सन् १९१९ ई० में होने वाले पंजाब हत्याकाण्ड का बड़ा ही करुण चित्रण किया गया है। सन् १९३० ई० में नमक सत्याग्रह के समय के अनेक लोकगीत उपलब्ध हैं जिनमें नमक-कर हटाने के लिये कांग्रेस के संघर्ष का वर्णन पाया जाता है। सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय अनेक स्थानों पर अंग्रेजों द्वारा निरीह जनता पर जो अत्याचार हुये इसका पता गीतों से लगता है। इस प्रकार लोक-गीतों में इतिहास सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री भरी पड़ी है।

उत्तरी भारत में गोपीचन्द की गाथा बहुत प्रसिद्ध है। बहुत दिनों तक लोग इन्हें अनैतिहासिक व्यक्ति समझते थे और इनकी कथा को कवि कल्पना की उपज मानते थे। परन्तु डा० ग्रियर्सन ने प्रबल प्रमाणों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि ये ऐतिहासिक व्यक्ति थे[2]। उन्होंने इनके निवास स्थान का पता लगाकर इनके सम्बन्ध में बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री की खोज की है।

---

१. लेखक के निजी संग्रह से।

२. डा० ग्रियर्सन--जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल भाग LIV सन् १८८५, पार्ट १, पृ० ३५

महोबा के परमार राजा परमर्दिदेव की सेना के शूरमा आल्हा और ऊदल की वीरता से कौन परिचित नहीं है। जगनिक ने अपने 'आल्हखण्ड' में इन ऐतिहासिक वीरों की गाथा गायी है। जगनिक की यह कृति आज उपलब्ध नहीं है। यदि यह ग्रन्थ मूल रूप में प्राप्त होता तो परमार तथा चौहान राजाओं के इतिहास की बहुत सी सामग्री प्रकाश में आ सकती थी। यद्यपि आधुनिक काल में वर्तमान कवियों द्वारा रचित जो आल्हखण्ड मिलता है उसमें बहुत सा अंश 'भट्ट भणन्त' के रूप में है फिर भी उस कथा की ऐतिहासिकता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। आल्हा की कथा का निर्माण इतिहास की ठोस आधारशिला पर हुआ है।

२—भौगोलिक महत्त्व

लोक साहित्य में भूगोल सम्बन्धी किसी विषय का साङ्गोपाङ्ग विवेचन तो उपलब्ध नहीं होता परन्तु स्थानीय भूगोल के सम्बन्ध में बहुत सी बातों का पता चलता है। लोक-गीतों में बहुत सी नदियों और नगरों के नाम पाये जाते हैं। भोजपुरी लोक-गीतों में गंगा, यमुना, सरयू (घाघरा) और सोन आदि नदियों के नाम बारम्बार आते हैं। शहरों में काशी, प्रयाग, अयोध्या, मिर्जापुर, पटना और जनकपुर का नाम अधिक मिलता है। पूर्व देश (बंगाल) और मोरंग देश का उल्लेख भी कुछ कम नहीं हुआ है। 'ढोला मारू रा दूहा' से अनेक नगरों की स्थिति का पता चलता है।[1] 'आल्हखण्ड' में तत्कालीन भूगोल सम्बन्धी बहुत सी सामग्री उपलब्ध होती है। इसमें अनेक शहरों के नाम मिलते हैं जो किसी वीर या राजा से सम्बन्धित हैं।[2] उदाहरण के लिये दिल्ली; कन्नौज, महोबा, उरई, कालपी, माड़ौगढ़, बबुरीबन, दसहर पुरवा, बनरस, गाँजर, नरवरगढ़, नैनागढ़, पैरीगढ़, पथरीगढ़, खजुहागढ़, कजरीबन, बिठूर, और बौरीगढ़ आदि स्थानों का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है।

इनके अतिरिक्त हरद्वार, हिंगलाज, गया, गोरखपुर, पटना, बूंदी, राजगृह और बंगाल का नाम भी इसमें आया है। 'आल्हखण्ड' में कुछ ऐसे छोटे-छोटे गाँवों के भी नाम मिलते हैं जो अब या तो समय के प्रवाह में लुप्त हो गये अथवा इनका अब पता नहीं चलता। वास्तव में इस लोक-गाथा में इतने अधिक भौगोलिक नामों का उल्लेख हुआ है कि उनके विषय में खोज करने पर एक स्वतन्त्र पुस्तक का कलेवर भर सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि भूगोल के शोधी विद्वान् आल्हाकालीन भूगोल का अध्ययन कर इस गाथा में वर्णित स्थानों का पता लगावें। बिहुला के गीत में भी अनेक स्थानों का उल्लेख पाया जाता है जो भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

१. सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित
२. त्रिपाठी—आल्हा, पृ० ३७-४२

आर्थिक महत्व

लोक-गीतों में जन-जीवन के आर्थिक पक्ष की झाँकी भी दिखाई पड़ती है। गीतों और कथाओं में सोने की थाली में भोजन करने और आभूषणों की प्रचुरता का वर्णन उपलब्ध होता है। भोजपुरी झूमर के गीतों में सोने की थाली में भोजन परोसने का उल्लेख अनेक बार हुआ है। कोई स्त्री परदेस गये हुये पति को लक्षित करती हुई कहती है कि :—

"सोने के थाली में जेवनाँ परोसलों,
जेवना ना जेवें अलबेला,
बलमु कलकत्ता निकल गयो जी ।।"

बाल साफ करने की कंघी भी सोने की बनी हुई बतलाई गई है। चन्दन की लकड़ी के बने हुये पलंग का वर्णन पाया जाता है जो रेशम से बुना गया है। बच्चों को झुलाने के लिये जो पालना है वह चाँदी का बना हुआ है जिसमें रेशम की डोर लगी हुई है। खाने के लिये बासमती चावल, मूँग की दाल, पूड़ी, पुआ आदि विभिन्न प्रकार के पकवानों का वर्णन है। एक गीत में तो बारात के खाने के लिये बनायी गई सैकड़ों मिठाइयों की लम्बी लिस्ट दी गई है जो सचमुच ही बड़ी आकर्षक और लुभावनी भोजपुरी का एक मुहावरा है—दूध से पैर धोना और घी से स्नान करना। इससे ज्ञात होता है कि देश में दूध और घी की प्रचुरता थी तथा लोग इसका अधिक परिमाण में प्रयोग करते थे।

लोक-गीतों की स्त्रियाँ धानी रंग की चूनरी (अनेक रंगों से रंजित साड़ी) पहिनती थी जिसमें इत्र लगा रहता था। अतः उससे सुगन्ध का फौवारा सदा छूटता रहता था। रेशम की साड़ी का प्रयोग पहिनने के लिये किया जाता था। आभूषण सोने और चाँदी दोनों के बने होते थे। गहनों की जो लम्बी सूची गीतों में मिलती है उससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज बड़ा समृद्ध था। जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी थी और सभी लोग धनधान्य से पूर्ण थे।[1]

गीतों के अध्ययन से यह पता चलता है कि भोजपुरी प्रदेश के लोग व्यापार करने के लिये पूर्व देश (बंगाल या वर्मा) को जाया करते थे और बारह वर्ष के सुदीर्घ काल के पश्चात् लौटकर आते थे। कोई स्त्री कहती है कि मेरा पति वाणिज्य करने के लिये पूर्व देश को जा रहा है। अब मेरे उजड़े हुये घर को कौन छावेगा ?[2]

---

१. त्रिपाठी—क० कौ० भाग ५ (ग्रामगीत)
२. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १

"पियवा जे चलेले उत्तर बनिजरिया, कि केइ रे छइहें ना;
मोरा उजड़ल बँगलवा, कि केइ रे छइहें ना ॥"

अधिक तो क्या, भगवान् शिव भी 'पूरुबी बनिजिया' के लिये निकल पड़ते हैं।

गीतों में आर्थिक भूगोल भी पाया जाता है। शौकीन लोग खाने के लिये मगह का पान ही प्रयोग में लाते है। आज भी 'मगहिया' पान अपने स्वाद और सुन्दरता मे प्रसिद्ध हैं। बहू के पहिनने के लिये बनारस से साड़ी मंगवाई जाती है जिसमे जरी का काम किया गया होता है। विवाह में वर को परीछने के लिये मिर्जापुर मे बने हुये लोढ़े का प्रयोग किया जाता है। कहने की आवश्यकता नही कि मिर्जापुर मे आज भी पत्थर के सिल और लोढ़े बड़े मजबूत और सुन्दर बनते है। विवाह मे बरातियों के चढ़ने के लिये हाथी गोरखपुर से आता है और पटने से उसकी झूल आती है। यह संभव है कि पहिले पटने में हाथियों के झूल बनाने का व्यवसाय होता हो। एक गीत में बुटवल की नारंगी का उल्लेख पाया जाता है जो अपनी प्रसिद्धि आज भी बनाये हुये है।

३—समाज का चित्रण

लोक साहित्य में जन-जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र नही। सच तो यह है कि यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना अभीष्ट हो तो उसके लोक साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। लोक कवि मानव-समाज को जिस रूप मे देखता है वह उसका उसी रूप मे वर्णन करता है। अतः उसका वर्णन सत्य से दूर नहीं होता। इतिहास की बड़ी बड़ी पोथियों मे लड़ाई, झगड़ों और संघर्षों का विस्तृत विवरण भले ही मिल जाय परन्तु समाज के याथातथ्य चित्रण के लिए लोक साहित्य का अनुसंधान वांछनीय ही नही अनिवार्य भी है। इन लोक गीतों, गाथाओं और कथाओं मे मनुष्यों के रहन-सहन आचार-विचार, खान-पान और रीति-रिवाज का सच्चा चित्र देखने को मिलता है। मध्य प्रदेश में आदिम जातियाँ निवास करती है। उनके एक करमा गीत का भाव यह है कि "यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो।"[1]

लोक साहित्य में समाज का जो चित्रण किया गया है वह उच्च, शिष्ट और सभ्य है। पति-पत्नी, भाई-बहिन, माता-पुत्री, पिता-पुत्र, ननद-भावज और सास-बहू का जो वर्णन हमारे सामने उपलब्ध होता है उससे समाज का सारा चित्र हमारे हृदय-पटल पर अंकित हो जाता है। भाई और बहिन के जिस शुद्ध एवं पवित्र प्रेम का

१. डा० एलविन—फोक साङ्ग्स आफ मैकल हिल्स, भूमिका, पृ० १६

वर्णन भोजपुरी लोक-गीतों में उपलब्ध होता है उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ ? यह निष्कपट प्रेम सचमुच ही अनुकरणीय है। कोई दुष्ट पति जब अकारण अपनी सती स्त्री का परित्याग कर देता है तब अपनी दुःखी बहिन को उसका भाई अपने घर ले जाता है तथा उसे आदर के साथ रखता है। लोक-गीतों में पुत्री की बिदाई के अवसर पर माता का प्रेम-पारावार हिलोरें मारता हुआ दिखाई देता है। कहीं माता रो रही हैं तो कहीं भाई चिल्ला रहा है। पिता के आँसुओं की धारा से गंगा में बाढ़ सी आ जाती है। इस प्रकार माता-पिता तथा भाई की गहरी ममता पुत्री के प्रति इन गीतों में दिखाई पड़ती है।

जब पुत्री बड़ी होने लगती है तब उसके पिता को उसके विवाह की चिन्ता सताने लगती है और उसे रात-दिन कभी चैन नहीं पड़ता। वह पुत्री के लिए उपयुक्त वर खोजने के लिए उड़ीसा और जगन्नाथ धाम तक की यात्रा करता है। विवाह की चिन्ता से न तो उसे दिन में चैन पड़ता है न रात मे नींद लगती है। संस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही लिखा है कि :—

"पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः ।
दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति,
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम् ॥"

लोक-गीतों में वर्णित पिता की दशा भी बहुत कुछ ऐसी ही होती है।

इन गीतों में जहाँ प्रेम और वात्सल्य दिखलाया गया है वहाँ विरोध और संघर्ष का चित्रण भी हुआ है। ननद और भावज का शाश्वतिक विरोध इन गीतों में पाया जाता है। ननद अपने भाई से भावज की सदा निन्दा करती हुई दिखाई पड़ती है। एक गीत में शान्ता राम से सीता की शिकायत करती हुई कहती है कि यह रावण का चित्र उरेह रही थी। इसके फलस्वरूप राम के द्वारा सीता का परित्याग कर दिया जाता है।

सास और बहू का संबन्ध भी इन गीतों में कुछ सुन्दर नहीं है। दुष्टा सास अपनी बहू को अनेक प्रकार का कष्ट देती है। वह दिनभर उससे काम करवाती है परन्तु खाने के लिए भर पेट भोजन तक नहीं देती। यही कारण है कि गीतों में उसे 'दरूनिया'—दारुण—कहकर सम्बोधित किया गया है। सौतिया डाह का बड़ा ही सजीव चित्रण इन गीतों में पाया जाता है। इसके साथ ही बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह का वर्णन भी उपलब्ध होता है।

समाज-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए बहुत सी उपयोगी सामग्री लोक-साहित्य में

पाई जा सकती है। बहुत से स्थानीय रीति-रिवाज और प्रथाओं का उल्लेख इन गीतों में हुआ है। भोजपुरी समाज में पुत्र जन्म के अवसर पर थाली बजाने की प्रथा है। यह प्रथा बड़ी वैज्ञानिक है। परन्तु विज्ञान के इस युग में इस प्रथा को लोग भूलते चले जा रहे हैं। विवाह के अवसर पर परीछन, द्वारपूजा, गुरहथी, लावा मेराई, भाँवर, सुमंगली और कोहबर आदि अनेक प्रथाओं का उल्लेख मिलता है। प्राचीनकालीन वैदिक विवाह पद्धति को समझने से लिए इन प्रथाओं का जानना आवश्यक है।

इस विशाल देश में बहुत सी जंगली, पार्वत्य और आदिम जातियाँ निवास करती हैं। इन सभी जातियों की सामाजिक प्रथायें भिन्न-भिन्न हैं। इन प्रथाओं का उल्लेख उनके लोक-साहित्य में पाया जाता है। अतः मानव-शास्त्रवेत्ता के लिए यह मौखिक-साहित्य अत्यन्त उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण है।

४—धार्मिक महत्त्व

किसी जाति के धार्मिक जीवन का पता भी लोक-साहित्य से लगता है। लोक-गीतों में गंगा माता, तुलसी माता, शीतला माता तथा षष्ठी माता का गायन हुआ है। गंगा जी में स्नान करने से तन तथा मन के पापों के धुलने की बात कही गई है। भजनों में संसार की अनित्यता, मानव-जीवन की क्षण-भंगुरता तथा वैभव की निःसारता का उल्लेख अनेक बार हुआ है। ग्रामीण जन किन-किन देवताओं की पूजा करते हैं, उनकी प्रसन्नता के लिए कौन-कौन से उपाय करते हैं तथा पूजा में जो जो विधि-विधान सम्पादित किये जाते हैं उन सब का वर्णन यहाँ पाया जाता है।

बहुरा, पिड़िया, भइया दूज, जीउतिया (जीवितपुत्रिका) आदि व्रत संबंधी कथाओं में धर्म के अनेक गूढ़ रहस्य छिपे पड़े हैं। समाज में मनु के वचनों या आदेशों का प्रभाव भले ही न पड़े परन्तु इन कथाओं का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। अतः धर्म और नीति की शिक्षा देने के लिए लोककथाओं का बड़ा महत्त्व है।

लोक-गीतों के अध्ययन करने से पता चलता है कि हिन्दू समाज में शिव पूजा की प्रधानता थी। लोग शिवमन्दिरों में पूजा के लिए जाया करते थे। साथ ही सूर्य की पूजा का भी कुछ कम प्रचार नहीं था। षष्ठी माता का व्रत वास्तव में सूर्य का ही व्रत है। यह व्रत पुत्र-प्राप्ति के लिए किया जाता है। इस दिन भगवान् सूर्य के उदय होने पर स्त्रियाँ अर्घ्य देती हैं और पक्वान्न तथा फल उन्हें समर्पित करती हैं।

गंगा और तुलसी का महत्त्व हमारे धार्मिक जीवन में अत्यधिक है। इसकी पुष्टि लोक-गीतों के वर्णन से होती है। शीतला माता चेचक की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती हैं। अतः इनका आवाहन इस रोग से पीड़ित बालक को नीरोग करने के लिए किया जाता है।

धार्मिक जीवन की झाँकी के अतिरिक्त हिन्दू पुराणशास्त्र (माइथोलाजी) के अनेक ज्ञातव्य विषयों पर इन गीतों से प्रचुर प्रकाश पड़ता है। यहाँ केवल एक ही उल्लेख पर्याप्त होगा। भोजपुरी गीतों में तुलसी के सपत्नी होने का उल्लेख अनेक बार हुआ है। परन्तु किसी पुराण में सम्भवतः इसकी चर्चा नहीं पाई जाती। अतः पुराण-शास्त्र (माइथोलोजी) के लिए यह मौलिक कल्पना है। अतः तुलनात्मक पुराणशास्त्र के विद्यार्थी के लिए लोक-साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है।

(५) नैतिक महत्त्व

लोक साहित्य में जिस नैतिक अवस्था का वर्णन मिलता है वह लोकोत्तर और दिव्य है। जन-साहित्य के विविध अवयवों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय समाज का नैतिक स्तर बहुत ही ऊँचा था। तत्कालीन लोगों का चरित्र सदाचार और सन्निष्ठा का निकषग्रावा था। सतीत्व का जो आदर्श इस साहित्य में उपलब्ध होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारत में सती-धर्म का पालन बड़ी कठोरता के साथ किया गया है। अनेक ललनाओं ने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने कोमल कलेवर को हँसते हुए अग्निदेव को समर्पित कर दिया है। राजपूताने में प्रचलित पद्मिनी के 'जौहर' की अमर कहानी से कौन परिचित नही है? परन्तु लोक-साहित्य में अनेक पद्मिनियाँ अपने सतीत्व की रक्षा अथवा अपने को पवित्र प्रमाणित करने के लिए अग्नि में प्रवेश करती हुई दिखाई पड़ती हैं। अनेक वरुणदेव की शरण लेती हैं। सती शिरोमणि कुसुमा देवी ने किस प्रकार तालाब मे डूबकर दुष्ट मुगलों के हाँथों से अपने सतीत्व की रक्षा की इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इसी प्रकार साध्वी चन्दा देवी अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए खौलते हुए तेल की कड़ाही मे कूद पड़ती है।[1]

सतीत्व की कसौटी पर स्त्रियाँ खरी उतरती दिखाई पड़ती हैं। कोई पुरुष परदेश से लौट रहा है। रास्ते में अपनी धर्मपत्नी से उसकी भेंट होती है। वह उसके सतीत्व की परीक्षा के लिए उसे लालच दिखलाता है और हार, मोती तथा 'डाल' भर सोना देकर उससे विवाह का प्रस्ताव करता है। स्त्री अपने पति को अधिक दिनो पर घर लौटने के कारण पहिचानती नहीं। वह उसके इस दुष्ट प्रस्ताव का उत्तर देती हुई कहती है कि मैं तुम्हारे धन (सोना, हार आदि) में आग लगा दूँगी और मेरा पति जब परदेस से लौट कर आयेगा तब तुम्हें कठोर दण्ड दिलाऊँगी। एक भोजपुरी गीत में कोई देवर अपनी भावज से मज़ाक करता हुआ उससे विवाह का अनुचित प्रस्ताव करता है। इस पर सती भावज क्रोधित होकर उत्तर देती है कि यदि मेरा

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भाग २

पति परदेस से लौट आया तब मैं तुम्हारी इन लम्बी भुजाओं को इस दुष्टता के कारण कटवा डालूंगी।[1]

भोजपुरी लोक-गीतों में दिव्य की प्रथा का उल्लेख अनेक स्थानों में हुआ है। स्त्रियाँ अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए, अपने को पूत एवं पवित्र सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार के दिव्य को ग्रहण करती हैं। कोई आग में प्रवेश करती है तो कोई जल-समाधि लेती है। इसी प्रकार वे अनेक कष्टों को सहन कर अपने को निर्दोष प्रमाणित करती हैं।

भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है जिसमें कोई स्त्री पर-पुरुष को लक्षित कर कहती है कि तुम्हारे आगे भी कूबड़ है और पीछे भी कूबड़ है। क्या तुम मेरे पति से अधिक सुन्दर हो ?

"आगे कुब्बर, पीछे कुब्बर।
हमारा भतार से बड़ा सुन्नर॥"

इससे पता चलता है कि लोक-गीतों में वर्णित ये स्त्रियाँ कितनी पति-परायणा हैं।

अँग्रेजी में एक कहावत प्रचलित है कि सीजर की पत्नी सन्देह से मेरे परे है।[2] लोक साहित्य में जिन नारियों का चित्रण हुआ है उनके विषय में भी यही बात कही जा सकती है कि वे सन्देह से परे हैं और उनका चरित्र लोकोत्तर है।

६—भाषाशास्त्र-सम्बन्धी महत्त्व

भाषाविज्ञान की दृष्टि से लोक-साहित्य का महत्त्व सर्वाधिक है। लोक-साहित्य भाषाशास्त्री के लिए अमूल्य निधि है, अक्षय भाण्डार है। सुप्रसिद्ध भाषातत्त्ववेत्ता, नेशनल प्रोफेसर डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इन पंक्तियों के लेखक से बातचीत के दौरान में एक बार कहा था कि जो लोग लोक-साहित्य का संग्रह कर रहे है वे भावी भाषा-शास्त्रियों के लिए अमूल्य सामग्री उपस्थित कर रहे हैं। लोक गीतों, गाथाओं और कथाओं में व्यवहृत शब्दों की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषाशास्त्र-सम्बन्धी अनेक गुत्थियाँ सुलझायी जा सकती हैं। इनमें प्रचलित शब्दों द्वारा हिन्दी के अनेक शब्दों की विकास-परम्परा को हम वैदिक संस्कृत से जोड़ सकते हैं। बहुत से ऐसे शब्द वेद में पाये जाते हैं जो संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी में नहीं है परन्तु उनका समानार्थी शब्द भोजपुरी में उपलब्ध होता है। एक उदाहरण लीजिए :—

गाय के सद्योजात—तत्काल पैदा हुए—शिशु को वेद में 'धरुण' कहते हैं।

---

१ डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १
2 Deazer's wife above suspicion.

भोजपुरी में यह 'लेरुआ' के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु खड़ी बोली हिन्दी में इस अर्थ का द्योतक कोई शब्द प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार वेद में गर्भ-घातिनी गाय को 'वेहद' और बाँझ' (वन्ध्या) गाय को 'वशा' कहते हैं। भोजपुरी में इसके लिए क्रम से 'लड़ाइल' और 'बहिला' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। भोजपुरी का 'बहिला' शब्द वैदिक 'वशा' शब्द से विकसित हुआ है। हिन्दी में इन दोनों भावों को प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं है। यदि 'धरुए' और 'वशा' शब्दों की निरुक्ति के विकास की परम्परा लिखनी हो, यदि इन शब्दों की जीवनी का पता लगाना हो तो भोजपुरी लोक-साहित्य में प्रयुक्त इन शब्दों से परिचित हुए बिना हमारी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। यह एक विशेष बात है कि अनेक वैदिक शब्दों के अपभ्रंश रूपों की सत्ता भोजपुरी में विद्यमान है परन्तु संस्कृत और हिन्दी में उनका सर्वथा अभाव है।

अनेक शब्दों की ऐतिहासिक परम्परा को जानने के लिए लोक-साहित्य का अध्ययन अत्यन्त उपादेय है। उदाहरण के लिए 'जुगवत' शब्द को ही लीजिए। लोक गीतों में इसका प्रयोग बड़ी सावधानी के साथ किसी वस्तु की रक्षा करने के अर्थ में हुआ है।[1] इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत 'गुप रक्षणे' धातु से हुई है जिसका भूतकालिक रूप 'जुगोप' बनता है। इसी 'जुगोप' से 'जुगवत' शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञात होती है। एक दूसरा शब्द लीजिए। लोक गीतों में सौभाग्यवती स्त्री के लिए 'सुहवा' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। भाषा-शास्त्र के विद्वानों से यह बात छिपी नहीं है कि यह शब्द संस्कृत के 'सुभगा' का तद्भव रूप है।

लोक-साहित्य के अध्ययन से हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि होगी। उसका भाषा-भाण्डार समृद्ध होगा। नये-नये शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों के ग्रहण से हमारी भाषा की भाव-प्रकाशिका शक्ति बढ़ेगी। ग्रामीण घरों में, प्रतिदिन अनेक नूतन शब्द व्यवहार में आते हैं। इसी प्रकार विभिन्न व्यवसाय करने वाली जातियाँ—लोहार, सोनार, कुम्हार आदि—अनेक पारिभाषिक पदावली का व्यवहार करती हैं। डा० ग्रियर्सन ने इन शब्दों का संग्रह 'बिहार पीजेन्ट लाइफ' नामक अपने ग्रन्थ में किया है।

लोक-साहित्य के कोष में कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके भावों के समुचित प्रकाशन के लिए हमारी खड़ी बोली असमर्थ है। भोजपुरी में 'बिराना' एक क्रिया है जिसका अर्थ हिन्दी में मुँह चिढ़ाना है। 'परन्तु 'बिराना' का भाव मुँह चिढ़ाने से कुछ भिन्न

---

१ गोस्वामी तुलसीदास ने निम्न चौपाई में इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है।

'अमिय मूरि जिमि जुगवत रहऊँ।
दीप-बाति ना टारन कहऊँ॥'

है। इसी प्रकार 'डाइना' शब्द है जिसके लिए हिन्दी में जलाना या दुःख देना का प्रयोग किया जाता है। परन्तु 'डाहना' का भाव इन दोनों शब्दों से कहीं अधिक व्यापक और गंभीर है। जलाने में केवल शुष्कता है परन्तु 'डाहना' शब्द में क्रोध, प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उलाहने का भाव भी सम्मिलित है। एक दूसरा शब्द 'बराना' है जिसके दो अर्थ हैं—बचकर चलना और चुनना। जैसे 'राह बरा कर चलो।' परन्तु 'राह बराने' का भाव बचकर चलने से कहीं अधिक व्यापक है। 'निहुरना' का अर्थ झुकना है। झुकने का प्रयोग किसी भी वस्तु के लिए किया जा सकता है परन्तु 'निहुरना' का प्रयोग विशेष कर मनुष्यों की कमर झुकने के लिए प्रयुक्त होता है।

लोक-साहित्य में हजारों कहावतें और मुहावरे भरे पड़े हैं। इनमें भावाभिव्यंजन की बड़ी शक्ति होती है। वाक्यों में इनका प्रयोग करने से शैली सुगठित एवं चुस्त बन जाती है। कुछ मुहावरों में भावों की बड़ी सघनता एवं तीव्रता होती है। उदाहरण के लिए 'आग में मूतना' को लीजिए। अधिक अन्धेर या अत्याचार करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। दूसरा मुहावरा 'खराई मारना' है जिसका अर्थ प्रातःकाल अधिक देर तक जलपान या भोजन न करने से शरीर में विकार उत्पन्न होना है। इन दोनों भावों को व्यक्त करने के लिए खड़ी बोली में मुहावरों का अभाव है।

ग्रामीण लोकोक्तियों में प्रचुर भाव भरे पड़े है। उनमें अर्थ-प्रकाशन की विचित्र शक्ति है। एक भोजपुरी कहावत है—'बेटी चमारे के नाम रजरनिया' अर्थात् वह चमार की लड़की है परन्तु उसका नाम राजरानी है। इसका प्रयोग उस समय किया जाता है जब किसी असुन्दर वस्तु को सुन्दर नाम प्रदान किया गया हो। एक दूसरी लोकोक्ति है 'अगिया लगाइ छउड़ी बर तर ठाढ़' अथात् दो आदमियों में झगड़ा लगा कर स्वयं तटस्थ हो जाना।[1] यह लोकोक्ति भवभूति की निम्नांकित उक्ति से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है :—

"तटस्थः स्वान् अर्थान्
घटयति च मौनं च भजते।"

लोक-गीतों, गाथाओं और कथाओं में जो विशाल शब्द-सम्पत्ति छिपी पड़ी है वह भाषा-शास्त्रियों के लिये अमूल्य निधि है। वह एक ऐसा अक्षय्य स्रोत है जिसका प्रवाह कभी सूख नहीं सकता। डा० ग्रियर्सन ने भोजपुरी लोक-गीतों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि ये लोक-गीत उस खान के समान

---

1. विशेष के लिए देखिए—
डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १

है जिसके खोदने का कार्य अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है। इन गीतों का प्रत्यक पंक्ति में ऐसी विशेषता है जिससे भाषा-शास्त्र संबंधी अनेक समस्यायें हल की जा सकती हैं।[1]

लोक-साहित्य की महत्ता पर विद्वानों का मत

सुप्रसिद्ध मानवशास्त्रवेत्ता डा० वैरियर एलविन ने लोक-गीतों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि[2] "लोकगीत केवल अपने संगीत, स्वरूप और वर्ण्य विषयों के कारण ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं प्रत्युत इनकी महत्ता इससे भी अधिक है। इन गीतों में, इन व्यवस्थित लेख-पत्रों (documents) में हमें मानव-विज्ञान-शास्त्र संबंधी तथ्यों की प्रमाणभूत सामग्री उपलब्ध होती है। × × × मानव-विज्ञान-शास्त्री को अपने सिद्धान्तों की सत्यता प्रमाणित करने के लिए लोक-गीतों की अपेक्षा कोई दूसरा सच्चा साक्षी उपलब्ध नहीं हो सकता है। करमा नामक एक गीत का भाव वह है कि यदि तुम मेरे जीवन की कथा जानना चाहते हो तो मेरे गीत को सुनो।[3]

एन्ड्रफ्लेचर ने लिखा है कि यदि किसी मनुष्य को समस्त लोक-गीतों की रचना की आज्ञा मिल जाय तो उसे इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं कि उस देश के कानून को कौन बनाता है।[4] भाव यह है कि लोक-गीतों तथा गाथाओं में कानून से भी अधिक शक्ति और प्रभाव है।

एभेलिन मार्टिनेङ्गों का मत है कि लोककथायें कहानियों की जनक है और

---

1. The Bhojpuri folk songs are a mine almost entirely unworked and there is hardly a line in one of them which, if published now, will not give valuable ore, in the shape of an explanation of some philological difficulty.

ज० रा० ए० सो० बँ० भाग LII पार्ट १ (सन् १८८३) पृ० ३२

2. The folksongs are important not only because the music, form and the content of verse is itself part of a people's life but even more because in songs, in charms, in actually fixed and established documents we have the most authentic and unshakable witnesses to ethnographic fact. ... ... In making up his (ethnologist's) mind he can have no better evidence than songs.

डा० एलविन : फोक साङ्ग्स अॅव् मैकल हिल्स (इन्ट्रोडक्शन)

3. "If you want to know the story of my life.
Then listen to my (Karama) songs."

वही—(इन्ट्रोडक्शन)

4. "If a man is permitted to make all the ballads, he need not care who should make the laws of nation"
Andrew Flacher

लोक-गीत समस्त कविताओं की जननी हैं।[1] इसी लेखिका ने आगे चल कर लोक साहित्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि "लोक-काव्य व्यक्तिगत या सामूहिक तीव्र भावों के प्रकाशन हैं। लोक कविता और कथाओं का स्रोत राष्ट्रीय जीवन के अन्तरतम से निःसृत होता है। जनता का हृदय इन गीतों और गाथाओं में ओत-प्रोत रहता है। ऐसा भी समय आता है जब कि जाति या राष्ट्रीयता की अतिशय भावना ने सम्पूर्ण राष्ट्र को लोक-कवि के रूप में परिणत कर दिया है।[2]

सुप्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे की सम्मति में राष्ट्रीय गीतों और गाथाओं का विशेष महत्त्व यह है कि प्रकृति से इनको प्रेरणा प्राप्त होती है। इनमें किसी प्रकार से मिश्रण नहीं होता। वे एक निश्चित स्रोत से प्रवाहित होते है।[3]

जे० एफ० कैम्पबेल ने लोक-कथाओं की विशेषताओं को प्रतिपादित करते हुए अपना यह मत व्यक्त किया है कि "लोक-कथायें उन लोगों के वास्तविक दैनिक जीवन का सटीक चित्रण करती हैं जो उन कथाओं को सचाई के साथ कहते हैं। अनन्त काल से वे ऐसा करती आ रही है। वर्तमान युग के विषय में यह बात भले ही सच्ची न हो परन्तु अतीत के संबंध में तो बिल्कुल ठीक है। भूत की विस्मृत जीवन-यात्रा के विषय में इनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता है"[4]

उपर्युक्त विवरण एवं उद्धरणों से लोक-साहित्य के विविध अंगों के महत्त्व का पता चलता है। किसी देश के राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य का महत्त्व का बहुत अधिक है। लोक-साहित्य से राष्ट्रीय जीवन को गति और प्रगति प्राप्त होती है। यह राष्ट्रीय जीवन का बल और सम्बल है।

---

1. The Folk-tale is the father of all fiction and the folk song is the mother of all poetry,

दि स्टडी अंव् फोक साङ्ग्स, पृ० २

2. popular poetry is the reflection of moments of strong collective or individual emotion. The springs of legend and poetry issue from the deepest wells of national life ; the very heart of a people is laid bare in its sagas and songs, There have been times when a profound feeling of race or patriotism has sufficed to turn a whole nation into poets.

Countess Evelyn Martinengo – Essays in the study of folk songs page—*3*

3. "The special value" wrote Goethe "of what we call national songs and ballads is that their inspiration comes fresh from Nature ; they are never got up. they flow from a sure spring."

'दी स्टडी आफ फोक साङ्ग्स' में गेटे का उद्धृत वचन।

4. "The tales represent the actual every day life of those who tell them with great fidelity. They have done the same, in all likelihood. time out of mind. and that which is not true of the present is in all probability. true of the past, and therefore something must be learned of forgotten ways of life." I. F. Campbell—Highland Tales.

अध्याय १८

उपसंहार

गत पृष्ठों में लोक-साहित्य के विभिन्न अंगों की विशेषताओं को संक्षिप्त रूप में वर्णन करने का प्रयास किया गया है। लोक-साहित्य की महत्ता का ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दृष्टियों से प्रतिपादन विगत अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है। भाषा-शास्त्र के अनुसन्धानकर्ताओं के लिए लोक-साहित्य में उपलब्ध शब्दावली किस प्रकार इसे वैदिक संस्कृत से जोड़ने वाली कड़ी का काम करती है यह भी दिखलाया गया है।

लोक-साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है जिसमें जनता-जनार्दन का अखिल तथा विराट् स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है। लोक संस्कृति का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ ? लोक-साहित्य की निर्मल निर्झरिणी में अवगाहन कर केवल शरीर ही पवित्र नहीं होता प्रत्युत आत्मा भी पूत और पावन बन जाती है। इसमें जिस समाज का चित्रण किया है वह स्वस्थ, सदाचारी एवं धर्मभीरु है; जिस नीति की प्रतिष्ठा की गई है वह कल्याण मार्ग की ओर ले जाने वाली है, वह मंगलमय पथ की प्रदर्शिका हैं; जिस धर्म का वर्णन किया गया है वह संसार में शान्ति तथा प्रेम का उपदेश देता है; जिस आर्थिक संघटन का उल्लेख हुआ है वह पीड़ित तथा दलित मानवता के शोषण के ऊपर अवलम्बित नहीं है; जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया है वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है। धर्म, समाज और नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चाँद लगा देता है।

लोक-साहित्य में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का बड़ा ही सुन्दर सामञ्जस्य उपलब्ध होता है। लोकगीतों में जहाँ भाई-बहन, माता-पुत्री और पति-पत्नी के आदर्श चरित्र का चित्रण किया गया है वहाँ लोक-कवि यथार्थवाद के वर्णन की ओर भी जागरूक दिखाई पड़ता है। ननद-भावज, सास-बहू और सपत्नियों के शाश्वतिक विरोध के सम्यक् विवेचन करने में उसने कुछ उठा नहीं रखा है। लोक-गीतों में सुखी समाज के धन, धान्य, ऐश्वर्य और विभूति के वर्णन के साथ ही साथ, कठिन गरीबी, अकाल तथा घोर दरिद्रता का दृश्य भी दिखाई पड़ता है। जो काव्य मानव जीवन के केवल एक ही पहलू का वर्णन उपस्थित करता है वह सच्चा काव्य नहीं

कहा जा सकता। जिस काव्य में जन-जीवन की आशा निराशा, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि सभी भावनाओं का सजीव चित्रण हो वही सच्चा, अमर और लोक-प्रतिनिधि काव्य है। इस दृष्टि से लोक-साहित्य अमर साहित्य की कोटि में रखा जा सकता है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोक-गीतों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि "ग्राम-गीतों का महत्त्व उनके काव्य-सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है। इनका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है—एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूब गई है या गलत समझ ली गयी है। × × × × × × ग्राम गीत इस (आर्यों के आगमन के पूर्व की) सभ्यता के वेद—श्रुति—हैं। वेद भी तो अपने आरंभिक युग में 'श्रुति' कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान् जाति के गीत थे और ग्राम-गीतों की भाँति सुन सुन कर याद किये जाते थे। सौभाग्य वश वेद ने बाद में श्रुति से उतरकर लिपि का रूप धारण कर लिया पर हमारे ग्राम-गीत अब भी 'श्रुति' ही हैं। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है उसी प्रकार ग्राम-गीतों द्वारा आर्य-पूर्व सभ्यता का ज्ञान होता है। ईंट-पत्थर के प्रेमी विद्वान् यदि धृष्टता न समझें तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्राम-गीतों का महत्त्व मोहेन्जोदाड़ो से भी कहीं अधिक है। मोहेन्जोदाड़ो सरीखे भग्न स्तूप ग्राम-गीतों के भाष्य का काम दे सकते है[1]।"

आचार्य द्विवेदी जी ने लोक-गीतों के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचार प्रकट किये हैं इनसे इनकी महत्ता पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। सुप्रसिद्ध विद्वान् राल्फ विलियन्स ने इनके महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए ठीक ही लिखा है कि "लोक-गीत न पुराना होता है और न नया। वह तो उस जंगली पेड़ की तरह होता है जिसकी जड़ें अतीत की गहराइयों में घुसी होती हैं परन्तु जिनमें नित नयी शाखाएँ, नयी पत्तियाँ और नये फल निकलते रहते है।"

लोक-गीत धरती के गीत हैं, ये जीवन के गीत हैं, ये विजय के गीत हैं, ये मंगल के गीत हैं और ये हमारी आशा के गीत हैं। जनता के द्वारा रचे गये, जनता के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले ये गीत, जनता की ही सम्पत्ति हैं। इसी कारण सुप्रसिद्ध विद्वान् ग्रिम ने लोक-गीतों की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'जनता का, जनता के लिए रचा गया, जन काव्य' कहा है।[2]"

---

१. छत्तीसगढ़ी लोक-गीतों का परिचय

2. "A ballad is the poetry of the people by the people for the people."

गूमर द्वारा उद्धृत

लोक गीतों की स्वाभाविकता, अकृत्रिमता और सरलता के सम्बन्ध में फ्रान्सिस गूमर का कथन कितना समीचीन है कि "लोकगाथाओं का महत्त्व केवल इसी बात में नहीं है कि उनमें अकृत्रिम काव्य-भावना उपलब्ध होती है। वे परम्परा की भाषा में ही अपनी अभिव्यक्ति नहीं करते प्रत्युत जन समूह की वाणी द्वारा प्रकाशन करते हैं। उनमें किसी प्रकार भी गोपनीयता नहीं पायी जाती। जो वस्तु जैसी है उसका याथातथ्य रूप में वे वर्णन करते हैं। वे स्वतन्त्र हैं तथा खुली हवा की भाँति ताजे हैं। वायु और सूर्य का प्रकाश उनमें खेल करता है।[1]"

भारतीय लोक-कथाओं का महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। डा० डी० सी० सेन ने अपनी पुस्तक में यह दिखलाने का प्रयास किया है कि बंगाल की बहुत सी लोक-कथाएँ 'इसाप्स फेबुल्स' में वर्णित कहानियों से समानता रखती हैं।[2] लोक-कथाओं की परम्परा बड़ी प्राचीन है जिसका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। भारतीय लोक-कथाएँ, बृहत्कथा, कथा-सरित्सागर तथा जातक कथाओं की उत्तराधिकारिणी हैं। विद्वानों ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि भारत ही संसार के कथा-साहित्य का स्रोत है। भारतीय कथाएँ संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न रूप में पायी जाती हैं। यदि अनुसन्धान किया जाय तो पता लगाया जा सकता है कि भारतीय लोक-कथाओं का प्रसार कहाँ और कैसे हुआ? वे किस देश में किस रूप में आज प्रचलित हैं? इस विषय का अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक सिद्ध होगा। कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए लोक-कथाओं का अनुसन्धान महत्त्वपूर्ण है। लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों में समाज का चित्रण उपलब्ध होता है। मृत्यु-गीतों के अध्ययन से विभिन्न प्रथाओं से परिचय प्राप्त होता है। पालने के गीत तथा बालकों के खेल सम्बन्धी गीतों में बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों की शृङ्खला की कड़ियाँ छिपी हैं। किम्बहुना, गालियों में भी अनेक रीति-रिवाजों और प्रथाओं की ओर संकेत हुआ है। लोक-साहित्य के इन सभी अंगों तथा उपांगों का अध्ययन और मनन समीचीन ही नहीं उपादेय भी है।

---

1. The abiding value of the ballads is that they give a hint of primitive and unspoiled poetic sensation. They speak not only in the language of tradition, but also with the voice of the multitude. There is nothing subtle in their working and they appeal to things as they are. From one vice of modern literature they are free. X X X They can tell a good tale. They are fresh with the open air. Wind and sunshine play through them."

F. B. Gummere : The Popular Ballad पृ० ४१७

२. डा० डी० सी० सेन : फोक लिट्रेचर आफ बंगाल

लोक साहित्य जनता जनार्दन की सम्पत्ति है। यह भगवान् के विराट स्वरूप की ही भाँति विराट् और अनन्त है। संसार के सभी सभ्य देशों में लोक-साहित्य के संकलन, सम्पादन और प्रकाशन के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना की गई है। स्वतन्त्र भारत में लोक-साहित्य की समुन्नति और संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। अतः आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास है कि हमारे देश के नवयुवक इसके सम्यक् संकलन और और सम्पादन में जुट जायेंगे तथा काल के गाल में जाती हुई लोक-संस्कृति तथा लोक-साहित्य की रक्षा प्राणपण से करेंगे। लोक-साहित्य की रक्षा करना हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य ही नहीं प्रत्युत राष्ट्रीय धर्म भी है।

परिशिष्ट (क)

भारत में लोक-संस्कृति (फोकलोर) सम्बन्धी अनुसन्धान का विवेचन[1]

किसी देश की जनता के धार्मिक विश्वासों तथा सामाजिक प्रथाओं के अध्ययन के लिए लोक संस्कृति (फोकलोर) की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। यूरोप के प्राय: प्रत्येक देश में 'फोकलोर सोसाइटी' की स्थापना की गई है जिसका उद्देश्य उस देश के लोक-साहित्य तथा लोक-संस्कृति का संकलन, संरक्षण तथा प्रकाशन है। फिनलैण्ड जैसे छोटे से देश में भी इस दिशा में प्रचुर कार्य किया गया है। अमेरिका के प्राय: प्रत्येक राज्य (State) में इस प्रकार की समितियाँ स्थापित हैं जो वहाँ की लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयत्न कर रही हैं। इस सम्बन्ध में 'अमेरिकन फोकलोर सोसाइटी' का नाम उल्लेखनीय है जिसने लगभग ७०-८० वर्षों से लोक-साहित्यसेवियों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देने के अतिरिक्त फोकलोर सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री को प्रकाशित किया है। परन्तु भारतवर्ष में यह कार्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित अवश्य हुआ है लेकिन अखिल भारतीय संगठन के रूप में अभी तक किसी संस्था की स्थापना नहीं हुई है जो इस कार्य को सुचारु रूप से कर सके।

भारतवर्ष में लोक-संस्कृति (फोकलोर) सम्बन्धी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। इस महान् देश में अनेक सभ्यताओं तथा संस्कृतियों का संमिलन हुआ है। उदाहरण के लिए आर्य तथा द्रविड़ वंश (Race) के लोग इस देश में पाये जाते हैं। मातृप्रधान तथा पितृप्रधान कुल भी यहाँ दिखायी पड़ते हैं। जहाँ भारत के समस्त राज्यों में पितृप्रधान की सत्ता है वहाँ केरल राज्य के मालाबार नामक स्थान में आज भी मातृप्रधान वंश-परम्परा चली आ रही है। इस देश में एक पति की प्रथा सम्मानित तथा प्रतिष्ठित मानी जाती है परन्तु उत्तर प्रदेश के देहरादून जिले के जौनसार-भावर स्थान में बहु-पतित्व की प्रथा आज भी पायी

---

१. यह लेख अमेरिका की इंडियाना यूनिवर्सिटी, (ब्लूमिङ्गटन) की 'मिडवेस्ट फोकलोर' नामक सुप्रसिद्ध त्रैमासिक शोध पत्रिका के भाग ४ संख्या ४ (१९५४ ई०) में 'A General Survey of Folklore Research in India' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

जाती है। यही कारण है कि यहाँ जनता की संस्कृति के अनेक स्तर पाये जाते हैं तथा एक जाति या वंश की धार्मिक परम्परा, रीति-रिवाज, खान-पान, और आचार व्यवहार दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

भारत में अनेक पार्वत्य तथा जंगली जातियाँ भी निवास करती हैं जो सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था की सूचना देती हैं। उदाहरण के लिए आसाम राज्य में नागा, अबोर, मिशमी, खशिया और दफला आदि अनेक जातियाँ पाई जाती हैं जिनकी संस्कृति आर्य जातियों से सर्वथा पृथक् है। कुछ वर्ष पहले नागा लोग जंगलों में मनुष्यों का भी शिकार किया करते थे। कहने का आशय यह है कि उस देश में लोक संस्कृति की अनन्त सामग्री उपलब्ध होती है जिसका अध्ययन मानव-विज्ञान-वेत्ता के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

(१)

भारतवर्ष में लोक-संस्कृति के अध्ययन तथा अनुसन्धान का समस्त श्रेय उन अंग्रेज पदाधिकारियों को प्राप्त है जो इस देश में शासन करने के लिए सिविलियन के रूप में आये थे। ये अंग्रेज बड़े ही गुणग्राही तथा विद्वान् थे। इनका ध्यान यहाँ बिखरी हुई लोक-संस्कृति-सम्बन्धी सामग्री की ओर गया और इन्होंने तन, मन, धन से इनका संकलन तथा सम्पादन किया।

कर्नल टॉड संभवतः सबसे पहिला अंग्रेज सिविलियन था जिसको इस देश में फोकलोर सम्बन्धी अनुसन्धान तथा संग्रह करने का श्रेय प्राप्त है। यह राजस्थान के वीरतापूर्ण इतिहास से बहुत प्रभावित था। यह राजस्थान के अनेक राज्यों में 'रेजिडेण्ट' का कार्य करता रहा। अतः इसे यहाँ की लोक संस्कृति से परिचय प्राप्त करने का अधिक अवसर मिला था। इसने "एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज़ ऑव् राजस्थान" नामक अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में राजपूतों का इतिहास प्रस्तुत करने के अतिरिक्त वहाँ के लोगों के धार्मिक विश्वास, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा तथा खान-पान पर भी प्रचुर प्रकाश डाला है।

एल० पी० टेसीटोरी (Tessitory) इटालियन विद्वान् था जिसने राजस्थान की डिंगल भाषा तथा लोक-साहित्य का अध्ययन किया था। इसने 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' पत्रिका में अपने अनुसन्धानों के सम्बन्ध में अनेक लेख प्रकाशित किये। इसने राजस्थान के चारण गीतों तथा लोक-गीतों का संग्रह कर उन्हें काल-कवलित होने से बचाया।

गत शताब्दी के अन्तिम दशक में बहुत से विदेशी मिशनरी तथा सिविलियन

लोगों ने पंजाब के फोकलोर के संग्रह में दिलचस्पी दिखलायी। स्विनर्टन ने पंजाब की शृङ्गार तथा वीररस पूर्ण कहानियों का संग्रह "रोमेन्टिक टेल्स फ्राम दि पंजाब" में किया। पंजाब की 'राजा रसालू' की लोकप्रिय गाथा के विभिन्न पाठों का इन्होंने संग्रह भी किया। सर आर० सी० टेम्पुल—जो इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य थे—ने पंजाब की अर्द्ध-ऐतिहासिक कथाओं का संकलन किया। सी० एफ० ओसबर्न ने पंजाबी लोक गीतों तथा लोकक्तियों का संग्रह "पंजाबी लिरिक्स एण्ड प्रोवर्ब्स" में किया है। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एफ० ए० स्टील ने "दि टेल्स आफ दि पंजाब" प्रकाशित कर लोक-साहित्य के प्रेमियों का बड़ा उपकार किया। सर आरेल स्टाइन ने काश्मीर की लोक कहानियों का एक सुन्दर संग्रह प्रकाशित किया है जिसे इन्होंने वहाँ के लोगों से सुनकर लिपिबद्ध किया था। यह संग्रह "हातिम्स टेल्स" के नाम से अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है।

सर जार्ज ग्रियर्सन सुप्रसिद्ध भाषावेत्ता थे। इनकी अध्यक्षता में भारतीय भाषाओं का सर्वे केन्द्रीय सरकार के द्वारा कराया गया था जिससे इनकी गंभीर विद्वत्ता का परिचय मिलता है। संभवतः डा० ग्रियर्सन पहले अंग्रेज थे जिन्होंने हिन्दी लोकगीतों के महत्त्व को समझा। आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व हिन्दी लोक गीतों का संग्रह कर इंगलैंड की 'रायल एसियाटिक सोसाइटी' की पत्रिका और भारत की 'इंडियन एण्टिक्वेरी' में प्रकाशित किया। इन्होंने भोजपुरी तथा बिहारी लोक गीतों का संकलन अंग्रेजी अनुवाद और टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किया। इन्होंने गोपीचन्द की ऐतिहासिकता को सिद्ध किया और गोपीचन्द के गीत के विभिन्न पाठों को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया। इसी प्रकार से इन्होंने 'बुन्देलखण्ड' के सुप्रसिद्ध वीर आल्हा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में प्रचलित बहुत सी भ्रान्त धारणाओं का निराकरण किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने लेखों तथा व्याख्यानों द्वारा भारतीय फोकलोर का प्रचार किया। इन्होंने विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में इस सम्बन्ध में अनेक लेखों को लिखा है जिनकी सूची इस प्रकार है :—

(१) सम बिहारी फोक साङ्ग्स
(ज० रा० ए० सो० भाग १६, १८८४)

(२) सम भोजपुरी फोक साङ्ग्स
(ज० रा० ए० सो० भाग १८, १८८६)

(३) फोकलोर फ्राम इस्टर्न गोरखपुर
(ज० रा० ए० सो० आफ बंगाल भाग ५२, १८८३)

(४) टू वर्शन्स अॅव् दि स्टोरी आफ गोपीचन्द्र
(ज० रा० ए० सो० बं० भाग ५४, १८८५)
(५) दि साङ्ग अॅव् विजयमल
(ज० रा० ए० सो० बं० भाग ५३, १८८४)
(६) दि सांग अॅव् आल्हाज् मैरेज़
(इंडियन एण्टीक्वेरी भाग १४, १८८५)
(७) ए समरी अॅव् दि आल्हा खण्ड
(इंडियन एन्टीक्वेरी भाग १४, १८८५)
(८) सेलेक्टेड् स्पेसीमेन्स अॅव् दि बिहारी लेंगवेज भाग २—
दि भोजपुरी डाइलेक्ट-दि गीत नैकवा बनजारा
(जेड० डी० एम० जी० भाग ४३, १८८९)
(९) दि पापुलर लिट्रेचर अॅव् नार्दन इण्डिया
(बु० स्कू० ओ० स्ट० भाग १, १९२०)
(१०) दि साङ्ग अॅव् मानिकचन्द्र
(ज० रा० ए० सो० बं० भाग १३, १८७८)

इसके अतिरिक्त डा० ग्रियर्सन ने "बिहार पीजेन्ट लाइफ" ग्रन्थ में ग्रामीण-पारिभाषिक-पदावली का संग्रह किया है जो बहुत ही उपयोगी है ।

भारतीय फोकलोर के वैज्ञानिक रीति से अनुसन्धान का श्रेय विलियम क्रुक को प्राप्त है जिन्होंने "एन इन्ट्रोडक्शन टू दि पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर अॅव् नार्दर्न इण्डिया" नामक ग्रन्थ में इस विषय का गम्भीर विवेचन किया है । इस ग्रन्थ से इनकी अगाध विद्वत्ता का पता चलता है । क्रुक की पुस्तक अपने विषय की प्रमाणभूत पुस्तक है तथा टेलर एवं फ्रेज़र जैसे सुप्रसिद्ध मानवशास्त्र-वेत्ताओं ने इसे प्रमाण कोटि में स्वीकार किया है । क्रुक ने कई वर्षों तक 'नार्थ इण्डियन नोट्स एण्ड क्वेरीज़' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया था जिसमें भारतीय फोकलोर की बहुमूल्य सामग्री निहित है । इन्होंने उत्तर प्रदेश के विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में 'ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स अॅव् नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्स' पुस्तक में अनेक उपयोगी तथ्यों का उल्लेख किया है । क्रुक के उपर्युक्त ग्रन्थ आज भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं ।

शेरिफ उत्तर प्रदेश के सिविलियन थे जिन्होंने कुछ हिन्दी लोक गीतों का अनुवाद अंग्रेजी पद्य में किया है ।

(२)

इस विषय के प्रतिपादन की सुविधा इसी में होगी कि हम प्रत्येक राज्य

में होने वाले फोकलोर-अनुसंधान पर क्रमशः प्रकाश डालें। भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश एक बड़ा राज्य होने के नाते सरल रीति से ही महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लेता है। यहाँ की जन भाषा हिन्दी है जो सम्पूर्ण देश की राष्ट्रभाषा है। हिन्दी की बहुत सी बोलियाँ है जो प्रमुखतः ये है :—

१. ब्रजभाषा २. अवधी ३. बुन्देलखण्डी ४. छत्तीसगढ़ी. ५. भोजपुरी।

कुछ वर्षों पूर्व ब्रजभाषा के प्रेमियों ने एक 'साहित्य अकादमी' ब्रजभाषा के पुनरुत्थान एवं लोक साहित्य को प्रश्रय प्रदान करने के लिये स्थापित की।

ब्रज-साहित्य-मण्डल की स्थापना सन् १९४० में की गई। यह संस्था ब्रज के लोक-साहित्य और संस्कृति की रक्षा कर रही है। इसकी देख-रेख में बहुत से विद्वान् लोक-गीत, लोक-कथाओं और लोक-गाथाओं का संग्रह कर रहे हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी थिसिस 'ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन' में ब्रज के मौखिक साहित्य का अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया है। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी ने 'ब्रज की कहानियाँ', 'गौने की विदा' और 'पाषाण नगरी' में ब्रज की कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया है। ब्रज-साहित्य-मण्डल के द्वारा 'ब्रज भारती' का प्रकाशन भी हो रहा है। कुछ वर्ष पूर्व 'हिन्दी जनपदीय परिषद्' के तत्वावधान में वाराणसी से 'जनपद' नामक पत्र भी प्रकाशित होता था। परन्तु किन्हीं कारणों से यह पत्रिका आज कल बन्द हो गई है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० डी० एन० मजुमदार ने 'लोक संस्कृति परिषद्' की स्थापना की है। इस संस्था की ओरसे 'इस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट' नामक त्रैमासिक शोध पत्रिका का प्रकाशन होता है। 'प्राच्य मानव वैज्ञानिक' के नाम से इसका हिन्दी रूपान्तर भी प्रकाशित होता है। डा० मजुमदार ने इस परिषद् की ओर से निम्नांकित पुस्तकों का प्रकाशन किया है जो उत्तर प्रदेश के लोक-साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डालती हैं।

१—स्नो बाल्स अँव् गढ़वाल।
२—फील्ड साङ्ग स अँव् छत्तीसगढ़।
३—दी लोनली फरोज अँव् दी बार्डर लैंड।
४—फोक साङ्ग् स अँव् मिरजापुर।

व्यक्तिगत रूप से लोक संस्कृति के क्षेत्र में काम करने वालों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। चतुर्वेदी जी की प्रेरणा से आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व ओरछा नरेश के

तत्वावधान में 'लोक-वार्ता परिषद्' की स्थापना हुई थी। इस परिषद् की ओर से "लोक-वार्ता" नामक एक त्रैमासिक प्रकाशित होता था जिसमें बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति के विभिन्न अवयवों की विस्तृत मीमासा रहती थी। इस पत्र के यशस्वी सम्पादक श्री कृष्णानन्द गुप्त ने "ईसुरी की फागें" नामक पुस्तक में ईसुरी नामक लोक कवि के गीतों का सुन्दर संग्रह किया है। परन्तु ओरछा राज्य के भारतीय संघ में विलयन के साथ ही इस संस्था का भी विघटन हो गया।

बिहार के पं० गणेश चौबे और आरा के श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह ने इस दिशा मे प्रशंसनीय प्रयास किया है। वर्तमान पंक्तियों का लेखक अनेक वर्षों से भोजपुरी-लोक-संस्कृति के संग्रह तथा सम्पादन का कार्य कर रहा है। भोजपुरी-लोक-संस्कृति का अध्ययन तथा लोकगीतों का संकलन कर उसने भोजपुरी लोक-संस्कृति को प्रकाश मे लाने का प्रयत्न किया है। हिन्दी की अन्य बोलियों की अपेक्षा भोजपुरी में सर्वाधिक कार्य हुआ है।

राजस्थान के विद्वानों ने 'शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की है जिसके तत्वावधान मे "राजस्थान भारती" का प्रकाशन होता है। अनेक लोकसाहित्य के प्रेमियों ने राजस्थान और मारवाड़ी लोकगीतों तथा कथाओं का संग्रह कर इस मौखिक साहित्य को नष्ट होने से बचाया है।

बिहार राज्य में मैथिली, मगही और भोजपुरी बोलियाँ बोली जाती हैं। पटना की "राष्ट्र-भाषा परिषद्" ने कई हजार मगही लोकगीतों का संग्रह करवाया है। पटना से 'मगही' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसमें लोकसाहित्य की सामग्री पायी जाती है। आरा से प्रकाशित 'भोजपुरी' पत्रिका भोजपुरी क्षेत्र के मौखिक साहित्य की रक्षा कर रही है। डब्लू० जी० आर्चर ने बिहार के छोटा नागपुर में निवास करने वाली संथाल तथा ओराँव जातियों के लोकसाहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है। इनकी पुस्तक "ब्लू ग्रोभ" आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रकाशित हुई है। इन्होंने संथालों के लोकगीत और लोकोक्तियों का संग्रह दरभंगा से प्रकाशित किया है। इनकी "भोजपुरी ग्राम्य-गीत" में विवाह-संस्कार सम्बन्धी गीतों का अच्छा संग्रह हुआ है। राँची के शरद्चन्द्र राय एक प्रसिद्ध मानवशास्त्र वेत्ता थे जिन्होंने संथाल, मुण्डा तथा ओराँव नामक जातियों के रहन-सहन और और रीति-रिवाजों का बड़ी गम्भीरता के साथ विवेचन किया है। राम एकबाल सिंह 'राकेश' की 'मैथिली लोक-गीत' अपने क्षेत्र में अकेली पुस्तक है।

अवधी-भाषा के लोक साहित्य पर अभी कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रतापगढ़ तथा गोंडा जिलों से अवधी के लोक-गीतों क संग्रह किया है। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने "अवधी और उसका साहित्य" में इस बोली के लोक कवियों का अच्छा परिचय दिया है।

मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में 'छत्तीसगढ़ी' बोली जाती है। डा० श्यामाचरण दूबे ने 'छत्तीसगढ़ी लोक-गीतों का परिचय' लिखकर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। डा० एलविन मध्यप्रदेश के ख्यातिनामा मानव-विज्ञान-शास्त्र-वेत्ता हैं जिन्होंने स्थानीय गोंड जातियों की लोक-संस्कृति का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है। "लोक साङ्ग्स अॅव् छत्तीसगढ़" में इन्होंने छत्तीसगढ़ में प्रचलित लोकगीतों का सुन्दर अनुवाद अंग्रेजी में किया है। "साङ्ग्स अॅव् दी फारेस्ट" में गोंडों के गीत संग्रहीत हैं। इनकी "फोक टेल्स आफ महाकोशल" में लोक कहानियाँ संग्रहीत हैं। डा० एलविन ने "ट्राइबल आर्ट" में मध्यप्रदेश की जंगली जातियों में प्रचलित लोक-कला का अच्छा विवेचन किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने निम्नांकित पुस्तकें भी लिखी है जो मध्यप्रदेश के विभिन्न जातियों की लोक-संस्कृति से सम्बद्ध है।

(१) लीम्ज़ फ्राम दि फोरस्ट
(२) दि एबारिजिनल्स
(३) दि बैगा
(४) दि अगारिया
(५) दि मरिया मर्डर एण्ड सूसाइड
(६) दि मरिया एण्ड देअर घोटुल
(७) मिथ्स अॅव् मिडिल इण्डिया

बंगाल भारतवर्ष के उन राज्यों में से है, जहाँ लोक संस्कृति का अध्ययन प्रचुर परिमाण में हुआ है। बंगाल की लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का श्रेय डा० दिनेशचन्द्र सेन को प्राप्त है जिन्होंने मैमन सिंह जिले से प्राप्त लोक-गीतों का संकलन "मैमनसिंह गीतिका" के नाम से प्रकाशित किया है। इन गीतों का अंग्रेजी अनुवाद 'ईस्टर्न बेंगाल बैलेड्स' के नाम से चार बृहद् भागों में अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ है। "फोक लिटेरेचर आफ बेंगाल" में डा० सेन ने प्रधानतया लोक-कहानियों की तुलनात्मक विवेचना की है। बँगला लोक साहित्य में योगपरक तथा रहस्यवादात्मक लोक-गीत भी पाये जाते हैं। मंसूरउद्दीन के द्वारा सम्पादित "हारा-मणि" इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। दक्षिणारंजन मित्र की 'ठाकुर दादार झूली' और 'ठाकुर मार झूली' में बंगाली लोक कथाओं का अच्छा संग्रह हुआ है। लाल बिहारी डे द्वारा लिखित "दि फोक टेल्स आफ बेंगाल" अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है।

"गोपीचन्द" तथा "मानिकचन्द" के गीत भी कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। डा० ग्रियर्सन ने गोपीचन्द की लोक गाथा के दो विभिन्न पाठों का प्रकाशन बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में किया है। डा० दास गुप्त ने "आब्सक्योर रिलिजस कल्ट्स" के परिशिष्ट भाग में मानिकचन्द तथा गोपीचन्द के ऊपर प्रचुर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त मनसा—मङ्गल नाम से अनेक लोक गीतों को कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है, जिसमें सर्पो की अधिष्ठात्री देवता मनसा की पूजा का वर्णन पाया जाता है। अभी हाल ही मे कलकत्ते के श्री गोपीनाथ सेन ने "अखिल भारतीय फोकलोर सोसाइटी" की स्थापना की है जिसके तत्वावधान मे 'इण्डियन फोकलोर' नामक पत्रिका प्रकाशित होती है। इस प्रकार बंगाल मे फोकलोर के सम्बन्ध मे बड़ा अनुसन्धान हुआ है।

उड़ीसा की लोक-संस्कृति को प्रकाश मे लाने का श्रेय डा० कुञ्ज बिहारी दास एम० ए०, पी-एच० डी० को प्राप्त है जिन्होंने अनेक वर्षों के अथक परिश्रम से कई हजार लोकगीतों तथा कथाओं का संकलन किया है। डा० दास आजकल विश्व-भारती यूनिवर्सिटी, शान्ति-निकेतन, में उड़िया विभाग के अध्यक्ष हैं। उड़िया फोकलोर के क्षेत्र मे इनका शोध कार्य नितान्त मौलिक तथा उपादेय है। इन्होंने 'ए स्टडी ऑव् ओरीसन फोकलोर' नामक विद्वत्तापूर्ण पुस्तक लिखी है जिसका प्रकाशन शान्ति-निकेतन से हुआ है। इस ग्रन्थ में इन्होंने उडीसा की लोक-संस्कृति का सम्यक् तथा व्यापक विवेचन प्रस्तुत किया है। 'पल्ली-गीति-समुच्चय' में डा० दास ने उड़िया भाषा के लोकगीतो का संग्रह कर लोक-साहित्य प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है। इस पुस्तक का दूसरा भाग अभी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। डा० दास की पी-एच० डी० की थीसिस—जिसमे उड़ीसा के फोकलोर का गंभीर तथा मौलिक विवेचन किया गया है—विश्वभारती, शान्तिनिकेतन मे शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। कलकत्ते मे प्रकाशित होने वाली 'इण्डियन फोकलोर' नामक पत्रिका मे इनके कई लेख इधर प्रकाशित हुए हैं जिनमे इनकी अगाध विद्वत्ता का पता चलता है। इस प्रकार डा० दास अपने प्रदेश की लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। जिसके लिए वे हमारे धन्यवाद के पात्र है। आसाम के लोकगीतों का संकलन पी० डी० गोस्वामी ने किया है जिनका "बिहू साङ्ग्स आफ आसाम" इस दिशा मे सुन्दर प्रयास है।

बम्बई राज्य में गुजरात, महाराष्ट्र और सौराष्ट्र सम्मिलित हैं। सौराष्ट्र प्राचीन भारतीय वीरता की केन्द्रस्थली है, जहाँ चारणों के द्वारा स्थानीय वीरों की कथाएँ आज भी बड़े प्रेम से गायी जाती है। किन्केड ने अपनी पुस्तक "आउटलाज़

अॅव् काठियावाड़" में स्थानीय वीरों तथा लुटेरों का वर्णन किया है। एक पारसी सज्जन ने "फोकलोर अॅव् गुजरात' नामक पुस्तक लिखी है। परन्तु गुजराती फोकलोर के सम्बन्ध में झवेरचन्द मेघाणी का नाम सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्होंने अपना समस्त जीवन गुजराती लोक-साहित्य के अध्ययन में ही बिता दिया। इन्होंने सौराष्ट्र के विभिन्न भागों की यात्रा कर हज़ारों गुजराती लोक गीतों और गाथाओं का संग्रह किया है जिनका प्रकाशन "रढ़ियाली रात भाग १—४" और "सोरठनु बहार वटिया" तथा "सोरठ नू रसधार" आदि ग्रन्थों में हुआ है। 'हालरडाँ' नामक पुस्तक में बच्चों के खेल तथा पालने के गीतों का उल्लेख है। "लोक साहित्य नू समालोचन" नामक पुस्तक में लोक साहित्य के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। नर्मदाशंकर मेहता ने "नागर स्त्रियों माँ गवाता गीत" में विवाह सम्बन्धी गीतों का संकलन किया है। गोकुलदास रायचुरा ने भी इस कार्य में योग प्रदान किया है। गुजरात की 'वर्नाक्यूलर सोसाइटी' तथा 'गुजराती साहित्य सम्मेलन' इस दिशा में स्तुत्य कार्य कर रहे हैं।

के० एम० झाबेरी ने अपने ग्रन्थ "माईलस्टोन्स अॅव् गुजराती लिट्रेचर" में गुजरात तथा काठियावाड़ के फोकलोर का संक्षिप्त रूप में सम्यक् विवेचन किया है। नारायण ठक्कर ने चन्द्रवंशी राजपूतों के इतिहास की भूमिका में इस विषय पर प्रचुर प्रकाश डाला है।

महाराष्ट्र प्रदेश में भी इस विषय पर कुछ कम कार्य नहीं हुआ है। सी० ए० एन० भागवत ने मराठी के पाँच सौ सात गीतों का प्रकाशन बम्बई विश्वविद्यालय की पत्रिका में किया है। दूसरे विद्वान् डी० एन० भागवत ने इसी पत्रिका में सत्पुड़ा घाटी के लोकगीतों की विशद् विवेचना की है। मेरी फुलर ने 'न्यू रिव्यू' पत्रिका में कुछ मराठी जाँत के गीतों का संकलन किया है।

दक्षिण भारत में चार भाषाएँ बोली जाती हैं। १—तमिल २—तेलुगु ३—कन्नड़ ४—मलयालम। ये सभी भाषाएँ बड़ी समृद्ध है। आन्ध्र-प्रदेश में तेलुगु भाषा बोली जाती हैं। इन्डियन एन्टीक्वेरी में "सम टेलगु फोक साङ्ग्स" नाम से कुछ गीतों का प्रकाशन हुआ है। इसी पत्रिका में तेलुगु पालने के गीत भी प्रकाशित हुए हैं। राबिन्सन ने अपनी पुस्तक "टेल्स अॅव् साउथ इण्डिया" में और गोवर ने "फोक साङ्ग्स अॅव् साउथ इण्डिया" नामक ग्रन्थ में दक्षिण भारत के लोक साहित्य का अच्छा परिचय दिया है। थर्स्टन ने "ओमेन्स एन्ड सुपरस्टिशन्स अॅव् सदर्न इण्डिया" नामक ग्रन्थ में दक्षिण भारत की लोक-संस्कृति का बड़ा ही विशद् तथा विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। बम्बई तथा मद्रास विश्वविद्यालयों में फोकलोर के सम्बन्ध में शोधी छात्रों द्वारा अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है। फोकलोर के अध्ययन की ओर अधिकारी विद्वानों का ध्यान आकर्षित हो रहा है।

—०—

परिशिष्ट (ख)

लोक-साहित्य-सम्बन्धी पठनीय सामग्री

हिन्दी में लोकसाहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ-सूची का अभाव है। डा० महादेव साहा ने सम्मेलन पत्रिका (सं० २०१०, भाग ४० संख्या १) में 'लोक-साहित्य सम्बन्धी भारतीय-साहित्य की संक्षिप्त सूची' शीर्षक लेख लिखकर बड़ा शोभन कार्य किया है। श्री श्याम परमार ने 'भारतीय लोक साहित्य' में तथा श्रीकृष्णदास ने 'लोक-गीतों की सामाजिक व्याख्या' नामक ग्रन्थ मे ऐसी पुस्तकों की एक लम्बी लिस्ट दी है। प्रस्तुत लेखक ने तीनों सज्जनों की सूचियों का उपयोग यहाँ किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ-सूची में विभिन्न भाषाओं की उन्ही पुस्तकों को स्थान दिया गया है जिनका सम्बन्ध लोक-संस्कृति अथवा लोक-साहित्य के किसी न किसी अंग से अवश्य है। इसमें हिन्दी की विभिन्न बोलियों में उपलब्ध ग्रन्थों का पृथक्-पृथक् निर्देश किया गया है जिससे पाठकों को यह सरलता से ज्ञात हो जाय कि हिन्दी की किस बोली में लोक-साहित्य की कितनी सृष्टि हुई है। अँग्रेजी में उपलब्ध लोक-संस्कृति सम्बन्धी ग्रन्थों को सुविधा के लिए चार भागो—भारतीय, अंग्रेजी, अमेरिकन तथा यूरोपियन—में विभक्त किया गया है। सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थों तथा शोध-संबंधी पत्रिकाओं की सूची भी अलग से दे दी गई है। आशा है यह ग्रन्थ-सूची पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

(क) हिन्दी

१—भोजपुरी

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग १ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। द्वितीय संस्करण, सं० २०११ वि०)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी ग्राम गीत भाग २ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। सं० २००६ वि०)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-संस्कृति (फोकलोर) का अध्ययन

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—भाग १६ (हिन्दी का लोक साहित्य) राहुल जी के साथ।

दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस (हि० सा० स०, प्रयाग)

दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी के कवि और काव्य (राष्ट्रभाषा परिषद् पटना)

आर्चर (डब्लू० जी०)—भोजपुरी ग्राम्य गीत (लहेरिया सराय, पटना)

डा० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य (राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना)। भोजपुरी लोकोक्तियाँ ('हिन्दुस्तानी') प्रयाग। अप्रेल १९३९ पृ० १५९-२१६; जुलाई १९३९ पृ० २४५-९०)

डा० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी मुहावरे ('हिन्दुस्तानी' प्रयाग; अप्रैल; अक्टूबर १९४०; जनवरी १९४१)

डा० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी पहेलियाँ ('हिन्दुस्तानी', प्रयाग; अक्टूबर-दिसम्बर १९४२)

डा० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी पहेलियाँ।

२ राजस्थानी

सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, ठाकुर रामसिंह } राजस्थान के लोक गीत प्रथम भाग—पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्ध (राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता, सन् १९३८ ई०)

सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, ठाकुर रामसिंह } ढोला मारू रा दूहा (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सन् १९३४)

ठाकुर रामसिंह—चारणी गीत

नरोत्तम दास स्वामी—राजस्थान रा दूहा भाग १,२ (राजस्थानी सीरीज, पिलानी)

सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोक गीत हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, (सं० १९९९)

कन्हैया लाल सहल—राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन।

मोहन लाल मेनारिया—राजस्थानी भीलों की कहानियाँ

सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी वार्ता

जगदीश सिंह गहलोत—मारवाड़ी-ग्राम-गीत

खेताराम माली—मारवाड़ी-गीत संग्रह

ताराचन्द ओझा—मारवाड़ी स्त्री-गीत-संग्रह
निहालचन्द वर्मा—मारवाड़ी गीत (१९५२)
रामनरेश त्रिपाठी—मारवाड़ के मनोहर गीत
(हिन्दी मन्दिर प्रयाग, सं० १९८७ वि०)
जोशी—मेवाड़ की कहावतें (उदयपुर)
मदनलाल वैश्य—मारवाडी गीत माला
पुरुषोत्तम मेनारिया—राजस्थान की लोक-कथाएँ
(आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली)

३—व्रज

डा० सत्येन्द्र—व्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन
(साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा सन् १९४९)
डा० सत्येन्द्र—व्रज की लोक-कहानियाँ
(व्रज साहित्य मंडल, मथुरा १९४७)
डा० सत्येन्द्र—व्रज-लोक-संस्कृति (सम्पादित)
(व्रज साहित्य मण्डल, मथुरा)
डा० सत्येन्द्र—व्रज-ग्राम साहित्य का विवरण
डा० सत्येन्द्र—लोक साहित्य-विज्ञान
डा० सत्येन्द्र—व्रज के लोक गीत
(पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ में निबन्ध)
आदर्श कुमारी यशपाल—व्रज की लोक कथाएँ
(आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली)

४—अवधी

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—अवधी लोक-गीत भाग १
डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित—अवधी और उसका साहित्य
(राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)
सत्यव्रत अवस्थी—विहाग रागिनी
डा० इन्दु प्रकाश पाण्डेय—अवधी लोक-गीत और परम्परा
(राम नारायण लाल, प्रयाग)

५—मालवी

डा० श्याम परमार—मालवी लोक साहित्य का अध्ययन (इन्दौर सं० २००९)

डा० श्याम परमार—मालवी और उसका साहित्य
(राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सं० १९५४)
डा० श्याम परमार—मालवा की लोक-कथाएँ
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५४)
रतन लाल मेहता—मालवी कहावतें
(राजस्थान शोध संस्थान, उदयपुर)

६—बुन्देलखण्डी

कृष्णानन्द गुप्त—ईसुरी की फागें (सम्पादित)
(लोक वार्ता परिषद्, टीकमगढ़)
शिवसहाय चतुर्वेदी—बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियाँ
शिवसहाय चतुर्वेदी—मौने की विदा
शिवसहाय चतुर्वेदी—पाषाण नगरी
हर प्रसाद शर्मा—बुन्देलखण्डी लोक-गीत
शिव सहाय चतुर्वेदी—बुन्देलखण्ड के लोक गीत ।

७—बघेली

लखन प्रताप 'उरगेश'—बघेली लोक-गीत
(कटिया, विन्ध्य प्रदेश, १९५४)
श्रीचन्द्र जैन—विन्ध्य प्रदेश के लोक-गीत (१९५३)
श्रीचन्द्र जैन—विन्ध्य भूमि की लोक कथाएँ
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली)

८—छत्तीसगढ़ी

श्यामाचरण दुबे—छत्तीसगढ़ी लोक-गीतों का परिचय (१९४० ई०)
चन्द्रकुमार—छत्तीसगढ़ की लोक-कथाएँ
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली)

९—मैथिली

राम एकबाल सिंह 'राकेश'—मैथिली लोक-गीत
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० १९९९ वि०)

१०—निमाड़ी

रामनारायण उपाध्याय—निमाड़ी लोक-गीत
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जबलपुर, १९४९ ई०)

डा० कृष्णलाल हंस—निमाड़ी लोक-कथाएँ भाग, १,२
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली)
डा० कृष्णलाल हंस—निमाड़ी लोक-साहित्य का अध्ययन।

११—कुरु प्रदेश

सीता तथा दमयन्ती देवी—धूलि धूसरित मणियाँ
राहुल सांकृत्यायन—आदि हिन्दी के गीत और कहानियाँ (पटना १९५२)
डा० सत्या गुप्त—खड़ी बोली का लोक साहित्य।

१२—मिश्रित-गीत-संग्रह

रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी भाग ५ (ग्रामगीत)
(हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, सं० १९८६)
रामनरेश त्रिपाठी—हमारा ग्राम साहित्य
(हिन्दी मन्दिर प्रयाग, सन् १९४० ई०)
रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य भाग १
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १९५१)
रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य २ भाग (प्रकाशक—वही)
रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य भाग ३ (प्रकाशक—वही)
रामनरेश त्रिपाठी—सोहर (हिन्दी मन्दिर, प्रयाग)
देवेन्द्र सत्यार्थी—बेला फूले आधी रात (१९४९)
देवेन्द्र सत्यार्थी—धरती गाती है (१९४८)
देवेन्द्र सत्यार्थी—बाजत आवे ढोल
देवेन्द्र सत्यार्थी—धीरे बहो गंगा (१९४८)
देवेन्द्र सत्यार्थी—दीवा बले सारी रात (१९४१)
देवेन्द्र सत्यार्थी—मै हूँ खाना बदोश (१९४१)
देवेन्द्र सत्यार्थी—गाये जा हिन्दुस्तान (१९४६)
देवेन्द्र सत्यार्थी—चट्टान से पूछ लो
विद्यावती सिनहा 'कोकिल'—सुहाग के गीत (प्रयाग १९५३)
रामकिशोरी श्रीवास्तव—हिन्दी लोक-गीत
(साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९४६ ई०)
राहुल सांकृत्यायन—किन्नर देश में
राहुल सांकृत्यायन—हिमालय परिचय (गढ़वाल)

गोविन्द चातक—गढ़वाल की लोक कथाएँ
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली)
गोविन्द चातक—नेपाल की लोक कथाएँ
(प्रकाशक—वही)
सन्तराम वत्स्य—हिमांचल की लोक कथाएँ
(प्रकाशक—वही)

(ख) गुजराती

(लोक गीत)

झवेरचन्द मेघाणी—रढ़ियाली रात भाग १—४
झवेरचन्द मेघाणी—चूंदड़ी भाग १-२
झवेरचन्द मेघाणी—ऋतु गीतों
झवेरचन्द मेघाणी—हालर डाँ

(लोक कथा)

झवेरचन्द मेघाणी—सौराष्ट्रनी रसधार (भाग १-५)
झवेरचन्द मेघाणी—सोरठी बहार बटिया (भाग १-३)
झवेरचन्द मेघाणी—सोरठी गीत-कथाओं
झवेरचन्द मेघाणी—दादाजुनी वातो
झवेरचन्द मेघाणी—डोशी मानी वातो

(सिद्धान्त ग्रंथ)

झवेरचन्द मेघाणी—धरती नुं धावण (भाग १,२)
झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्य-पगदंडी नो पंथ
झवेरचन्द मेघाणी—चारणो अने चारणी साहित्य
झवेरचन्द मेघाणी—वतन नो साद
झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्य नुं समालोचन
(बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई)

(व्रत कथा)

झवेरचन्द मेघाणी—कंकावटी (भाग १, २)

(यात्रा)

झवेरचन्द मेघाणी—सौराष्ट्रनां खंडेरोमां। सोरठ ने तीरे तीरे[1]

---

१. (मेघाणी के उपयुक्त सभी ग्रन्थ गुर्जर ग्रन्थ-रत्न कार्यालय, गांधी रोड, अहमदाबाद से प्राप्त हो सकते हैं।)

नर्मदाशंकर लालशंकर—नागर स्त्रिओं मां गवातां गीत
(दि गुजराती प्रिंटिंग प्रेस; सन् १९१०)
रणजीतराय मेहता—लोक-गीत
शाह एस० एन०—ढोला मारू (बम्बई, १९५४)
दलाल—प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह
बुच (एम० ए०)—उदासी पंथ ना नीति बचनो।

(ग) मराठी

अनुसूया भागवत—जानपद गीतें
कमला बाई देशपाण्डे—अपौरुषेय वाङ्मय अर्थात् स्त्री गीतें
(पुणें, १९४८)
काका कालेलकर—साहित्याचें मूलधन
गोरे, पा० श्र०—वरहाड़ी लोक-गीतें (यवतमाल)
मालती दाण्डेकर—लोक साहित्याचे लेणे (सतारा, सन् १९५३)
वि० वा० जोशी—लोक-कथा व लोक-गीतें
साने गुरुजी—स्त्री जीवन (भाग १, २)
नारायण मोरेश्वर खरे—लोक संगीत

(घ) बंगला

डा० आशुतोष भट्टाचार्य—बांगलार मंगल-काव्येर इतिहास
डा० आशुतोष भट्टाचार्य—बाँगलार लोक साहित्य
डा० आशुतोष भट्टाचार्य—बाँगलार लोक-संगीत
कागाल हरिनाथ—बाउल गान
कांगाल हरिनाथ—बारमासेर पुँथि
कांगाल हरिनाथ—हिन्दुस्थानी ग्राम-गीत
कांगाल हरिनाथ—हिन्दुस्थानी लोक-गीत
कांजिलाल, अनिल—बांगलार प्राचीन काव्य
काशीनाथ तर्क वागीश—व्रतमाला
गुरु प्रसाद दत्त—पट्आ संगीत
गिरीशचन्द्र सेन—तापसमाला
दक्षिणारञ्जन मित्र—ठाकुर दादार झूलि
दक्षिणारञ्जन मित्र—ठाकुर मार झूलि
दिनेशचन्द्र सेन—मैमनसिंह गीतिका भाग १—४

दिनेशचन्द्र सेन—गोपीचन्देर गान
नरेन्द्र नाथ मजुमदार—व्रत कथा
नीलकान्त सरस्वती—व्रत कथा सार
भोलानाथ दत्त—डाकेर कथा
मंसूर उद्दीन—हारामणि भाग १—३
मणीन्द्रनाथ बसु—सहजिया साहित्य
शरच्चन्द्र नाथ—बाउल गान
सुशील कुमार डे—बाँगला प्रवाद

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'मनसा' देवी के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है।

(ङ) पंजाबी

अमृता प्रीतम—पंजाब दी आवाज (दिल्ली १९५२)
किसन चन्द्र मोगा—असली रंग विरंगे गीत (अमृतसर, १९४६)
दीन मुहम्मद कुश्ता—पंजाब दे हीरे
देवेन्द्र सत्यार्थी—गिद्धा
रामशरण—पंजाब दे गीत (लाहौर)
हरभजन गियानी—पंजाब दे गीत (देवनागरी, अमृतसर)

(च) उड़िया

डा० कुञ्जबिहारी दास—उड़ियालोक गीत औ कथा भाग १—२ (विश्व भारती, शान्ति निकेतन)
डा० कुञ्जबिहारी दास—उड़िया पल्ली गान
डा० कुञ्जबिहारी दास—उड़िया लोक कथा

(A)—INDIAN FOLKLORE

Abbott (J.)—The keys of power—A Study of Indian Ritual and Belief. (1932).

Agarkar (A. J.) Folk-dance of Maharastra (Bombay).

Agarkar (A. J.)—A glossary of Castes, Tribes and Races in Baroda State (Bombay, 1912)

Aiyappan (A)—Anthropology of the Nadias (Govt.) Museim Bulletins N. S. Vol II, No. 4, (1914)

Aiyanger (M. S.)—Tamil Studies (Madras, 1914).

Archer (W. G.)—The Blue Grove (George Allen and Unwin)

Archer (W. G.)—Indian Primitive Architecture.

Bake (A)—Indian Music.

Baring Cloud—Strange Survivals. (1892).

Barlett (F. C.)—Phychology of Primitive Culture. (Cambridge, 1923)

Basu (M. M.)—Post Chatanya Sahajiya Cult. (Calcutta)

Banerjee (B)—Ethnologic du Bengal.

Banerjee (U. K.)—Handbook of Proverbs—English & Bengali (Calcutta, 1891)

Bhandari (N. S.) Snow Balls of Garhwal (Lucknow)

Bhargava (B. S.)—The Criminal Tribes

Boyd—Village Folk of India (1924)

Briggs (G. W.)—The Chamars. (R. L. I. series)

Briggs (G. W.)—Gorakhnath and the Kanphata Yogis (Calcutta, 1938).

Burton (R. F.)—Sindh and the Races that inhabit the valley of Indus (1851).

Burton (R. F.)—Sind Revisited (1877)

Buck (C. H.)—Faiths, Fairs and Festival of India. (1917).

Boys (F.)—Primitive Art.

Chanda (R. P.)—Non-Vedic Elements in Brahmanism (Varendra Research Society, Rajshahi East Pakistan).

Chatterji (N.)—Yatra.

Chelkesa (T)—Parralel Proverbs; Tamil and English (Madras, 1869)

Christian (J)—Bihar Proverbs (London, 1891)

Crock (W)—Religion and Folklore of Northern India (O. U. P.) 1926. Third Edition

Crock (W)—Tribes and Castes of N. W. P. (Allahabad).

Dalton—Descriptive Ethnology of Bengal.

Das Gupta (S. B.)—Obscure Religious Cults (Calcutta University, 1940)

Das (S)—History of Saktas.

Devendra Satyarthi—Meet my people.

Divetia (N. B.)—Gujrati language & literature. Vol I—II (1929).

Divetia (N. B.)—Milestones in Gujrati literature.

Dowson (J)—A Classical Dictionary of Hindu Mythology & Religion (1903)

Dubois (L)—Hindu Manners, Customs and Ceremonies. (1906)

Dube (S. C.)—The Kamars (Lucknow).

Dube (S. C.)—Fieldsongs of Chhattisgarh (Lucknow).

Dubash (P. N.)—Hindu Art in its Social Setting (1936)

Dyre (T.)—Folklore of Plants.

De—Music of Southern India.

Ehrenfels (O. R.)—Mother Right in India. Hyderabad Deccan), 1941.

Elliot (H. M.)—Memoirs on the History, Folklore and Distribution of the Races of North Western Province of India (1869).

Elwin (V.) and Hivale—Songs of the Forest (George Allen & Unwin)

Elwin (V.) and Hivale—Folksongs of Maikal Hills. (O. U. P., Bombay, 1944)

Elwin (V.)—The Baiga (Murray, London, 1939)

Elwin (V.)—The Agaria (O. U. P., Bombay, 1942)

Elwin (V.) Maria Murder and Suicide; Bombay, 1943 (O. U. P.)

Elwin (V.)—The Maria and their Ghotul Bombay, 1947 (O. U. P.)

Elwin (V.)—Folk-tales of Mahakoshal. Bombay, 1944 (O. U. P.)

Elwin (V.)—Folk Songs of Chhattisgarh; Bombay, 1946 (O. U. P.)

Elwin (V)—The Tribal Art of Middle India (O. U. P.)

Elwin (V)—Bondo Highlander (O. U. P.)

Elwin (V)—Myths of Middle India (O. U. P.)

Elwin (V)—Tribal Myths of Orissa (O. U. P.)

Elwin (V)—The Religion of the Hill Saora (O. U. P.)

Elwin (V)—The Aboriginals (O. U. P.)

Elwin (V)—Leaves from the Jungle (Murray)

Emeneau (M. B.)—Kota Texts (California, 1944-46)

Enthovon (R. E.)—The Folklore of Bombay (OxFord, 1924)

Fitzpatrick (W.)—Folklore of Birds and Beasts af India. (J. Bom. Nat. Hist. Society) Vol, XXViii), 1921-22 PP. 562-65

Forsyth (J.)—The Highlands of Central India. (London 1871)

Furer-Haimendorf (C. Von)—The Chenchus (Hyderabad, 1943)
Fallen (S. W.)—A Dictionary of Hindustani Proverbs (1886)
Ganesh Narain Deshpande—A Dictonary of Marathi proverbs (Poona, 1900)
Ganga Datt Upreti—Proverbs and Folklore of Kumaun & Garhwal (1892)
Gariola (T. D.)—Folklore of Garhwal. (The Vishwa Bharati Quarterly, Vol, IV. 1926)
Ghure (G. S.)—Race and Caste in India. (Bombay)
Gover (G)—Himalayan Village (London, 1938)
Gover (C. E.)—Folksongs of Southern India (1872)
Goswami (P. D.)—The Bihu Songs of Assam.
Griffiths (W. G.)—Folklore of the Kols ('Man in India' Vol. XXIV, 1944)
Grierson (G. A.)—Bihar Peasant Life (Patna, 1918)
Grierson (G. A.)—Some Behari Folksongs. (J. R. A. S.; Vol. XVI (1884) P. 196)
Griersonn (G. A.)—Some Bhojpuri Folksongs. (J. R. A. S. Vol. XVIII (1886) pp 207)
Grierson (G. A.)—Folklore from Eastern Gorakhpur (J. A. S. B. Vol Lii (1883) pp 1.
Grierson (G. A.)—Two Versions of the Song of Gopichand. (J. A. S. B.; Vol. LIV, (1885) part I, pp. 35)
Grierson (G. A.)—The Song of Bijai Mal (J. A. S. B. Vol. Liii (1884) Part III, pp. 94)
Grierson (G. A.)—The Song of Alha's marriage (Indian Antiquary Vol. Xiv (1885) pp-209)
Grierson (G. A.)—A Summary of the Alha Khand (I. A. Vol. XIV (1885) pp. 245)

Grierson (G. A.)—Selected Specimens of the Behari language—The Bhojpuri dialect; The git Naika Banajarawa (Z. D. M. G. Vol. XLiii (1889) pp-468)

Grierson (G. A.)—The Popular Literature of Northern India. (Bulletin of the School of Oriental Studies; London Vol. I, Part III (1920) pp87).

Grierson (G. A.)—The Lay of Alha (O. U. P., 1923)

Grierson (G. A.)—The Song of Manik Chandra—J. A. S. B. Vol. XIII, Part I, No. 3 (1878)

Grigson (W. V.)—The Maria Gonds of Bastar. (OxFord, 1938)

Gurdon (P. R. T.)—The Khasis (London, 1914)

Gurdon (P. R. T.)—Some Assamese Proverbs (1896)

Haldar (S)—Ho Folklore(J. B. O. R.S. Vol. VIII, 1922)

Hislop (S)—Papers relating to the Aboriginal Tribes of the Central Provinces. (Nagpur, 1866)

Hivale, Shamrao—The Pardhans of the Upper Narbada Valley (Bombay, 1946)

Hoffmann (J)—
Vao.Emelen (A)— } Encyclopaedia Mundarica. (Patna 1930-31)

Hutton (J. H.)—The Angami Nagas (London, 1921)

Hutton (J. H.)—The Sema Nagas (London, 1921)

Hunter (W. W.)—Annals of Rural Bengal (1868)

Ibbetson (D)—Punjab Castes (Lahore; 1916)

Iyer (L. A. K.)—The Travencore Tribes and Castes. (Trivandrum, 1937-41)

Iyer (L. A. K.)—Kochin Tribes and castes (Madras, 1909-12)

Iyenger (M. V.)—Popular Culture in Karnatak.

Jamsetjee Petit—Collection of Gujrati Proverbs (Bombay).

James Long—Eastern Proverbs and Emblems (London, 1881)
Jogendra Bhattacharya—Hindu Castes and Sects (Thacker, 1896)
Kunja Behari Das—A Study of Orissan folklore (Vishva Bharati; Shanti Niketan, 1953)
Koppers (W)—'Bhagwan, the Supreme Deity of the Bhils' (Anthropos, (1940-41)
Leitner (G. W.)—Manners and Customs of the Dards
Lewison (R. G.)—'Folk-lore of the Assamese' (J. R. A. S. B. Vol. V (1939)
Longworth (D. M.)—Popular poetry of the Baloches.
Luard (C. E.)—Ethnological Survey of Central India Agency (Lucknow, 1909)
Maconochie—Agricultural Proverbs of the Punjab.
Majumdar (D. N.)—A Tribe in Transition (Calcutta)
Majumdar (D. N.)—Folk-songs of Mirzapur.
Majumdar (D. N.)—The Fortunes of Primitive Tribes.
Majumdar (D. N.)—The Matrix of Indian Culture.
Majumdar (D. N.)—The Affairs of a Tribe.
Mukherjee (C)—The Santals (Calcutta, 1943)
Mills (J. P.)—The Lhta Nagas (1923)
Mills (J. P.)—The Ao Nagas (1926)
Natesa Shastri—Folklore in Southern India.
Natesa Shastri—Familiar Tamil Proverbs.
Nanjundayya (H. V.) & Anant Krishna Iyer (L. K.) } The Mysore Tribes and Castes. (Mysore 1928-35).
Pangtey (K. S.)—Lonely Furrows of the Borderland. (Lucknow).
Parray (N. E.)—The Lakhers (London, 1932)

Penzer (N. M.)—The ocean of story.
(London, 1924-28)
Playfair (A.)—The Garos. (London, 1909)
Percival (P.)—Tamil Proverbs (Madras, 1874)
Projesh Banerji—The Folk-Dance of India.
(Allahabad, 1944)
Projesh Banerji—Dance of India. (Allahabad)
Rafy (Mrs.)—Folk-tales of Khasis. (London, 1920)
Ravipati Guruvayuru—A collection of Telgu Proverbs.
(Madras, 1868)
Risley (H. H.)—The Tribes and Castes of Bengal.
(Calcutta, 1891)
Rivers (W. H. R.)—The Todas (London, 1906)
Robertson (G. S.)—The Kafirs of Hindukush (1896)
Rochiram (G.)—Handbook of Sindhi Proverbs
(Karachi, 1845)
Rodrigner (E. A.)—The Hindoo Castes (1846)
Rose (H. A.)—A Glossary of the Tribes and castes of the Punjab and N. W. F. P. (Lahore, 1919)
Roy—(Sarat chandra)—The Mundas and their country
(Calcutta, 1912)
Roy—(Sarat chandra)—The Oraons of Chota Nagpur
(Ranchi, 1915)
Roy (Sarat chandra)—The Birhors (Ranchi, 1925)
Roy (Sarat chandra)—Oraon Religion and Customs
(Ranchi, 1928)
Roy (Sarat chandra)—The Hill Bhuiyas of Orissa,
(Ranchi, 1936)
Roy (Sarat chandra) The Kharies Ranchi, 1937)
Roy (Sarat chandra)—'The Divine(Myths of the Mundas
(J. B. O. R. S. Vol II. (1916).

Russel (R. V.) & Hira Lal } The Tribes and castes of central Province of India. (London, 1916)
Sapekar (G. G.)—Marathi proverbs (Poona, 1872)
Sarkar (B. K.)—Folk Element in Hindu Culture
Sawe (K. J.)—The Warlis (Bombay, 1945)
Saligman (C. G.)—The Veddas (Cambridge, 1911)
Shaw (W.)—'Notes on the Thadon Kukis (J. A. S. B.) Vol. XXIV, 1928)
Stock (C.)—'Folklore and Customs of Lepchas of Sikkim (J. A. S B. Vol. XXI, 1925)
Shakesphere—Lushei Kuki Clan (1912)
Sherif (A. G.)—Hindi Folk songs (Hindi Mandir: Allahabad)
Sen Gupta (P. P.)—Dictionary of Proverds (Calcutta, 1899)
Sen (D. C.)—Folk-literature of Bengal (Calcutta University, 1920)
Sen (D. C.)—Glimpses of Bengal life. (1925)
Sen (D. C.)—History of Bengali Language and Literature (Calcuttia University, 1911).
Sen (D. C.) Eastern Bengal ballads (In 4 Vols)
Slater (G.)—Dravidian Elements in Indian culture (1924)
Stack, (E.) – The Mikirs (1908)
Steel (F. A.)—Tales of the Punjab (London, 1894)
Stein (A)—Hatim's Tales (London, 1923)
Swynnerton (C)—Romantic Tales from the Punjab (West minister, 1903),
Temple (R. C.)—The Legends of the Punjab (1885)
Thurston (E.)—Castes and Tribes of Southern India (in 7 vols.) (Madras, 1909)

Thurston (E.)—Omens and Superstitions of Southern India (London, 1912)

Tod —Annals and Antiquities of Rajasthan (OxFord, 1920)

Toru Dutta—Ancient Ballads and Legends of Hindustan (1882)

Thurston (E)—Ethnographical Notes on Southern India (Madras, 1906)

Waddel—Lamaism.

(B) English Folk-lore

I

Collection of Ballads

The Book of British Ballads—Selected & edited by R. Brimley Johnson (Everyman's Library; Dutton & Co. Price (40 cents)

English and Scottish Ballads—Selected & edited by R. Adelaide Witham. (Riverside Literature Series; Houghton Miffin Co. Price—50 cents)

A Collection of Ballads—Edited with introduction and Notes by Andrew Lang (Chapman & Hall)

Old English Ballads—Edited by F. B. Gummere with a learned Introduction & notes. (Athenaeum Press Series; Ginn & Co. N. Y. Price 80 cents)

The Oxford book of ballads- By Sir Arther Quiller-Couch (Oxford University Press, London)

English and Scottish Popular Ballads—Edited by Helen Child Sargent and George L. Kittredge. (Student's Cambridge edition in one Volume; Houghton Miffin Co.)

The English and Scottish Popular ballads—Edited by Francis James Child Vols. I—V (Houghton Miffin Co).

Cow-boy songs—Collected and edited by John A. Lomax (Sturgis and Walton).

Folk-ballad of Southern Europe—Translated into English verse by Sophie Jewett (G. P. Putnom's Sons).

The Ballad of all Nations—by George Borrow (Alston Rivers Ltd. 18 York buildings, Adelphi, W. C. 2. London).

A Collection of old ballads. (1723-25),.(with a learned introduction).

Reliques of Ancient English poetry (1765)—Edited by Bishop Tomas Percy (with preface, learned Introduction and critical Essay on the ancient minstrels).

Ancient songs and ballads—(Edited by Joseph Ritson (1790) with introduction etc).

Robin Hood—By Joseph Ritson (1795)

Minstrelsy of the Scottish Border—by Sir Walter Scott. (Vols. I-III) 1802-3.

Minstrelsy—Ancient and Modern—by William Motherwell (1827)

Bishop Percy's Folio Manuscript—Vols. I--III and Suppliment (1867-68) by Hales and Furniwall.

II

Critical Books

F. B. Gummere—The Beginnings of Poetry (Macmillan & Co. 1901).

F. B. Gummere—The Popular Ballad (Archibald Constable & Co. Ltd. London. 1907).

F. B., Gummere—Chapter on "Ballads" [in Cambridge History of English Literature, Vol. II. (1908)]

Walter M. Hart—Ballad and Epic (Harvard Studies and Notes Vol. XI, Ginn & Co. 1907)

Andrew Lang—Article on "Ballad" (in Encyclopeadia Britainica, 1910).

Andrew Lang—Sir Walter Scott and Border Minstrelsy. (Longman's Green & Co.; 1910)

T. F. Handerson—The Ballad in Literature. (Cambridge University Press, 1912)

Frank E. Bryant—A History of English Balladry. (1913).

J. C. H. R. Steenstrup—The mediaeval Popular Ballad. Translated from the Danish by E. G. Cox (Ginn & Co. 1914)

Frank Sidwick—The Ballad (The Arts and Craft of Letters Series; G. H. Dorar & Co; 1915).

F. J. Child—Article on "Ballad poetry" (in Universal Cyclopeadia, 1892).

Oliphant Smeaton—Channels of English Literature. Volume on "Heroic poetry,' (Dent Sons; London).

C. H. Herford—The Warwick Library of English Literature. Volume on "Pastorals". (Blackie and Son; London).

A. H. Upham—Typical Forms of English Literature Article on "Ballad." (Oxford University Press, London, 1927).

Chaunecy Sanders—An Introduction to Research in English Literary History. Article on 'Problems in Folklore" by Stith Thomson. (Macmillan & Co, New york).

Andrew Lang—Chamber's Cyclopeadia of English literature (1902) pp-520-

T. F. Henderson—Scottish Vernacular literature (1898) pp. 355

Walter Scott—Minstrelsy (1902) (Introduction portion)

W. M. Hart—Publications of modern Language Asscciation XXI (1906) pp. 755

W. M. Hart—Ballad and Epic.

(C) European Folklore

Aubrey (J.) Remains of Gentilisme and Judaisme. (Folklore Society, 1881)

Black (G. B.) Folk-medicine (Folklore Society, London; 1883)

Brand (J.)—Observations on Popular Antiquities (London, 1877);

Burton (R)—Anatomy of melancholy (London, 1883)

Campbell (J. S.)—Notes on the spirit basis of belief & Customs (Bombay, 1885)

Chambers (R)- Book of Days. vol. I-II (London)

Conway (M. D.)—Demonology and Devil--lore (London, 1879)

Cooper (W. M.) - Flagellation and the Flagellants. (London, 1887)

Cox (G. W.)- Introduction to the science of Comparative Mythology & Folklore, (London, 1881)

Cox (G. W.) - Mythology of the Aryan Nations.

Cox (M. R.) —Introductian to Folklore

De Gubernatis (A) Zoological Mythology or the Legends of animals (London, 1872)

Farrer (J. A.)—Primitive Manners and Customs (London, 1879)

Frazer (J. G.)—The Golden Bough (12 vols)
Frazer (J. G.)—The Golden Bough (Abridged edition in one vol)
Frazer (J. G.)—The Belief in Immortality and the worship of the Dead. (3 vols.)
Frazer (J. G.)—The Worship of Nature 2 vols).
Frazer (J. G.)—Folklore in the Old Testament. (3 vols).
Frazer (J. G.)—Totemism and Exogamy. (4 vols).
Frazer (J. G.)—Psyche's task.
Goldziher (J)—Mythology among the Hebrews. (London, 1877)
Gordom (Cumming) From Hebrides to the Himalayas. vols I-II (London, 1876)
Gregor (W)—Notes on the Folklore of North-east of Scotland (Folklore society, 1881)
Grimm—Teutonic Mythology (in 4 Vols.) (London 1880-88)
Grimm—House-Hold tales (1884)
Hartland (E. S.)—Science of Fairy-Tales (London, 1891)
Hearn (W. E.)—The Aryan Household (London, 1879)
Henderson (W.)—Notes on the Folklore of the Northern Countries of England and the Boarder.
Jacobs (J)—Celtic Fairy Tales.
Jacobs (J)—English Fairy Tales.
Jones (W.)—Finger-Ring lore (London; 1877)
Lang (Andrew)—Custom and Myth.
Lang (Andrew)—Myth, Ritual and Religion. (London; 1887).
Letourneau (C)—Sociology based on Ethnography

Lubbock (J)—Origin of civilisation and Primitive Condition of man (London; 1882).

Robertson-Smith (W.)—Kinship and marriage in early Arabia (Cambridge, 1883).

Scott (Sir W.)—Letters on Demonology and Witch-Craft (London, 1884).

Spencer (H)—Principles of Sociology Vols. I-II (London; 1885)

Starcke (C. N.)—The Primitive Family (London, 1889)

Trumbell (H. C.)—The Blood Covenant (1887)

Taylor (E. B.)—Primitive Culture (2 Vols)

Taylor (E. B.)—Researches into the early history of Mankind.

Wake (C. S)—Serpent worship

Westropp (H. M.)—Primitive Symbolism

Wilde (Lady)—Ancient legends, mystic charms and Superstitions of Ireland (London; 1888)

(D) American Folklore (I)

I—Bibliography.

Ralph; S. Boggs—Folklore Bibliography for 1937 (Southern Folklore Quarterly; March' 38)

Alan Lomax & Sidney Robertson } American Folksong & Folklore : A regional bibliography. (New York, 1942).

Alan Lomax & R. U. Seeger } Folk-song : U. S. A. New York, 1949)

Maria Leach—Funk and Wagnalls Standard Dictionary of Folklore, mythology and legend, Vol I-II (New york; 1949-50).

Milton Rugoff—A Harvest of World Folklore (New York, 1949)

II—Beliefs and Customs

Clandia de lys—A Treasury of American Superstitions. (Philosophical Library; New york, 1948)

Vance Randolph—Ozark Superstitions. (Columbia University Press; New york; 1947).

III—Folk-Songs

Norman Loyd & M. Bradford Boni } Fire—side book of Folksongs. (Simon and Shuster, New york, 1947)

Oline Downes & Eie Siegmeister } A Treasury of American Songs Alfred A. Knoff, N. Y. (1943)

Sylvia & John Kolb—A Treasury of Folkongs (Bantom books, N. Y. 1948)

Allan Lomax } Cowboy-songs and other Frontier ballads

John—American Ballads & Folk songs.

R. C. Seeger—Our Singing Country (Macmillian. Co. N. Y. 1941)

Vance Randolph—Ozark folksongs in 4 Vols. (State Historical Scciety of Missouri, Columbia 1946-50)

Carl Sandbury—The American song-bag (Harcourt Arace & Co., New York, 1926)

B. A. Botkin—A Handbook of American Folklorc.

Roth Crawford Seeger—American Folk songs for children in Home, School & Nursery-School. (U. S. A. 1948).

IV—Folk-Tales

Stith Thompson—The Folk-tale (The Dryden Press, New york, 1946).

Ben C. Clough—The American Imagination at Work. (Alfred A. Knoff, N. Y. 1947)

Levette J. Davidson & Forrester Blake } Rocky Mountain tales. (University of Nklahoma Press, 1947)

Harold W. Thompson—Body, Boots and Britches. (Philadelphia, J. B. Lippioncott. Co. 1940)

Richrrd Chose—The Jack tales and grandfather tales. (Boston, 1948)

Marrian Vallet Emarich & Gearge Korson } The Child's book of Folklore. The Dial Press New york (1947)

V—Records of Folk songs

Kolb A treasury of Folk songs

A. Lomax—Folksongs in U. S. A.

Ben C. Lumpkin—folk—songs on Records (Boulder, (Boulder, Colorado 1948)

VI—Folklore—Journals.

Journal of American Folklore. (Philadelphia)

Newyork Folklorc Quarterly.

Southern Folklore Quarterly.
Florida, U. S. A.)

Western Folklore. (California)

Midwest Folklore. (Indiana, U. S. A.)

Journal of the Texas Folklore society. (Austin.)

(D) American Folklore (II)

H. M. Belden—Ballads and songs. Collected by Missouri Folklore society (Columbia, Missoury. 1940)

Bary; Eckstrom and Smith—British ballads from Maine- (New Haven, 1929)

A. K. Davis—Traditional Ballads of Virginia. (Cambridge, Mass., 1929).

Cecil Sharp & Karples—English Folk songs from the Southern Appalachians. (New york, 1932).

Lomax—American Ballads and folk songs. (New york, 1934)

Gerould—The ballad of Tradition. (Oxford University Press, 1932)

Entwistle—European Balladry. (Oxford Uni. Press, 1939)

Archer Taylor—The Proverb (Cambridge, Mass. 1931)

Stith Thomson—Tales of North American Indians. (Combridge, Mass, 1929)

Stith Thompson—Motif Index of Folk literature. Vols I-VI

{ Aarne—The Types of the folk tale.. Stith Thomson.

Dixon—Oceanic Mythology. (Boston, 1916)

परिशिष्ट (ग)

कुछ प्रसिद्ध विदेशी लोक-संस्कृति परिषदों

(Folklore Societies) के नाम और पते

संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रायः प्रत्येक राज्य में लोक संस्कृति परिषदों की स्थापना हुई है जो लोक साहित्य और संस्कृति के संग्रह का कार्य बड़े लगन से कर रही है। लोक-संस्कृति के प्रेमियों के लिए उनके नाम और पते तथा इन परिषदों के द्वारा प्रकाशित कुछ प्रसिद्ध शोध-पत्रिकाओं की सूची नीचे दी जाती है।

AMERICA

1. Arkansas—President—O. E. Rayburn: Secretary—Irene Carlisle, Address-University of Arkansas Journal—Arkansas Folklore.
2. Badger State—Pres J. J, Macdonald; Sec.—J. W. Jenkins. Journal—badger Folklore
3. Canada—Pres. Marious Barbeau ; Sec. K. Peacock. Addr. National Museaum, Canada, Ottawa.
4. California—Pres. R G. Sproul—Sec., August Fruge, University of California Press, Berkeley. Journal—Western Folklore.
5. New Mexico—Pres. John Arrington, Sec E. W Banghmar, Journal—New Mexico Folklore Record.
6. New york—Pres., F M. Warner; Sec. Edith Cutting Journal—New york Folklore Quarterly.
7. Pennsylvania—Pres.—J. F. Henninger Sec.,—G. F. Reinert. Journal—Publications of the Pennsylvania German Folklore Society.
8. South Eastern—Pres., F. W. Bradley ; Sec.,—Josef Rysan, Journal—Southern Folklore Quarterly.

9. Ternessee—Pres,—G. W. Boswell, Sec. W. J. Griffin, Journal—Tennessee Folklore Society Bulletin.
10. West Virginia—Pres., Walter Barnes. Sec. Ruth Arn Musick, Journal—West Virginia Folklore.

ENGLAND

11. Folklore Society of England. Pres.—M. A. Murray. Sec.—H. A. Lake Barnett; Journal—Folklore. Gower Street, London.
12. The English Folk-Dance and Song Society.
Cecil Sharp House.
2 Regent's Park Road;
London, N. W. I.
13. International Folk Music Council,
12, Clorane Gardens, London, N. W. 3

लेखक की अन्य कृतियाँ

१. भोजपुरी लोक गीत भाग १

२. भोजपुरी लोक गीत भाग २
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

३. भोजपुरी और उसका साहित्य
(राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली)

४. भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन
(हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी)

५. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग १६
(हिन्दी का लोक साहित्य)
(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

६. भारतीय लोक-संस्कृति
(काशी विद्यापीठ, वाराणसी)

७. स्टडीज़ इन इण्डियन फोक कलचर
(इ ब्रिटिश इण्डियन स्ट्रीट, कलकत्ता)